

DUE DATE SLIP**GOVT. COLLEGE, LIBRARY**

KOTA (Raj)

Students can retain library books only for two weeks at the most

| BORROWER S No | DUE DTATE | SIGNATURE |
|------------------|-----------|-----------|
| | | |

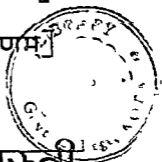
लघु-सिद्धान्त-कौमुदी

102341

भैमीत्याख्या

[षष्ठ भाग]

[स्त्रीप्रत्ययप्रकरणम्]



भैमसेन शास्त्री

एम्० ए०, पी-एच्० टी०, माहिन्यरत्न



—प्राप्ति-स्थान—

भैमी प्रकाशन

५३७, लाजपतराय मार्केट, दिल्ली—११०००६

प्रकाशक—

भैमी प्रकाशन

५३७ लजपतराय मार्केट,

दिल्ली—११०००६

★

LAGHU-SIDDHANTA-KAUMUDI—BHAIMI-VYAKHYANA

Part VI, First Edition 1989

दश भाग, प्रथम सम्करण १९८९

BHAIMI PRAKASHAN

537, Lajpat Rai Market Delhi-110006

© BHIM SEN SHASTRI (1920)



102341

*All rights reserved by the author. The book, or parts thereof
may not be reproduced in any form or translated
without the written permission of the author*

Price Rs Sixty only

मूल्य साठ रुपये केवल ।

अजय प्रिंटिंग एजेंसी द्वारा बम्बोज करवा कर
राधा प्रेस, गाधीनगर, दिल्ली-३१ में मुद्रित ।



व्याकरण-प्रशस्तिः

ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मं पडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च ।

प्रधानं च षट्स्वङ्गेषु व्याकरणम् ।

प्रधाने च कृतो यत्नः फलवान् भवति ॥

(पानञ्जलमहाभाष्य)

यद्यपि बहु नाऽधीये तथापि पठ पुत्र ! व्याकरणम् ।

स्वजनं श्वजनो मा भूत् सकलं शकलं सकृत् शकृत् ॥

शब्दशास्त्रमनधीत्य यः पुमान्

वक्तुमिच्छति वचः सभान्तरे ।

रोद्धुमिच्छति वने मदोत्कट

हस्तिना कमल-नाल-तन्तुना ॥

लघु-सिद्धान्त-कौमुद्याः

स्त्रीप्रत्ययप्रकरणस्य विषय-सूची

| | |
|--|-----------|
| (१) व्याकरणप्रशस्ति | [३] |
| (२) आत्म-निवेदनम् | [५]—[८] |
| (३) स्त्रीप्रत्ययप्रकरणम् | (१—६६) |
| (४) परिशिष्टे— | (१००—१५०) |
| [१] शुद्धाऽनुद्वयोऽक्षरानकम् | (१०१—११८) |
| [२] स्त्रीप्रत्ययप्रकरणगताष्टाध्यायीमूलनानिका | (११८—११९) |
| [३] स्त्रीप्रत्ययप्रकरणान्तर्गतानिनादिनातिका | (११९—१२०) |
| [४] उदाहरणनानिका | (१२०—१२६) |
| [५] स्त्रीप्रत्ययप्रकरणपयागि अष्टाध्यायीमूलपाठ | (१२६—१३१) |
| [६] विशेष द्रष्टव्य-स्थर-नानिका | (१३१—१३२) |
| [७] विशेष-स्मरणीय-पद्यमाला | (१३२—१३३) |
| [८] स्त्रीप्रत्ययविधायकमुद्यमसूत्राणि | (१३३—१३६) |
| [९] मक्षित पाणिनीय लिङ्गानुगामन (मध्याख्यम्) | (१३६—१५०) |

आत्मनिवेदनम्

लघु-सिद्धान्त-कीमुदी की सुप्रसिद्ध भैमीव्याख्या का यह अन्तिम (षष्ठ) भाग आज जनता के सामने प्रस्तुत करत हुए अपार हर्ष हो रहा है। इस व्याख्या का प्रणयन मन् १९४१ में प्रारम्भ हुआ था। आज ८८ वर्षों के बाद इस का अन्तिम खण्ड प्रकाश में जा रहा है। जब इस व्याख्या का प्रारम्भ हुआ था तब लेखक की वय २०-२१ वर्षों की थी। आज लगभग सत्तर वर्षों की वय में यह व्याख्या समाप्त हो रही है। इस अन्तराल में लेखक का स्वाध्याय तथा अध्ययन-अध्यापन मन्त चलता रहा। देश-विभाजन तथा अन्य कई अनिवार्य आर्थिक बाधाओं के कारण इस व्याख्या के कुछ खण्डों का प्रकाशन बीच-बीच में पर्याप्त विलम्ब में होता रहा। लेखक के स्वाध्याय तथा अध्ययन-अध्यापन में अर्जित ज्ञानसामग्री इस व्याख्या के विभिन्न भागों में बराबर सकलित हानी चली गई। आज इस व्याख्या का जो स्वरूप है वह शायद पहले न हो पाता। इस काल में इस व्याख्या के पूर्वप्रकाशित प्रथम भाग को भी मशोर्धित तथा अनेक टिप्पणियों में उपबृंहित कर नवीन द्वितीय सम्स्करण निकाला गया जो सामग्री और जाकार में प्रथमसम्स्करण में पर्याप्त समृद्ध है। इस में भी लेखक ने अपने नवीन-नम अनुभवों का मार भर देना का पूरा पूरा प्रयास किया है।

व्याख्या का प्रवृत्त भाग स्त्रीप्रत्ययों में समृद्ध है। मस्त्वन्भाषा में शब्दों का लिङ्गनिर्णय जनीव टुक्कर काय है। इस में पुलिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग और नपुमल का निर्णय नय भाषाओं की तरह नहीं किया जाता। स्त्रीवाचक दाशब्द महा पुलिङ्ग है जबकि अन्य वनिता, योषित् आदि स्त्रीलिङ्ग हैं। जलवाचक अप्शब्द स्त्रीलिङ्ग है जबकि वारि, नाय आदि नपुमक हैं। शरीरवाची कायशब्द पुलिङ्ग है जबकि तनुम् स्त्रीलिङ्ग तथा शरीर नपुमकलिङ्ग है। देवतावाचक अमर निजर आदि शब्द पुलिङ्ग है जबकि देवताशब्द स्वयं स्त्रीलिङ्ग है। मित्रवाचक मुहुद्शब्द पुलिङ्ग है जबकि मित्रशब्द स्वयं नपुमक है। नत्रवाचक वाचन अक्षि आदि शब्द नपुमक हैं जबकि दृग् शब्द स्त्रीलिङ्ग है। अतः मस्त्वन्त में लिङ्गा का ज्ञान सर्वथा शिष्टप्रयोगों की परंपरा पर ही निर्भर करता है। इसी को दृष्टान्त के लिये ही ज्येष्ठार्या के कल्पित लिङ्गसम्बन्धीमूला तथा पाणिनीयलिङ्गानुशासनीय मूला में यत्न किया गया है।

मस्त्वन्त में पुलिङ्ग या नपुमकलिङ्ग बनाने के लिये प्रातिपदिकों के आगे कोटि प्रत्यय जोड़ा नहीं जाता, केवल स्त्रीलिङ्ग बनाने के लिये ही प्रत्यय जोड़े जाते हैं (के भी सब शब्दों में नहीं)। अतः स्त्रीप्रत्ययप्रकरण ही प्रक्रियाग्रन्था में पृथक् दर्शाना जाना है पुलिङ्गप्रत्ययप्रकरण या नपुमकप्रत्ययप्रकरण नहीं।

स्त्रीप्रत्ययान्त शब्द प्रायः पाञ्च श्रेणियों में विभक्त किये जा सकते हैं—

- १ इस व्याख्या के चार भाग (प्रथम द्वितीय तृतीय तथा चतुर्थ) पहले प्रकाशित हो चुके हैं। अब त्रिमप्राप्त पञ्चम भाग (नाडिनप्रकरण) न छाप कर परीक्षार्थी विद्यार्थियों के तंत्र अनुरोध के कारण षष्ठ भाग (स्त्रीप्रत्ययप्रकरण) पहले प्रकाशित किया जा रहा है। यह भाग इस व्याख्या का अन्तिम भाग है। पञ्चमभाषा भी प्रेम में दिया जा रहा है जाशा है इसी वर्ष प्रकाशित हो जायेगा।

[१] जातिलक्षणस्त्रीप्रत्ययान्त शब्द—

जब जाति एक होने हुए उस जाति के स्त्रीध्वनि को निर्दिष्ट करना अभीष्ट होगा है तो वही जातिनक्षत्रप्रत्यय किये जाते हैं। इन में टोप् प्रत्यय प्रमुख है। टोन् आदि कुछ अपवाद प्रत्यय भी हैं। यथा—हूयी, गवयी, मुक्की, मनुयी, मानुयी, मानी, ब्राह्मणी, शाङ्गकी, बंदी, बटी, नटी, नारी आदि। 'जाति' से यहा पारिभाषिक जाति का ग्रहण किया जाता है, लौकिक जाति का नहीं। इस विषय में यह कारिका सुप्रसिद्ध है—

जाह्निकग्रहणा जातिलिङ्गाना च न सर्वमाह् ।

सहृदास्याततिप्रांहा गोत्र च चरणं सह ॥

इस कारिका की व्याख्या इस अर्थ के पृष्ठ (७०) पर की गई है वही देखें।

[२] पुयोगलक्षणस्त्रीप्रत्ययान्त शब्द—

शिष्टप्रयोगानुसार जब पनि (पुम्य) के कारण उस की स्त्री का नाम वैसा ही पट जाता है तब वही पुयाग म स्त्रीप्रत्यय किये जाते हैं। इन में टोप् प्रत्यय प्रमुख है। धाप् आदि कुछ अपवाद प्रत्यय भी किये जाते हैं। उदाहरण यथा—गोपम्य स्त्री—गोपी। गोपालकम्य स्त्री—गोपालिका। जश्वपालकम्य स्त्री—जश्वपायिका। वरुणम्य स्त्री—वर्षपानी। इन्द्रस्य स्त्री—इन्द्राणी। भवम्य स्त्री—भवानी। मूयम्य स्त्री—मूर्ता मूरी। मातुनम्य स्त्री—मातुनानी। शत्रुशूरम्य स्त्री—शत्रुधू आदि। कही कही पिता या भाई के कारण भी पुत्री या वहन का नाम प्रसिद्ध हो जाता है, वहा पर भी पुयाग म स्त्रीप्रत्यय समयना चाहिए। यथा—केकयम्य दुहिता—कैकयी। देवकम्य दुहिता—देवकी। रवतम्य दुहिता—रवती। श्यालम्य भगिनी—श्याली। यमम्य भगिनी—यमी आदि।

[३] स्वाङ्गलक्षणस्त्रीप्रत्ययान्त शब्द—

जब ममाम के अन्त में कोई स्वाङ्गवाची शब्द आ जाता है तब स्त्रीनिङ्ग वनात के लिये उस में परे स्वाङ्गलक्षण स्त्रीप्रत्यय किये जाते हैं। इन में वैकल्पिक टोप् (पञ्चे टाप्) प्रत्यय प्रमुख है। कर्त् म्यना पर केवन टाप् प्रत्यय भी हुआ करता है। निर्दशनाय उदाहरण यथा—चन्द्र इव मुख यस्या मा चन्द्रमुखी चन्द्रमुखा। चन्द्रानना। उपपत्त्या। शूपाय्या शूपनया। ताम्रमुखी, ताम्रमुखा। अनिकरी अनिकेशी। कल्याणप्राशा। मृहस्ता। स्वाङ्ग भी यहा पारिभाषिक किया जाता है लौकिक नहीं। जैसाकि कहा है—

अथ मूर्तिमत्स्वाङ्ग प्राणित्यमविकारजम् ।

अतस्य तत्र दृष्ट च तेन चेततयायुतम् ॥

इस कारिका की व्याख्या इस अर्थ के पृष्ठ (६२) पर की गई है वही देखें।

[४] साधारणस्त्रीप्रत्ययान्त शब्द—

जब उपर्युक्त तीनों काटिया में न आने जल्दा जयान् व्यक्तिवाचका, विशेषणा स्वनामा वयावाचको गुणवाचका आदि में स्त्रीनिङ्ग वनाता अभीष्ट होगा तब वहा टाप् टोप् आदि विविध प्रत्यय किये जाते हैं। यथा—गङ्गा, नदी ब्रह्मा, सर्वा, एषा, भवती, बुनारी, लग्नी, कर्वा, गौरी, पट्टी, मृद्धी, महिनाम्, कामान् सुवति धनश्रीता आदि।

[५] विविधार्थकस्त्रीप्रत्ययान्त शब्द—

कुछ एक शब्दों में विविध अर्थों के धोहन के लिये भी स्त्रीप्रत्यय विधे जाने हैं । यथा—टुटो यवो यवानी । महद् हिम हिमानी । महद् जरण्यम् जरण्यानी । यवनाना लिति यवनानी आदि ।

संस्कृतव्याकरण के पाठकों को यह बात मन में निकाल देनी चाहिये कि प्रत्येक स्त्रीलिङ्गीशब्द का पुलिङ्गरूप एव हर एक पुलिङ्गशब्द का स्त्रीलिङ्गरूप हुआ करता है । क्योंकि अनेक ऐन शब्द हैं जो केवल स्त्रीलिङ्गा या पुलिङ्ग आदि में प्रयुक्त होते हैं । यथा—गम्पद्, विपद्, स्त्री, जिखा, रात्रि, नौका, खट्वा, मेघा, बलाका आदि शब्द केवल स्त्रीलिङ्ग में ही प्रयुक्त होते हैं, इन का पुलिङ्गरूप नहीं होना । इमोनरह—पाक, भाग, पाठ, राग, महिमा, तनिमा आदि शब्द केवल पुलिङ्ग में ही हुआ करते हैं, इन का स्त्रीलिङ्ग रूप नहीं होता । स्त्रीप्रत्ययों के लाने से ही शब्द स्त्रीलिङ्ग बनते हैं—यह बात भी नहीं है । अनेक पद बिना स्त्रीप्रत्ययों के भी स्वतः स्त्रीलिङ्ग के धोहन होते हैं । यथा—आप्, गिर्, पुर, दिग्, वाष्, दृग्, गम्पद्, विपद् आदि शब्द बिना स्त्रीप्रत्ययों के भी स्त्रीत्व को प्रकट करते हैं । अतः किम में स्त्रीप्रत्यय करना चाहिये और किम से नहीं—यह सारी व्यवस्था पाठप्रयोगों पर आश्रित व्याकरण के नियमों के अनुसार ही समझनी चाहिये ।

प्रस्तुत भाग में स्त्रीप्रत्ययविधायक मूलोक्त सूत्रों, वार्तिकों वा गणसूत्रों की व्याख्या के अनिश्चित छान्दोग्योपयोगी अन्य भी अनेक सूत्र-वार्तिकों की सार्थ सौदाहरण व्याख्या प्रस्तुत की गई है ताकि विद्यार्थियों के सामान्यज्ञान का स्तर ऊँचा रहे । पूर्व भागों की तरह इन भाग में भी सूत्रों की वही व्याख्याशैली, स्थान स्थान पर उठने वाली शब्दाओं का समाधान, प्रत्येक रूप की निदि, उदाहरणों की झटी, पाठशोधन तथा विषय के स्पष्टीकरणार्थ दरजनों टिप्पण दिये गये हैं । उदाहरणों के अर्थ तथा उन के साहित्यगत प्रयोगों को भी टूट टूट कर दगाने का पूरा प्रयास किया गया है ।

ग्रन्थ के अन्त में पचाम से अधिक पृष्ठों में नौ परिशिष्ट दिये गये हैं । वैन तो ये सब परिशिष्ट छात्रों के लिये तथा शास्त्रार्थियों के लिये अल्पज्ञ उपयोगी और ज्ञानवधक है पर इन में चार परिशिष्ट साधारण छात्रों के लिये भी लाभप्रद हैं । शुद्धागुद्धबोधकशतकम् नाम वाले प्रथम परिशिष्ट में स्त्रीप्रत्ययों के विषय में विद्यार्थियों को सावधान एव चौकन्ना रखने के लिये शुद्धागुद्धमिथिन प्रायः स्वनिमित्त एक नौ पद्यखण्ड दिये गये हैं जिन में स्त्रीप्रत्ययान्त अनेक पदों के शुद्धागुद्धत्व का परीक्षण करना है । विद्यार्थियों के सौकर्य के लिये इन पद्यांशों के नीचे प्रत्येक पद का माधुत्व वा अनाधुत्व सहितक एव सप्रमाण प्रतिपादन किया गया है । इन के अभ्यास से विद्यार्थियों को निश्चय ही अशुद्धियों के पकड़ने में मही निपुणता प्राप्त हो सकती है । स्त्रीप्रत्ययप्रकरणगतोदाहरणतालिका नामक चतुर्थ परिशिष्ट में प्रकृतखण्ड में उदाहरणरूप में निदिष्ट प्रायः छ नौ रूपों की अकाराधिक्रम में सूची दी गई है । प्रत्येक रूप के आगे कोष्ठक में उन में होने वाले स्त्रीप्रत्यय की निदिष्ट किया गया है । आगे उन उदाहरण की पृष्ठनब्धा भी दे दी गई जिम में विद्यार्थी उन स्थल को निकाल कर तुरन्त हृदयङ्गम कर सकें । स्त्रीप्रत्ययों के विधान में प्रायः विद्यार्थी टीप् टीप्-टीन् प्रत्ययों के करने में भूल कर दिया करते हैं । इन के लिये स्त्रीप्रत्ययविधायकमुह्यसूत्राणि के जन्मोत् अष्टम परिशिष्ट में प्रत्येक स्त्रीप्रत्यय के नीचे तत्तद्विधायक सूत्रों को पृथक् पृथक् निदिष्ट कर दिया है । इन में विद्यार्थी

अपनी भूत का तुम्हें सुधार सकते हैं। सक्षिप्त वाणिनीय लिङ्गानुशासनम् के अन्तर्गत नवमपरिशिष्ट में पाणिनीयलिङ्गानुशासन के प्रसिद्ध प्रसिद्ध एवं भी मूत्रा की द्विती भाषा म मोदाहरण व्याख्या प्रस्तुत की गई है जिन में छात्र लिङ्गानुशासन-विषयक अयुपयोगी धीन का भी कुछ ज्ञान प्राप्त कर सकें। सम्भवतः तपु सिद्धांत-वैमुदी पर इस प्रकार का यह प्रथम प्रयत्न है। प्रबुद्ध और उन्माही विद्यार्थियों के साथ के लिये स्त्रीप्रत्ययप्रकरणोपयोगि अष्टाध्यायीमूलपाठ इन पञ्चम परिशिष्ट के अन्तर्गत पाणिनीयाष्टाध्यायीस्थ स्त्रीप्रत्यय का समग्र प्रकरण भी दे दिया है ताकि वह इन कण्ठस्थ कर मदा के लिए लाभ उठा सकें। इन के अनिश्चित विशेषदृष्ट्य-स्वन्तर्गतिका नामक पष्ठ परिशिष्ट शोघाधिया एवम् अध्यापकगण के लिये तथा विशेष-स्मरणीय-पद्यमाला नामक सप्तम परिशिष्ट मन्मत्त होनहार छात्रों के लिये परम उपयोगी है। द्वितीय तथा तृतीय परिशिष्टों में अन्तर्गत मन्मत्त मूत्रा वाचिका तथा गणमूल आदियों की अकारादिभ्रम में सूची दी गई है। इस प्रकार इस छण्ट के परिशिष्ट अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होंगे।

इस छण्ट के प्रणयन में भी सब से अधिक योगदान तो मेरे मनन उपचीयमान विज्ञान पुस्तकालय का है जिस में व्याकरण के शतश कुतूहल और मुत्तम ग्रंथ संग्रहित हैं। सब तो यह है कि यदि यह पुस्तकालय मर पाम न जाता तो निश्चय ही इस ग्रन्थ का प्रणयन ही न हो सक्ता होता।

इस छण्ट के प्रथमगाधन में अर्धाह परिश्रम किया गया है। मेरे तृतीय पुत्र अश्विनो शास्त्री का भी इस में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। परन्तु फिर भी दृष्टि-दाय के कारण कही कही अशुद्धियां रह गई हैं (यथा—पृष्ठ २० पर वषस्यचरमे के स्थान पर वषस्यप्रथमे एसा अशुद्ध दानिक छप गया है)। जाणा है पाठन अपन उदारभाव से क्षमा करने की कृपा करेंगे।

यह है सब कुछ—जो मुझ से दान सका है। पाठक ही मेरे ग्रन्थों की मदा में कमीठी रहें और रहेंगे भी। इतना कहकर विरत होना हूँ—

शास्त्रिसदनम्,

६/६४२ मुक्ती गली

गाधीनगर, दिल्ली—११००३१

पोस्टबंदी ६, सन्वत् २०४५ (वै०)

१११६८६ (ई०)

मुरभारती का तुच्छ ममुपामक

भीमसेन शास्त्री

ॐ

श्रीमद्वरदराजाचार्यप्रणीता

* लघु-सिद्धान्त-कौमुदी *

श्रीभीमसेनशास्त्रनिर्मितया भैमीव्याख्यायोरुद्भासिता

[षष्ठो भागः]

— ० —

जीवन सर्वजीवाना गतिं गतिमता सदा ।
प्राणभूतं पर पूज्यं प्रपद्ये परम पदम् ॥१॥
पाठेऽस्मिन् लघुकौमुद्या भैमीव्याख्याविभूषिते ।
भागे स्त्रीप्रत्यया सर्वे विव्रियन्तेऽधुना मया ॥२॥
पूर्ववद् गौरवं यायात् कृतिर्मे विदुषा हृदि ।
यतस्ते निकपीभूता ग्राह्याप्राह्यविवेचने ॥३॥

— ० —

अथ स्त्रीप्रत्यय-प्रकरणम्

अथ स्त्रीप्रत्ययो का प्रकरण प्रारम्भ किया जा रहा है । यह प्रकरण कृदन्त ममाम और तद्धितो को समझे बिना ठीक तरह से बुद्धिमन्थ नहीं हो सकता, अतः उन सब प्रकरणों के अनन्तर इस प्रकरण को रख कर वरदराज ने अपनी सूक्ष्मेक्षिका का परिचय दिया है । भट्टोजिदीक्षित ने रामचन्द्राचार्यप्रणीत प्रक्रिया-कौमुदी को आधार बना कर अपनी सिद्धान्तकौमुदी में प्रायः प्रकरणों का विन्यास किया है । सिद्धान्त-कौमुदी और प्रक्रियाकौमुदी दोनों में स्त्रीप्रत्ययप्रकरण को समान, तद्धित और कृदन्त प्रकरणों से पूर्व रखा गया है । इन से विद्यार्थियों को विषय समझने में पदे पदे कठिनाई का कटु अनुभव होता है । क्योंकि बिना समासप्रकरण को समझे स्त्रीप्रत्यय-

प्रकरण मे अनुपसर्जनात् (४११४), द्विगो (१२५७), श्रोतात्करणपूर्वात् (१२६४), ऊत्तरपदादीषम्ये (१२७३) आदि सूत्रो को हृदयङ्गम कर सकना बहुत ही बठिन है। इसीप्रकार तद्धित और वृद्धन्त प्रकरणो के ज्ञान के बिना टिड्ढाणम्० (१२५१), नञ्स्तञ्जोक्० (वा० १०१), वृद्धिकारादक्षितन (गणमूत्र), सर्वतोऽक्षितन्वर्षादि-त्येके (गणमूत्र) आदि स्थलो को समझा नही जा सकता। यही अवस्था प्रत्यय-स्यात् फात्पूर्वस्यात् इदाप्यसुप (१२६२) आदि मूत्रस्य उदाहरणो और प्रत्युदाहरणो को समझनी चाहिये। सिद्धान्तकौमुदी को इस ऋटि को लघुसिद्धान्तकौमुदी मे न दोहरा कर बरदराजाचार्य ने मृत्यु कार्य किया है।

अब सब मे प्रथम सम्पूर्ण स्त्रीप्रत्ययप्रकरण मे व्यापृत होने वाले पाणिनीय अधिकारमूत्र का निर्देश करते हैं—

[लघु०] अधिकारमूत्रम्—(१२४८) स्त्रियाम् ।४।१।३॥

अधिकारोऽय 'समर्थानाम्०' (४१८२) इति यावत् ॥

अर्थ—अष्टाध्यायी मे यहा मे ले कर समर्थाना प्रथमाद्वा (४१८२) सूत्र मे पूव तक 'स्त्रियाम्' का अधिकार रहेगा, अर्थात् वहा तक जिम जिम प्रत्यय का विधान किया जायेगा वह स्त्रीत्व के द्योतन मे ही होगा।

व्याख्या—स्त्रियाम् ।७।१। प्रातिपदिकात् ।५।१। (अष्टाध्यायीप्रतिपदिकात् शे प्रातिपदिकात्' अश का अधिकार सम्पूर्ण प्रकरण मे चला आ रहा है)। प्रत्यय, परश्च—ये दोनो पीछे मे अधिष्ठत हैं ही। यह अधिकारमूत्र है। अधिकारमूत्रो की अवधि निश्चित हुआ करती है। इस सूत्र की अवधि अष्टाध्यायी मे समर्थाना प्रथमाद्वा (४१८२) सूत्र तक है। स्त्रियाम् यह भावप्रधान निर्देश है, इस का तात्पर्य है—'स्त्रीत्वे' (स्त्रीत्व मे)। अर्थ—यहा मे ले कर समर्थाना प्रथमाद्वा सूत्र तक जिम प्रत्ययो का विधान किया जाये वे प्रत्यय (प्रातिपदिकात्) प्रातिपदिक मे परे (स्त्रियाम् = स्त्रीत्वे) स्त्रीत्व की विवक्षा मे होने हैं। टाप्, डाप्, चाप्, डीप्, डीप्, डीन्, ऊङ् और ति—ये आठ प्रत्यय इन अधिकार मे बहे गये हैं। ये सब स्त्रीत्व के द्योतक हैं। सञ्चतवैयाकरणो के अनुमार लिङ्ग भी प्रातिपदिक के अर्थ मे ही सम्मिलित होता है। स्त्रीप्रत्यय केवल उमे द्योतित करते हैं, अत एव अनेक शब्दो मे स्त्री-प्रत्ययो के बिना भी स्त्रीत्व का बोध स्वत ही हुआ करता है। यथा—वाप्, गिर्, पुर, दृग् आदियो मे स्त्रीत्वद्योतक प्रत्यय के बिना भी स्त्रीत्व का बोध स्वत होता है। तात्पर्य यह है कि यह जम्ही नही कि स्त्रीप्रत्यय के होने पर ही स्त्रीत्व का बोध हो, स्त्रीत्व का बोध प्रत्यय के बिना भी कई जगह हो सकता है। परन्तु टाप् आदि प्रत्ययो के होने पर अवश्य स्त्रीत्व का बोध होना है—यह नियम है।

स्त्रीत्व क्या है ? सर्वप्रथम इसे समझना जरूरी है । लोक में स्त्रीत्व आदि का लक्षण इन प्रकार किया जाता है—

स्तनकेशवती स्त्री स्यात्लोमश पुरुष स्मृत ।

उभयोरन्तर यच्च तदभावे नपुसकम् ॥

अर्थात् स्तनो और केशो के अतिशय में युक्त स्त्री होती है, लोमो के अतिशय में युक्त पुरुष होता है^१ । जब दोनो का अभाव अर्थात् अपूणता रहती है तो उस बीच की स्थिति को नपुसक कहते हैं । परन्तु लिङ्गो का यह लौकिक लक्षण खट्वा, माला, तट, घट, पट आदि जड पदार्थों पर घटित नहीं हो सकता अतः व्याकरण में इस का आश्रय नहीं दिया जाता । वैयाकरणो का कहना है कि साख्यशास्त्रोक्त सत्त्व, रजम् और तमस् इन तीन गुणो का ही विपरिणाम प्रत्येक पदार्थ हुआ करता है । जब गुणत्रयात्मक किसी पदार्थ में इन गुणो का प्रसव = आविर्भाव = उपचय या वृद्धि कहनी अपेक्षित होती है तब पुलिङ्ग, जब सस्त्वान = अपचय या ह्रास कहना अपेक्षित होता है तब स्त्रीलिङ्ग तथा जब केवल स्थितिमात्र कहनी अपेक्षित होती है तब नपुसकलिङ्ग का प्रयोग किया जाता है^२ । परन्तु यह विवक्षा अस्मदादि प्रयोक्ताओ के आश्रित नहीं होती, इन के नियामक तो शिष्ट लोग ही होते हैं । उन की विवक्षा को ही व्याकरण, लिङ्गानुशासन या कोप आदियो में निबद्ध किया गया है । यही हमें अनुसर्तव्य है, स्वेच्छा से कुछ नहीं । यही कारण है कि कुछ शब्द दो लिङ्गो या तीनों लिङ्गो में भी प्रयुक्त हुआ करते हैं । सार यह है कि संस्कृतभाषा में लिङ्ग का निर्णय सर्वथा शिष्ट प्रयोगो पर आश्रित व्याकरण आदि के नियमो में ही हुआ करता है, मनमाने ढंग या लौकिक ढंग से नहीं ।

अब सब से प्रथम स्त्रीप्रत्ययो में सुप्रसिद्ध टाप् प्रत्यय का विधान करते हैं—

१ वैयाकरणैर्भाष्योक्तोऽप्ये श्लोक इयं व्याख्यायते—

स्तनकेशवतीत्यत्र अतिशयापने मतुप् । एव 'लोमश' इत्यत्रापि बोध्य । स्तनकेशादि भगशिशनादेरप्युपलक्षणम् । केचित्—केशो भग, शिशन लोम इत्याहु । पर केश-पद लोमपद च स्वार्थपरमेवेति भाष्यमर्मविदः । तदभावे स्तनकेशलोमादिव्यञ्जकाभावे मति यद् उभयो = स्त्रीपुंसयोर् अन्तरम् = सदृश तन्नपुसकमित्यर्थः ।

२ इस धारणा के अनुसार लिङ्ग अर्थनिष्ठ ठहरता है न कि शब्दनिष्ठ । परन्तु वाच्यवाचक के अभेदोपचार के कारण व्यवहार में शब्दो को ही पुलिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग या नपुसकलिङ्ग माना जाता है । यहा एक बात और भी ध्यातव्य है कि ब्रह्मन्, आत्मन् आदि पदार्थ यद्यपि सत्त्व-रजम्-तमम् गुणो का विपरिणाम नहीं होते तथापि उन में भी सत्त्व आदि गुणो को आरोपित कर उपर्युक्तप्रकारेण लिङ्गव्यवस्था मान ली जाती है ।

[लघु०] विधिसूत्रम्—(१२४६) अजाद्यतष्टाप् ।४।१।४।।

अजादीनाम् अकारान्तस्य च वाच्य यत् स्त्रीत्व तत्र द्योत्ये टाप् स्यात् । अजा । एडका । अश्वा । चटका । मूपिका । बाला । वत्सा । होडा । मन्दा । विलाता । इत्यादिरजादिगण । मेघा । गङ्गा । सर्वा ।।

अर्थ—अज आदि गणपठित प्रातिपदिकों के अथवा अदन्त प्रातिपदिकों के वाच्य स्त्रीत्व का धोना करना हो तो उन से परे टाप् प्रत्यय हो ।

व्याख्या—अजाद्यत ।६।१। टाप् ।१।१। प्रातिपदिकात् ।१।१। (इषाप्रतिपदिकात् इम अधिभूत से) । स्त्रियाम् ।७।१। (अधिभूत क्रिया गया है) । प्रत्यय, परश्च—ये दोनों भी अधिभूत हैं । समास—अज (अजशब्द) आदिषोपान्ते अजादयः, तद्गुणमविज्ञानबहुव्रीहिसमास । अजादयश्च अत् च अजाद्यत्, तस्य=अजाद्यत समाहारद्वन्द्व । 'अजाद्यत' के कारण 'प्रातिपदिकात्' का भी पष्ठघन्तया विपरिणाम हो जाता है—अजाद्यत प्रातिपदिकस्य । 'अजाद्यत' यह 'प्रातिपदिकस्य' का विशेषण है । जन 'अत्' असा से तदन्तविधि हो कर 'अदन्तस्य प्रातिपदिकस्य' बन जाता है । 'अजाद्यत प्रातिपदिकस्य' में पष्ठी वाच्यवाचकसम्बन्ध में हुई है । अथ—(अजाद्यत प्रातिपदिकस्य) अज आदि प्रातिपदिक का अथवा अदन्त प्रातिपदिक का वाच्य (स्त्रियाम्) जो स्त्रीत्व उस के धोना करने की विवशा में इन में (पर) परे (टाप्) टाप् (प्रत्यय) प्रत्यय हो जाता है ।

१ यहा समासप्रत्ययविधौ प्रतिषेध (वा०) इम वार्तिक में तदन्तविधि का निषेध नहीं होगा क्याकि वहा उगिद्धर्णग्रहणवर्जम् (वा०) इम दूसरी वार्तिक से उगिद्धर्ण और वर्णग्रहण में तदन्तविधि का विधान बह दिया गया है ।

यह तदन्तविधि 'अजादि' अश में भी यहा हो सकती है । शूरा चाञ्चमहत्पूर्वा जाति (गण०) इम गणसूत्र तथा अनुपसर्जनात् (४११४) इम अधिकार के कारण स्त्रीप्रत्ययो में भी तदन्तविधि का अनुमान किया जाता है ।

२ 'अजाद्यत' को कौमुदीकार ने पष्ठघन्त पद माना है, पञ्चम्यन्त नहीं । यदि पञ्चम्यन्त मानते हैं तो—अजादि प्रातिपदिक तथा अदन्त प्रातिपदिक से परे स्त्रीत्व की विवशा में टाप् प्रत्यय हो—इम प्रकार अर्थ तो बहुत मरल हो जाता है परन्तु तब पञ्चाजी (पाञ्च वजरो का समूह) आदि प्रयोगों में भी टाप् प्राप् होने लगता है जो अनिष्ट है । तथाहि—पञ्चानाम् अत्राना समाहार पञ्चाजी । यहा 'पञ्चन् आम् + अज आम्' इम अलौकिक विग्रह में तद्विधायोत्तरपदसमाहारे च (६३६) सूत्रद्वारा समाहार अर्थ में द्विगुममाम हो कर मुञ्जुर्, नकारलोप तथा सवर्णदीर्घ करने पर 'पञ्चात्र' यह द्विगुसञ्ज्ञक प्रातिपदिक उत्पन्न हो जाता है । अब अकारातोत्तरपदो द्विगु स्त्रियामिष्ट (वा०) के अनुसार स्त्रीत्व की विवशा होने पर अन्त में 'अज' शब्द होने के कारण पञ्चम्यन्त वाता अर्थ

टाप् मे चूट (१२६) द्वारा टकार तथा हलन्त्यम् (१) द्वारा पकार इत्यञ्जक है अत तस्य लोप (३) से इन का लोप हो कर 'जा' ही शेष रह जाता है। टाप् मे पकार अनुबन्ध अनुदात्तो सुप्पितौ (३१४) द्वारा अनुदात्त स्वर के लिये जोड़ा गया है। किञ्च औड आप (२१६), आडि चाप (२१८), याडाप (२१९) आदि में आप् कहने से टाप् और चाप् के माथ टाप् का भी ग्रहण हो सके, इन के लिये भी जोड़ा गया है। टाप् मे टकार अनुबन्ध न जोड़ते तो 'आप्' कहने मे डचाप्रतिपदिकात् (११९) आदि में केवल इमी का ग्रहण होना टाप् और चाप् का नहीं (एकानुबन्धग्रहणे न द्वयनुबन्धकस्य), अत मव का ग्रहण हो सके इस के लिये टकार जोड़ा गया है।

जजादिगण के उदाहरण यथा—

अज (वकरा) शब्द अजादिगण का प्रथम शब्द है। स्त्रीत्व के द्योतन करन मे इस मे अजाद्यतष्टाप् (१२४६) सूत्रद्वारा टाप् प्रत्यय हो कर अनुबन्धों (ट्, प्) का लोप करने से—अज + आ। अव अक् सवर्ण दीर्घ (४२) सूत्र से सवर्णदीर्घ हो 'जजा'

करने मे टाप् प्राप्त होने लगना है जा अनिष्ट है। परन्तु पष्ठ्यन्त वाला अर्थ मान कर 'जजादियों का वाच्य जो स्त्रीत्व उस की विवक्षा मे टाप् हो' ऐसा अर्थ हो जाने मे टाप् नहीं हो सकता, क्योंकि यहा स्त्रीत्वविशिष्ट समाहार जय 'अज' का वाच्य नहीं, वह तो पूरे द्विगुसञ्जक 'पञ्चाज' प्रातिपदिक का ही वाच्य है। अत टाप् न हो कर द्विगो (१२५७) से डीप् करने मे 'पञ्चाजी' यह इष्ट रूप सिद्ध हो जायेगा। इस तरह 'अजाद्यत' को पष्ठ्यन्त मानना उचित है पञ्चम्यन्त नहीं। अत एव सिद्धान्तकौमुदीकार ने लिखा है—अजादिभि स्त्रीत्वस्य विशेषणान्नेह—पञ्चाजी।

१ जजादिगण मे अज आदि प्रातिपदिका का साक्षात् पाठ नहीं किया गया किन्तु कृतटाप्प्रत्ययान्त अजा आदि शब्दों का परिगणनमात्र किया है। उन परिगणित टाबन्तो से तत्तन्प्रकृतिक प्रातिपदिकों की प्रक्रियादशा मे स्वय कल्पना कर ली जाती है। अजादिगण यथा—अजा। एटका। कोकिला। चटका। अज्वा। मूपिका। बाला। होडा (होटा का०)। पाका। बत्ना। मन्दा। विलाता। पूर्वापहाणा (पूर्वापहरणा का०)। अपरापहाणा (अपरापहरणा का०)। सन्मत्स्वाजिनशणपिण्डेभ्य फलात्—मम्भला। मस्त्रफला। अजिनफला। घणफला। पिण्डफला। सदच्काण्डप्रान्तसर्तकेभ्य पुष्यात्—मत्पुष्या। प्राक्पुष्या। प्रत्यक्पुष्या। काण्डपुष्या। प्रान्तपुष्या। शतपुष्या। एकपुष्या। शूद्रा चाग्महत्पूर्वा जाति। ऋञ्चा। उष्णिहा। देवविना। ज्येष्ठा। कनिष्ठा। मध्यमा पुयोगेऽपि। मूलान्त्रे। दष्ट्या। आहुतिगणोऽयम् ॥

शब्द बन जाता है^१। आबन्त होने के कारण (११६) अब इस म मु आदि प्रत्ययों की उत्पत्ति होती है। प्रथमा के एकवचन की विवक्षा में मु प्रत्यय ला कर उकार अनुबन्ध का लोप तथा हल्घाबन्धो दीर्घान् सुनिस्स्पृक्त हल् (१७६) सूत्रद्वारा अपृक्त मकार का भी लोप करने में 'अजा' प्रयोग मिट्ट हो जाता है। 'अजा' का अर्थ है—बकरी।

इसीप्रकार—

एडक + टाप् = एडक + आ = एडका (भेड)।

अश्व + टाप् = अश्व + आ = अश्वा (घोड़ी)।

चटक + टाप् = चटक + आ = चटका (चिडिया)।

मूपिक + टाप् = मूपिक + आ = मूपिका (चूही)^२।

बाल + टाप् = बाल + आ = बाला (बच्ची)।

वल्म + टाप् = वल्म + आ = वल्मा (बच्ची या बछिया)।

होड + टाप् = होड + आ = हाटा (बाला)।

मन्द + टाप् = मन्द + आ = मन्दा (बानिका)।

विलात + टाप् = विलात + आ = विलाता (बाला या नवयौवना)।

अदन्त प्रातिपदिकों में यथा—

मेघ + टाप् = मेघ + आ = मेघा (बुद्धि)।

गङ्ग + टाप् = गङ्ग + आ = गङ्गा (नदीविशेष)।

मव + टाप् = मव + आ = मवा (मव)।

खट्व + टाप् = खट्व + आ = खट्वा (खाट)।

घनिक + टाप् = घनिक + आ = घनिका (घनी औरत)।

१ जा लोग 'अज + आ' इस स्थिति में भ्रमज्ञा कर यस्पेति च (२३६) सूत्रद्वारा भ्रमज्ञक अकार का लोप कर रूपमिद्धि किया करते हैं—ब भ्रान्त है। क्योंकि यस्पेति च (२३६) की प्रवृत्ति ईकार या तद्धित पर होने पर ही हुआ करती है। टाप् प्रत्यय तद्धिताधिकार में बहिर्भूत है। अतः मवणदीर्घद्वारा ही रूपमिद्धि करना चाहिये।

२ मुष्णतीति मूपिक। मूय स्तेये (त्रया० परस्मै०) धातु में मूयेर्दोषरच (उपा० २ ६३) इस औगादिकसूत्रद्वारा किकन् (इक) प्रत्यय कर धातु के उकार को दीर्घ करने से 'मूपिक' शब्द निष्पन्न होता है। इसी का यहा ग्रहण किया गया है। कुछ लोग भ्वादिगणतीय मूय स्तेये (भ्वा० परस्मै०) धातु से सजा म क्वन् गित्पि-सजयोरपूर्वस्यापि (उपा० २ ३३) सूत्र में क्वन् (वु) प्रत्यय कर वु को अब आदेश करने में 'मूपक' शब्द की निष्पत्ति मानते हैं—मूपतीति मूपक। उन के मतानुसार टाप् करने के बाद प्रत्ययस्थात् वात्पूर्वस्थात् इदाप्यसुप्त (१२६०) सूत्र में अकार को इकार करना विशेष कार्य होगा।

वृत्त्रिम + टाप् = वृत्त्रिम + आ = वृत्त्रिमा (वनावटी) ।

स्वभावज + टाप् = स्वभावज + आ = स्वभावजा ।

गत + टाप् = गत + आ = गता (गई हुई) ।

शङ्का—अजादिगणपठितशब्द प्रायः अदन्त हैं । अदन्त होने से ही उन से टाप् स्वतः सिद्ध है, पुनः टाप् के विधान के लिये उन का सूत्र में पृथक् उल्लेख क्यों किया गया है ?

समाधान—बाधक प्रत्ययो का बाध करने के लिये ही सूत्र में अजादियों का पृथक् उल्लेख किया गया है । यथा—अजा, अश्वा, चटका आदि में जातेरस्त्रीविषया-दयोपघात् (१२६६) से जातिलक्षण डीप् प्राप्त था । बत्मा, वाला आदि में वयसि प्रथमे (१२५६) में डीप् होना था । परन्तु अब विशेष उल्लेख के कारण उन का बाध हो कर टाप् प्रत्यय ही होता है ।

पीछे अजन्तस्त्रीलिङ्गप्रकरण में स्त्रीप्रत्ययविषयक दो सूत्र प्रसङ्गत पढ़े गये थे । प्रकरणशुद्धि के लिये उन का यहाँ पुनर्ध्यान कर लेना उचित है । तथाहि—

[१] ऋन्नेम्यो डीप् (२३२) । अर्थ—ऋदन्त और नकारान्त प्रातिपदिकों से स्त्रीत्व की विवक्षा में डीप् (ई) प्रत्यय हो जाता है । ऋदन्त प्रातिपदिकों से यथा—कर्तृ + डीप् = कर्तृ + ई = कर्तृ + ई (१५) = कर्त्री (करने वाली) । हर्तृ + डीप् = हर्तृ + ई = हर्तृ + ई = हर्त्री (हरण करने वाली) । धातृ + डीप् = धातृ + ई = धात्री (धारण करने वाली) । इत्यादि । नकारान्तों से यथा—दण्डिन् + डीप् = दण्डिन् + ई = दण्डिनी (दण्ड वाली) । योगिन् + डीप् = योगिन् + ई = योगिनी (योग वाली) । रोगिन् + डीप् = रोगिन् + ई = रोगिणी (रोग वाली) । राजन् + डीप् = राजन् + ई = राजन् + ई = राजन् + ई = राज्ञी (रानी) । यहाँ अल्लोपोऽन् (२४७) सूत्र से भसञ्जक अन् के अकार का लोप हो कर स्तोश्चुनाश्चु (६२) से श्चुत्व के द्वारा नकार को अकार हो जाना है । जजोर्ज्ञ ।

अब इस सूत्र का अपवाद कहते हैं—

[२] न षट्-स्वस्त्रादिभ्यः (२३३) । अर्थ—स्त्रान्त की विवक्षा में षट्सञ्जक प्रातिपदिकों तथा स्वसू आदि प्रातिपदिकों से परे डीप् और टाप् प्रत्यय नहीं होते । षणान्ता षट् (२६७) सूत्र में पकारान्त और नकारान्त मर्यादाचको की षट्सञ्जा नहीं गई है । परन्तु पकारान्त षट्सञ्जक में किसी सूत्रद्वारा कोई स्त्रीप्रत्यय प्राप्त नहीं होता अतः उस का निषेध यहाँ अभीष्ट नहीं है केवल नकारान्त षट्सञ्जका में ही ऋन्नेम्यो डीप् (२३२) द्वारा डीप् प्राप्त होता है अतः उन से ही यहाँ निषेध होता है । उदाहरण यथा—पञ्च स्त्रिय, सप्त नाय, दश देव्य । इसीप्रकार स्वसू आदि

१ इन 'पञ्च' आदि उदाहरणों में प्रकृतसूत्र से प्रथम बार तो डीप् का तथा दूसरी बार टाप् प्रत्यय का निषेध हो जाता है । तथाहि—पञ्चन् आदि से संवृत्पत्ति से

शब्दों' में ऋदन्तलक्षण डीप् का प्रकृतसूत्र न निषेध हो जाता है—स्वसा, तिस, चनय, ननादा, दुहिता, याता, माता ।

अब अग्रिमसूत्रद्वारा डीप् प्रत्यय का विधान करते हैं—

[लघु०] विधि-सूत्रम्—(१२५०) उगितश्च १४।१।६॥

उगिदन्तात् प्रातिपदिकात् स्त्रिया डीप् स्यात् । भवन्ती । पचन्ती । दीव्यन्ती ॥

अर्थ—उगिदन्त अर्थात् जिस का उक् (उ, ऋ लृ) वण इत् हो तदन्त प्रातिपदिक में स्त्रीत्व की विवक्षा में डीप् प्रत्यय हो ।

व्याख्या—उगित १५।१। च इत्यव्ययपदम् । डीप् ११।१। (ऋन्नेभ्यो डीप् से) । प्रातिपदिकात्, स्त्रियाम्, प्रत्यय, परश्च—य मव पूर्वत अधिष्टत है । ममाम—उक् (उ ऋ लृ—इति वणत्रयस्य उक्प्रत्याहार) इद् यस्य म उगित्, तस्मात्=उगित्, बहुश्रीहिममास । 'उगित' यह प्रातिपदिकात् का विशेषण है, विशेषण म तदन्त-विधि हा कर 'उगिदन्तात् प्रातिपदिकात्' बन जाता है^१ । अथ—(उगित = उगिदन्तात्) उक्प्रत्याहारान्तगतवण जिस का इत् हो वह उगित् कृत्यागा वह उगित् जिस के अन्त में हों ऐसे (प्रातिपदिकात्) प्रातिपदिक से परे (स्त्रियाम्) स्त्रीत्व की

पूर्व ही स्त्रीत्व की विवक्षा म नान्तलक्षण डीप् के प्राप्त होने पर षणान्ता षट् (२६७) में षट्मज्ञा के कारण प्रकृतसूत्रद्वारा उम का निषेध हो जाता है । अब जब जस् या शम् प्रत्यय ला कर षट्म्यो लुक् (१८८) में उन का लुक् कर दते हैं तब न लोप प्रातिपदिकात्स्य (१८०) सूत्रद्वारा नकार का भी लाप हो कर 'पञ्च' आदि सिद्ध हो जाते हैं । परन्तु नकार का हुआ यह लाप न लोप सुंस्वर-सञ्ज्ञातुग्विधिषु कृति (२८२) के अनुसार सुव्विधि आदिया म ही असिद्ध हाना है अन्यत्र टाप् आदि करने में नहीं । तो इस प्रकार टाप् विधान के प्रसङ्ग में नकारलोप के सिद्ध होने से अजाघतष्टाप् (१२६६) द्वारा अदन्तलक्षण टाप् प्रत्यय प्राप्त हान लगना है । परन्तु इस का वारण भी पूर्ववत् प्रकृतसूत्र म षट्मज्ञा के कारण ही हा जाता है । यहा यह ध्यातव्य है कि मज्ञाविधि के प्रति नो नकार का लोप असिद्ध है ही अतः षट्मज्ञा करने में 'पञ्च' की नकारान्ता अशुण्ण रहनी है, इस से षट्मज्ञा निर्वाध हो कर अदन्तलक्षण टाप् का भी मुतरा निषेध हो जाता है ।

१ स्वसा तिसरचतसरच ननादा दुहिता तथा ।

याता मातेति सप्तंते स्वसादय उदाहृता ॥

२ न च समासप्रत्ययविधौ तदन्तप्रतिषेध (वा०) इति तदन्तविधेर्निषेध शङ्क्य, तत्र उगिद्वर्णग्रहणवर्जम् (वा०) इत्युक्तत्वात् ।

विवक्षा में (ङीप्) ङीप् (प्रत्यय) प्रत्यय ही जाना है। उक् (उ, ऋ, लृ) वण जिम के इत् हो ऐमे शब्द दो प्रकार के हो सकते हैं—प्रातिपदिक या प्रत्यय। भवतुं (आप) यह अब्युत्पन्न सवनाम है, इस का अन्य उकार इत् है अतः यह उगित् प्रातिपदिक है। जन्, वर्म आदि प्रत्यया के जन्थ ऋकार वा उकार अनुनासिक होने से इत् है अतः ये उगित् प्रत्यय हैं। उगित् चाहे प्रातिपदिक हो या प्रत्यय वह जिम के अन्त में हो उस प्रातिपदिक में स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीप् प्रत्यय हो जाना है। ङीप् का डकार लशक्वतद्धिते (१३६) द्वारा तथा पकार हलन्त्यम् (१) द्वारा इत्मज्ञक हो कर लुप्त हो जाता है 'ई' मात्र शेष रहता है। पकार अनुबन्ध अनुदाती संपिणो (३१६) द्वारा अनुदान स्वर के निये तथा डकार अनुबन्ध ङीप्, ङीप् ङीन् इन के सामान्यग्रहण के लिये जोड़ा गया है।

उदाहरण यथा—

भवतु (आप) शब्द सवनाम है। इस का अन्य उकार उपदेशोऽनुनासिक इत् (२८) सूत्र में इत्मज्ञक हो कर लुप्त हो जाता है अतः 'भवत्' शब्द उगित् है। व्यप-दशिवद्भाव (२७८) में यह उगित्त्व भी है। इस में स्त्रीत्व की विवक्षा में प्रकृत उगितश्च (१२६६) सूत्रद्वारा ङीप् प्रत्यय हो कर डकार-पकार अनुबन्धों का लोप करने में—भवत् + ई = भवती शब्द निष्पन्न होता है। जब उच्चल होत में डच्चा-प्रातिपदिकान् (११६) के अधिकार में इस में पर मु आदि प्रत्ययों की उत्पत्ति होती है। प्रथमा के एकवचन की विवक्षा में मुं प्रत्यय ला कर हन्डच्चाभ्यो दीर्घान् मुत्तिस्त्वयुक्त हत् (१७६) द्वारा अपृक्त सकार का लोप करत में भवती (आप स्त्री) प्रयोग सिद्ध हो जाता है। आत्नेपि न श्लेषकवेभवत्या श्लोकद्वयार्थं मुधिया मया किम् ? (नैपथ० ३६६)। अत्र भवती या तत्र भवती के लिये इस व्याख्या के अव्ययप्रकरण में अत्र शब्द पर टिप्पण देखे।

इसी तरह—विदे शतुर्वम् (८३३) द्वारा विद् धातु में पर शतृ का वम् आदेश करने पर 'विद्वम्' प्रातिपदिक निष्पन्न होता है। यह उगित् है, अतः स्त्रीत्व की विवक्षा में इस में उगितश्च (१२६६) द्वारा ङीप् हो कर—विद्वम् + ई। अब ईकार के परे रहने भमज्ञा हा कर वसो सम्प्रसारणम् (३५३) में वम् के वकार को सम्प्रसारण उकार, सम्प्रसारणाच्च (२५८) में पूर्वरूप आदेशप्रत्यययो (१५०) में पत्व तथा अन्त में विभक्तिक्त्वा करत में विदुषो (जानती हुई) प्रयोग सिद्ध हो जाता है।

१ ङीप्, ङीप् ङीन् अथवा टाप् डाप् चाप्—इन स्त्रीप्रत्ययों के करत के बाद में प्रत्यय लाने पर उपर्युक्त प्रक्रिया अच्छी तरह हृदयङ्गम कर लेनी चाहिये। इन बार-बार विन्धार में नहीं निबेंगे। इस प्रक्रिया को आगे प्रायः विभक्तिकार्य में निदिष्ट किया जायेगा।

भू सत्तायाम् (भ्वा० परस्मै०) धातु में वर्तमान काल में लोट्, उसे लोट् शतृ-
 शानवाकप्रथमासमानाधिकरणे (८३१) में शतृ आदेश, शप् (अ) विकरण, धातु के
 ऊकार को मार्वंधानुवगुण में ओकार तथा एचोऽयवायाव (२२) में ओकार को अच्
 आदेश करने पर 'भवत्' यह शत्रन्त प्रातिपदिक निष्पन्न होता है। इस के अन्त में
 'शतृ' यह उगित् प्रत्यय किया गया है अतः 'भवत्' यह उगिदन्त प्रातिपदिक ठहरा।
 अच् स्त्रीत्व की विवक्षा में इम् में प्रवृत्त उगितश्च (१२५०) सूत्रद्वारा डीप् प्रत्यय हो
 कर अनुबन्धों का लोप करने में 'भवत् + ई' इस स्थिति में शप्पयनोऽनित्यम् (३६६) में
 नुंम् का आगम, उंम् अनुबन्ध का लोप, नश्चाऽपदान्तस्य हलि (७८) में अपदान्त
 नकार को अनुस्वार तथा अनुस्वारस्य यपि परसवर्णं (७९) में अनुस्वार को परमवर्ण
 नकार करने पर—भवन्ती। अच् डचल होने में स्वाद्युत्पत्ति के प्रसङ्ग में प्रथमा के
 एक्वचन की विवक्षा में नु प्रत्यय ला कर विभक्तिवाय करने से भवन्ती (होती हुई)
 प्रयोग सिद्ध हो जाता है।^१

इमोप्रकार डुपचेष् पाके (भ्वा० उभय०) धातु से शतृ प्रत्यय कर स्त्रीत्व की
 विवक्षा में डीप् नुम् तथा नकार को अनुस्वार-परमवर्ण कर विभक्तिवाय करने में
 'भवन्ती' (पकानी हुई) प्रयोग सिद्ध हो जाता है।

दिवुं शौडा-विजिगोषा-व्यवहार-श्रुति-स्तुति-मोद-मद-स्वप्न-शान्ति-गतिषु (दिवा०
 परस्मै०) धातु में इमो तरह वर्तमानकाल में लोट् उसे शतृ आदेश, दिवा-
 विभ्य श्यन् (६२९) में श्यन् विकरण तथा हलि च (६१२) में धातु की उपधा इकार
 को दीर्घ करने पर 'दीव्यत्' प्रातिपदिक निष्पन्न होता है। स्त्रीत्व की विवक्षा में इम्
 में उगितश्च (१०५०) सूत्र में डीप् शप्पयनोऽनित्यम् (३६६) में नुंम् का आगम तथा
 नकार को अनुस्वार जोर परमवर्ण कर विभक्ति लाने में दीव्यन्ती (चमवती हुई)
 प्रयोग सिद्ध हो जाता है।

इमोप्रकार—नमन्ती पठन्ती पवन्ती चोरयन्ती आदि की मिद्धि मममती
 चाहिये।

ध्यान रहे कि जहाँ शप् और श्यन् नहीं होता वहाँ नुम् का आगम भी नहीं
 होता। यथा—मुप्यती, ददती, कुवती, जानती अदती, शृण्वती आदि। तुदादिगणाय
 तथा आकारान्त अदादिगणाय धातुआ के शत्रन्ता में डीप् के परे रहने आच्छीनत्तोर्नुंम्
 (३६५) में वैकल्पिक नुम् का आगम हो जाता है। यथा—तुदन्ती-तुदती, लिषन्ती-
 लिषती, पृच्छन्ती-पृच्छती, यान्ती-यानती पान्ती-पानती आदि दो दो रूप बनते हैं। इमो-
 प्रकार भविष्यत्काल में लोट् के स्थान पर शतृ आदेश करने पर भी दो दो रूप बनते
 हैं—भविष्यन्ती-भविष्यती आदि। इस विषय पर इस व्याख्या के प्रथम भाग में (३६६)
 सूत्र पर विस्तृत टिप्पण कर चुके हैं वही देखें।

१ पूर्वोक्त 'भवती' और इस 'भवन्ती' के अर्थ एव प्रक्रिया के अन्तर का अन्तरी तरह
 ममम लेना चाहिये।

अब लोके में कर्णकटुत्वदोष के लिये प्रसिद्ध^१ अग्रिमसूत्र के द्वारा डीप् का पुन-विधान करते हैं—

[लघु०] विधि-सूत्रम्—(१२५१) टिङ्-ढाऽणञ्-द्वयसञ्-दघनञ्-मात्रच्-तयप्-ठक्-ठञ्-कञ्-क्वरप । ४।१।१५॥

अनुपसर्जनं यद् टिटादि, तदन्तं यद् अदन्तं प्रातिपदिकं, ततः स्त्रिया डीप् स्यात् । कुरुचरी । नदट्—नदी । देवट्—देवी । सौपर्णेयी । ऐन्द्री । औत्सी । ऊरुद्वयसी । ऊरुदघनी । ऊरुमात्री । पञ्चतयी । आक्षिकी । प्रास्थिकी^२ । लावणिकी । यादृशी । इत्वरौ ॥

अर्थ—अनुपसर्जन (जर्गण अर्थात् प्रधान) जो टित् या ढ आदि प्रत्यय, वे जिनके अन्त में हो ऐसे अदन्त प्रातिपदिक में परे म्त्रीत्व की विवक्षा में डीप् प्रत्यय हो ।

व्याख्या—टित्-ढ-अण्-अञ्-द्वयमच्-दघनच्-मात्रच्-तयप्-ठक्-ठञ्-कञ्-क्वरप^३ । १।३। डीप् । १।१। (ऋन्नेम्यो डीप् में) । अनुपसर्जनात् । ५।१। (यह पीछे से अधिकृत है) । अन् । ५।१। (अजाद्यतष्टाप् में)^४ । स्त्रियाम् । ७।१। (यह अधिकृत है) । प्रातिपदिकात्, प्रत्यय, परश्च—ये सब भी पूवन अधिकृत है । टित् से ले कर क्वरप् तक का समाहारद्वन्द्व है । न उपसर्जनम् अनुपसर्जनम् तस्मान् = अनुपसर्जनात् नञ्प्रत्यय ।

१ टिङ्ढाणञ्द्वयसञ्चटुङ् सिङ् सोस्तिप्तस्तिप्तिसिप्थस्यभिर्ब-
वस्मस्ताहृशिचटुनाट्टरतङ्गशश्लोष्टधञोऽन्त्यादि टि ।

लोपोऽन्त्योर्वलिवृद्धिरेचिपचिभ दाधाध्वदाप्छेच टे-

रित्यद्दानखिलान्नपन्ति कतिचिच्छब्दान् पठत कटून ॥

(सुभाषितरत्न० । शाङ्खलविक्रीडितम्) ।

२ पाठोऽयं इवचिन्नोपलभ्यते ।

३ सहितैकपदे नित्या नित्या घातूपसर्गयो ।

नित्या समासे वाक्ये तु सा विवक्षामपेक्षने ॥

इस नियम के अनुसार समान में सन्धि नित्य हुआ करती है । अन्त यहा सन्धि-रहित पदा का विच्छेद दर्शाया नहीं जा सकता । परन्तु विग्रहियों के मुखबोध के लिये यहा सन्धिरहित पदों का विशेष दिखाया गया है, परमार्थतः नहीं ।

४ अजाद्यतष्टाप् (१२४६) से 'अन्' पद का अनुवर्तन सम्पूर्ण स्त्रीप्रत्ययप्रकरण में व्याप्त रहता है । यदि इस प्रकरण में किसी प्रकार के विशेषविधान से अन्यथा नहीं कहा जाता तो इसी का ही अधिकार रहता है तब अदन्त प्रातिपदिक में ही प्रत्यय का विधान समझना चाहिये ।

टित्, ढ आदि प्रत्यय हैं। प्रत्ययग्रहणे तदन्ता प्राह्या के अनुसार इन में तदन्तविधि हो कर टिटन्त, टान्त, अणन्त आदि बन जाता है। तब इस का 'प्रातिपदिकात्' के साथ अन्वय होना है। इधर 'अत यह भी 'प्रातिपदिकात्' का विशेषण है, इसलिये इस में भी तदन्तविधि हो कर 'जदन्तात् प्रातिपदिकात्' उपलब्ध हो जाता है। 'अनुपमजनात्' को 'टिड्ढाणत्र०' में अन्वित किया जाता है, 'प्रातिपदिकात्' में नहीं। इस प्रकार सूत्र का यह अर्थ प्राप्त होता है—(अनुपमजनात् टिड्ढाणत्र० इयसज्दघ्नमात्रत्तयप्लकञ्ज्वरप) अनुपसजन अर्थात् प्रधान जो टित् ट अण्, अज्, द्वयमच्, दघ्नच्, मात्रच् तयप् टक्, टञ्, कञ् और क्वरप् प्रत्यय—के जिस के अन्त में हा ऐमे (अन्त = अदन्तात्) अदन्त (प्रातिपदिकात्) प्रातिपदिक में परे (डोप् प्रत्यय) डोप् प्रत्यय हा जाता है (न्त्रियाम्) स्त्रीत्व की विवक्षा में।

इन के क्रमशः उदाहरण यथा—

टित्—ट् इत् यम्य म टित्, जिम का टकार इत् हो वह टित् कहाता है। टित् दा प्रकार का होता है। (१) प्रत्यय का टित् होना। (२) प्रातिपदिक या धातु का टित् होना। यहा दोनों प्रकार के टित् अभिप्रेत हैं। यथा—'कुरुचर' शब्द चरेष्ट (७६२) सूत्रद्वारा टप्रत्ययान्त सिद्ध हुना है। 'ट' प्रत्यय टित् है क्योंकि इस के टकार की चूट (१२६) द्वारा इत्सज्ञा हो जाती है। तो इस प्रकार यहा टित्प्रत्ययान्त अदन्त प्रातिपदिक 'कुरुचर' में स्त्रीत्व की विवक्षा में प्रकृत टिड्ढाणत्र० (१२५१) सूत्र में डोप् प्रत्यय हो कर अनुबन्धलोप करन में कुरुचर+ई हुआ। अब अजादि स्वादि प्रत्यय ई के परे रहते मचि भम् (१६५) द्वारा पूव की भसज्ञा हा जानी है। पुन यस्येति च (२३६) सूत्र म भसज्ञक अकार का लाप कर टजन्त होने से प्रथमैकवचन म सुं प्रत्यय लान पर उम का हल्ङ्घादिलोप हो 'कुरुचरी' (कुरुप् चरति स्त्री कुरुचरी, कुरुदेश में घूमने वाली स्त्री) प्रयाग सिद्ध हो जाता है। यहा यह विशेष ध्यातव्य है कि 'कुरुचर' में तत्पुण्यममाम के कारण उत्तरपद की प्रधानता है अत यहा 'चर' यह टित्प्रत्ययान्त शब्द अनुपसजन (प्रधान) है इसलिये इस स डोप् प्रत्यय हो गया है। यदि टिटन्त आदि उपसजन (गौण) हागे तो डोप् न होगा। यथा—बहव कुरुचुरा यस्या मा बहुकुरुचुरा नगरी। यहा अन्यपदप्रधान बहुव्रीहिसमास म कुरुचर' यह टिटन्त गौण (उपसजन) है अत 'बहुकुरुचर' शब्द म प्रकृतसूत्रद्वारा डोप् न हा कर अजाद्यतष्टाप् (१२५६) से अदन्तलक्षण टाप् ही होना है।

नदट्, देवट्, चोरट् आदि शब्द पचादिसण (७५६) में अचप्रत्ययान्त परे गय हैं। इन के टकार की हलन्त्यम् (१) द्वारा इत्सज्ञा हो कर लाप करने में 'नद, देव,

१ टित् का छोड अन्य सब प्रत्यय हैं। टित्—प्रत्यय अप्रत्यय दाता प्रकार का हुना ह। यदि टित् अप्रत्यय होगा तो भी 'प्रातिपदिकात्' का विशेषण होन के कारण इस से तदन्तविधि हो जायेगी।

चोर' आदि रह जाते हैं। टित्व के कारण इन प्रातिपदिकों से स्त्रीत्व की विवक्षा में प्रकृतमूत्र से डीप् प्रत्यय हो कर भ्रमञ्जक अकार का लोप कर विभक्ति लाने में नदी (दरिया), देवी (दिव्यगुणयुक्ता स्त्री), चोरी (चोर स्त्री) आदि प्रयोग मिद्ध हो जाते हैं।

धातु के टित्व के उदाहरण स्तनधयी (स्तनपान करने वाली बच्ची) आदि व्याकरण के उच्च ग्रन्थों में देखें।

ढ प्रत्यय का उदाहरण यथा—'सुपर्णी डस्' में अपत्य अथ में स्त्रीभ्यो ढक् (१०२०) मूत्र में तद्धित ढक् (ढ) प्रत्यय, तद्धितान्त होने से प्रातिपदिकत्व के कारण सुंपो धातु-प्रातिपदिकयो (७२१) से सुंप् (डस्) का लुक् आयनेयोनीयिय षडलछया प्रत्ययादीनाम् (१०१३) में ढ् को एद् आदेश, प्रत्यय के कित्व के कारण किति च (१००१) से आदिवृद्धि तथा भ्रमञ्जक ईकार का यस्पेति च (२३६) से लोप कर 'सौ-पर्ण्य' यह ढक्प्रत्ययान्त प्रातिपदिक निष्पन्न होता है। अब स्त्रीत्व की विवक्षा में इम से प्रकृत टिड्ढाणञ्० (१२५१) मूत्रद्वारा डीप् प्रत्यय हो भ्रमञ्जक अकार का लोप कर विभक्तिकार्य करने से 'सौपर्ण्यी' प्रयोग मिद्ध हो जाता है। सुपर्णा अपत्य स्त्री सौपर्ण्यी (सुपर्णा की कन्या, गरुड की बहन)। इसीप्रकार विनताया अपत्य स्त्री वैनतेयी^१।

अण्प्रत्यय का उदाहरण यथा—

देवतावाचक प्रथमात् 'इन्द्र' शब्द से सास्य देवता (१०४१) के अर्थ में तद्धित-मञ्जक अण् प्रत्यय हो कर—इन्द्र मुं + अण्। तद्धितान्त हो जाने से प्रातिपदिकत्व के कारण सुंपो धातु-प्रातिपदिकयो (७२१) से सुंप् (मु) का लुक्, प्रत्यय के णित्व के

१ यहा यह विशेषण ध्यातव्य है कि आगम के टित्व के कारण कोई प्रातिपदिक टित् नहीं होता। अत एव 'पठित' आदि को इट् आगम के कारण टित् न मानने में टित्वलक्षण डीप् नहीं होता, अदन्तलक्षण टाप् ही होता है। यथा—पठिता अष्टा-ध्यायी, चलिता लक्ष्मी, ग्रथिता माला, पूजिता विद्या भूयिता कन्या, पतिता पुष्पावलि इत्यादि। इस में प्रमाण है साय-चिर-प्राहणे-प्रगेऽव्ययेन्यष्ट्यु-ट्युलौ तुट् च (१०६६) मूत्र में तुट् आगम को टित् करने पर भी ट्यु और ट्युल् प्रत्ययों को पुन टित् करना। यदि आगमों का टित्व डीप् का निमित्त होता तो प्रत्ययों को डीप् के लिये पुन क्यों टित् करने ? उदाहरण यथा—मायन्तनी बेला, चिरन्तनी गाथा आदि।

२ नन्वत्र निरनुबन्धकग्रहणे न सानुबन्धकस्य (५०) इति परिभाषया शिलाया ढ (५३१०२), ढरुण्डसि (४४१०६) इत्यनयोरेव ग्रहणमुचितं न तु सानुबन्धकस्य ढक। मत्यम्। तयो म्निवामप्रवृत्तेरगत्या सानुबन्धकस्य ढस्य ग्रहणं क्रियन् इति भाष्ये स्पष्टम्।

कारण तद्विधेयत्वामादे (६३८) द्वारा आदिवृद्धि तथा यस्येति च (२३६) में भ्रमजक अकार का लोप करने पर 'ऐन्द्र' यह अणप्रत्ययान्त प्रातिपदिक निष्पन्न होता है। अब स्त्रीत्व की विवक्षा में इस में टिड्ढाणन्० (१२५१) सूत्रद्वारा डीप् प्रत्यय, भ्रमजक अकार का यस्येति च (२३६) से लोप तथा विभक्तिवाच्य करने में 'ऐन्द्री' प्रयोग सिद्ध हो जाता है। इन्द्रो देवताज्य इति ऐन्द्री। इन्द्र जिम का देवता है ऐमी दिगा (पूर्वा), ऋचा आदि।

अण् प्रत्यय तद्धित और कृत् दो प्रकार का हुआ करता है। यहाँ तद्धित का उदाहरण दिया गया है। कृत्मञ्जक अण् प्रत्यय के उदाहरण—कुम्भकारी, नगरकारी आदि समझने चाहिये। तद्धित अण् का अन्य उदाहरण—चन्द्रमस इयम्—चान्द्रमसी^१।

अण्प्रत्यय की तरह शौलम् (११२८), छत्रादिभ्यो ण (४४६२) इन में णप्रत्यय करने पर भी ज्ञापक के आश्रय से इस में भी डीप् की प्रवृत्ति हो जाती है—ताच्छीलिके षोऽपि (अण्कार्यं भवति)—सि० की०। उदाहरण यथा—चुरा शौलमस्या' इस अर्थ में चुराशब्द में छत्रादिभ्यो ण (४४६२) सूत्रद्वारा णप्रत्यय करने पर 'चौर' शब्द निष्पन्न होता है। स्त्रीत्व की विवक्षा में इस में भी डीप् प्रत्यय हो कर 'चोरी' (चोरी करने के स्वभाव वाली औरत) प्रयोग सिद्ध हो जाता है। इसीप्रकार—तप शौलमस्या इति तापमी आदि में समझना चाहिये। परन्तु ज्ञापकसिद्ध न सर्वत्र (ज्ञापको से ज्ञाप्यमान कार्यं सब जगह प्रवृत्त नहीं होता, अर्थात् कहीं-कहीं रक भी जाता है) इस परिभाषा का आश्रय ले कर 'छात्र' इस अणप्रत्ययान्त प्रातिपदिक का स्त्रीसिद्ध 'छात्रा' ही बनेगा, डीप् हो कर 'छात्री' नहीं, अदन्तलक्षण टाप् ही होगा। गुरोर्दोषाणाम् आवरण छत्रम्, तच्छीलमस्या इति छात्रा (व० शब्देन्दुशेखर में नागेश-भट्ट)^२।

अण्प्रत्यय का उदाहरण यथा—

मण्मन्त 'उत्स' शब्द में तत्र भव (१०६२) के अर्थ में उत्सादिभ्योऽण् (१००२) सूत्र से तद्धित अण् प्रत्यय, तद्धितान्त के प्रातिपदिकत्व के कारण मुंप् (डि) का लुक्, प्रत्यय के जित्व के कारण आदिवृद्धि (६३८) तथा अन्त में यस्येति च (२३६) में भ्रमजक अकार का लोप करने में 'औत्स' यह अण्प्रत्ययान्त प्रातिपदिक निष्पन्न

१

चत्र गता षष्पगुणान् न भुङ्क्ते

षष्पाश्रिता चात्रमसीमभित्याम् ।

उमामुञ्च तु प्रतिपद्य सौता

द्विसन्धयो प्रीतिमवाप सहसो ॥

(कुमार० १४३)

२ इसीप्रकार—प्रज्ञात्प्रत्यस्था इति प्रज्ञा। यहाँ प्रज्ञा-शब्दाद्विभ्यो ण (५२१०१) सूत्रद्वारा मत्वर्थीय 'ण' प्रत्यय किया गया है। डीप् नहीं होता, टाप् हो जाता है।

होता है। स्त्रीत्व की विवक्षा में इस में प्रवृत्तसूत्र टिड्ढाणञ्० (१२५१) द्वारा डीप् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, भमञ्जक अकार का लोप कर विभक्तिकार्य करने में 'औत्सी' प्रयोग सिद्ध हो जाना है। उत्प्रे भवा—औत्सी, झरने में होने वाली मच्छली आदि।

द्वयसच्, दघ्नच् और मात्रच् प्रत्ययो के उदाहरण यथा—

प्रथमाद्विवचनान्त 'ऊरु औ' से 'ऊरु प्रमाणमन्या' (ऊरु है प्रमाण जिस के) टम अर्थ में प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच् (११६८) सूत्रद्वारा तद्धितसञ्जक द्वयसच्, दघ्नच् और मात्रच् प्रत्यय हो कर सुंप् (औ) का लुक् करने में 'ऊरुद्वयम, ऊरुदघ्न, ऊरुमात्र' ये तीन तद्धितान्त प्रातिपदिक निष्पन्न होते हैं। स्त्रीत्व की विवक्षा में इन से प्रकृत टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्० (१२५१) सूत्रद्वारा डीप् प्रत्यय, अनुबन्धलोप तथा भसञ्जक अकार का यत्सेति च (२३६) से लोप कर विभक्तिकार्य करने में 'ऊरुद्वयसी, ऊरुदघ्नी, ऊरुमात्री' ये प्रयोग सिद्ध हो जाते हैं। ऊरु = पट्टो के प्रमाण जितनी गहरी नदी आदि। इसीप्रकार—जानुद्वयसी जानुदघ्नी, जानुमात्री आदि प्रयोग बनते हैं। जानुदघ्न्य आप मरितोऽस्या (इस नदी का जल घुटनो प्रमाण वाला है)।

तयप् प्रत्यय का उदाहरण यथा—

प्रथमाबहुवचनान्त पञ्चन्शब्द से 'पञ्च अवयवा अस्या' (पाञ्च है अवयव इस के) इस अर्थ में सख्याया अवयवे तयप् (११७२) सूत्र से तद्धितसञ्जक तयप् प्रत्यय हो सुंप् (जम्) का लुक् तथा पदान्त नकार का न लोप प्रातिपदिकान्तस्य (१८०) से लोप करने पर 'पञ्चतय' प्रातिपदिक निष्पन्न हो जाता है। अब स्त्रीत्व की विवक्षा में इस से प्रवृत्त टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्० (१२५१) सूत्रद्वारा डीप् प्रत्यय, अनुबन्धलोप तथा भमञ्जक अकार का लोप कर विभक्तिकार्य करने पर पञ्चतयी' प्रयोग सिद्ध हो जाता है। वृत्तद्धितसमासैकशेषसनाद्यन्तघातुरूपा पञ्चतय्यो वृत्तय। दश अवयवा (मण्डलरूपा) अस्या इति दशतयी ऋक्संहिता।

ठक्प्रत्यय का उदाहरण यथा—

असैर्दीव्यतीति आधिकी स्त्री (पासा से जुआ खेलने वाली स्त्री)। तृतीयाबहुवचनान्त अक्षशब्द से 'पासो मे मेलता या जीतता है' इस अर्थ में तेन दीव्यति खनति जयति जितम् (१११७) सूत्रद्वारा तद्धितसञ्जक ठक् (ठ) प्रत्यय, तद्धितान्त के प्राति-

१ उत्स नाम के ऋषि की कन्या (उत्सस्यापत्य स्त्री) इस अर्थ की विवक्षा में उत्सा-विभ्योऽञ् (१००२) से अञ्प्रत्यय तो होगा—औत्स, परन्तु स्त्रीत्व की विवक्षा में वहा प्रवृत्तसूत्र से डीप् न हो कर इस के बाधक जातेरस्त्रीविषयादयोपधात् (१२६६) से जातिलक्षण डीप् प्राप्त होगा। पुन उस का भी शाङ्गैरवाद्यो डीन् (१२७५) से बाध हो कर डीन् प्रवृत्त हो जायेगा। ध्यान रहे कि गोत्र च चरण सह के अनुसार यह जातिवाचक है। डीप्, डीप्, डीन् प्रत्ययो के कारण स्वर में ही अन्तर पडता है लौकिकरूपसिद्धि में नहीं।

पदिकत्व के कारण मूँष्णक्, ठकार को ष्येष् (१००७) में इक् आदेश, प्रत्यय के कित्तव के कारण किति च (१००१) में आदिवृद्धि तथा अन्त में भनञ्क अकार का यस्सेनि च (२३६) में लोप करने पर 'आधिक' प्रातिपदिक निष्पन्न होता है। अब म्त्रोत्व की विवक्षा में इस प्रकृत टिड्ढाणञ्ठयनग्दणञ्मात्रचनयत्कृ० (१०५१) मूत्र-द्वारा ङीप् प्रत्यय, अनुबधलोप एव भनञ्क अकार का यस्सेनि च (२३६) में लोप कर विभक्तिकार्य करने में 'आधिकी' प्रयोग सिद्ध हो जाता है।

ठञ् प्रत्यय का उदाहरण यथा—

प्रम्येन शीता प्राम्पिकी (प्रम्य भर वन्तु दे कर खरोदो हुई म्त्रोनिह्व वस्तु) । तृतीयान्त प्रम्यशब्द में तेन शीतम् (११४४) अर्थ में तद्धितमञ्क ठञ् (ठ) प्रत्यय, तद्धितान्त होने में प्रातिपदिकत्व के कारण मूँष् (टा) का लृक्, प्रत्यय के ठकार को ष्येष् (१००७) में इक् आदेश, प्रत्यय के कित्तव के कारण किति च (१००१) में आदि अच् का वृद्धि (आकार) तथा भनञ्क अकार का यस्सेनि च (२३६) में लोप करने पर 'प्राम्पिक' यह तद्धितान्त प्रातिपदिक निष्पन्न होता है। अब इन में म्त्रोत्व की विवक्षा में प्रकृत टिड्ढाणञ्ठयनग्दणञ्मात्रचनयत्कृ० (१०५१) मूत्रद्वारा ङीप् प्रत्यय, अनुबधलोप तथा भनञ्क अकार का लोप कर विभक्तिकार्य करने में 'प्राम्पिकी' प्रयोग सिद्ध हो जाता है।

ठञ् प्रत्यय का दूसरा मुप्रसिद्ध उदाहरण—

तदप ष्यमन्या इति लावणिकी (तदप जिम वा ष्य है अर्थात् तदप दचन वानो म्त्रो) । प्रथमान्त तदप शब्द में तदम्य ष्यम् (४४५१) के अर्थ में तदपङ्-ठञ् (४४५२) मूत्र में तद्धितमञ्क ठञ् (ठ) प्रत्यय तद्धितान्त होने में प्रातिपदिकत्व के कारण मूँष् (मु) का लृक् ठकार को इक् आदेश प्रत्यय के कित्तव के कारण आदि वृद्धि तथा यस्सेनि च (२३६) में भनञ्क अकार का नाप करने पर 'लावणिक' यह तद्धितान्त प्रातिपदिक निष्पन्न होता है। अब म्त्रोत्व की विवक्षा में इस में प्रकृत टिड्ढाणञ्ठयनग्दणञ्मात्रचनयत्कृ० (१०५१) मूत्रद्वारा ङीप् प्रत्यय अनुबधलोप तथा भनञ्क अकार का लोप कर विभक्तिकार्य करने में 'लावणिकी' प्रयोग सिद्ध हो जाता है।^१

कञ्प्रत्यय का उदाहरण यथा—

१ जब ठक् और ठञ् दोनों प्रत्ययों का इन मूत्र में रहना अभीष्ट है तो केवल 'ठ' ही क्यों नहीं कह दें, इन में ठक् और ठञ् दोनों का रहना ही उद्देश्य ? इन मूत्रों का उत्तर यह है कि यदि 'ठ' ही कहें तो ठक् और ठञ् के नाप नाप ठन का भी रहना ही जाता जो अनिष्ट था। तथाहि—दणोऽप्यन्या इति दणिका । यहा अन्त इतिदनी (११६१) में ठञ् प्रत्यय बिना गया है। इन में म्त्रोत्व में ङीप् न कर टाप् करता ही अभीष्ट है।

यादृश (जैसा) शब्द पीछे हलन्तपुलिङ्गप्रकरण में त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कर्त्तुं च (३४७) सूत्रद्वारा कर्त्तृप्रत्ययान्त सिद्ध किया जा चुका है। कृदन्त होने में कृत्तद्धित-समासाश्च (११७) सूत्रद्वारा इस की प्रातिपदिकसज्ञा हो जाती है। स्त्रीत्व की विवक्षा में टिड्ढाणञ्द्वयसज्दध्नाञ्ज्मात्रञ्चत्तयपठकञ्चञ्चञ् (१२५१) सूत्रद्वारा डीप् प्रत्यय, अनुबन्ध-लोप तथा यस्येति च (२३६) में भ्रमञ्जक अकार का भी लोप कर विभक्ति लाने से 'यादृशी' (जैसी) प्रयोग सिद्ध हो जाता है। यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी—(पञ्च० ५ ६८)। इसीप्रकार—तादृशी (वैसी), कीदृशी (कैसी), मादृशी (मुझ जैसी), त्वादृशी (तुम जैसी), सदृशी (वैसी) आदियों में डीप् प्रत्यय समझना चाहिये।

क्वरप्प्रत्यय का उदाहरण यथा—

इण् गतौ (अदा० परस्मै०) धातु में तच्छील आदि कर्त्ता अर्थ में इण्-नरा-जि-सत्तिभ्य क्वरप् (३२१६३) सूत्रद्वारा कृत्सञ्जक क्वरप् (क्वर) प्रत्यय कर ह्रस्वत्व्यपिति कृति तुक् (७७७) से तुक् का आगम करने पर 'इत्वर' (गमनशील) यह कृदन्त प्रातिपदिक निष्पन्न होता है। अब इस में स्त्रीत्व की विवक्षा में प्रकृत टिड्ढाणञ्द्वय-सज्दध्नाञ्ज्मात्रञ्चत्तयपठकञ्चञ्चक्वरप (१२५१) सूत्रद्वारा ङीप्, अनुबन्धलोप एव भ्रमञ्जक अकार का लोप कर विभक्तिप्रकाय करने में 'इत्वरी' (गमनशीला, पुरुषली कुलटा) प्रयोग सिद्ध हो जाता है। इसीप्रकार—नश्वरी (नाशशीला), जित्वरी (जयशीला) सूत्वरी (प्रसरणशीला), गत्वरी (गमनशीला) आदि प्रयोगों में डीप् समझना चाहिये। साहित्यिक प्रयोग यथा—

शरदम्बुधरच्छाया गत्वयो यौवनश्रिय ।

आपातरम्या विपया पर्यन्तपरितापिन ॥ (किरात० ११ १२)

विशेष वक्तव्य—यतमाना, पचमाना, एधमाना, वर्धमाना, दक्ष्यमाणा, वीक्ष्य-माणा, क्रियमाणा इत्यादियों में लैट् या लृट् के स्थान पर होने वाले शानच् प्रत्यय में

१ 'क्वरप्' इस सानुबन्ध कथन के कारण वरच्प्रत्ययान्त प्रातिपदिक में स्त्रीत्व में ङीप् नहीं होना, टाप् ही होना है। स्थेशभासपिसक्तो वरच् (३२१७५)। स्या-वर, म्यावरा, ईश्वर ईश्वरा, भास्वर भास्वरा, पेम्वर, पेम्बरा, विकस्वर, विकस्वरा। तथा च भारवि—

वि यस्तमङ्गलमहौषधिरौश्वराया (किरात० ५ ३३)। वही वही 'ईश्वरा' के स्थान पर 'ईश्वरी' का भी प्रयोग देखा जाता है। यथा देवीमाहात्म्य में—

प्रसीद विश्वेश्वरि पाहि विश्व त्वमौश्वरी देवी चराचरस्य । इन स्थानों में ईश्वर-शब्द औणादिक वरट्प्रत्ययान्त है जत टित्वान्ङीप् समझना चाहिये। अथवा इन स्थानों में पुयोग में पुयोगदाह्यायाम् (१२६१) द्वारा ङीप् ममया जा सकता है [अन्वेभ्योऽपि दृश्यते (७६६) इति क्वनिपि वनो र च (४१७) इति ङीङी—इत्यपरे]।

म्यानिवद्भाव के कारण टित्व सन्नमित नही होता, अत डीप् नही हो सकता। अजाघ-
तप्याप् (१२४६) सूत्रद्वारा अदन्तलक्षणटाप् ही होता है। इस में लिङ्स्यानी परम्पदो मे
यामुंद् आगम को डित् करना ज्ञापक है। यदि लिङ् के आदेश तिप् आदियो मे म्या-
निवद्भाव के कारण डित्व आ जाये तो यामुंद् को डित् अतिदेश करना व्यर्थ हो जाये।
अत इस से यह ज्ञापित होता है कि लकाराश्रित अनुबधकार्य आदेशो मे नही हुआ
करते। इस से लृट् के स्थान पर होने वाले शानच् मे उगित्वधर्म के न आने मे उगि-
तरच (१२५०) द्वारा 'वदयमाणा' आदि मे डीप् नही होना। इस विषय पर विशेष
विचार व्याकरण के उच्च ग्रन्थो मे देखें।

अब इस सूत्र पर एक वार्तिक का अवतरण करते हैं—

[लघु०] वा०—(१०१) नञ्-स्नञ्जीकक्-ख्युस्तरुण-तलुनानामुप-
संख्यानम् ॥

स्त्रैणी। पौंस्नी। शाक्तीकी। आढ्यङ्करणी। तरणी। तलुनी ॥

अर्थ—न-प्रत्ययान्त, स्न-प्रत्ययान्त, ईकक्-प्रत्ययान्त और ख्युन्-प्रत्ययान्त
प्रातिपदिको स तथा तन्ण और तलुन प्रातिपदिको से स्त्रीत्व की विवक्षा मे डीप्
प्रत्यय हो।

व्याख्या—यह वार्तिक टिड्ढाणम्० (१२५१) सूत्र पर भाष्य में पडा गया है
अत इस से स्त्रीत्व की विवक्षा मे डीप् का विधान अभीष्ट है। इस वार्तिक मे परि-
गणित नन्, स्नञ्, ईकक् और ख्युन् प्रत्यय हैं। तरुण और तलुन प्रातिपदिक हैं।
प्रत्ययग्रहणे तदन्ता ग्राह्या (५०) के अनुमार प्रत्यया से तदन्ता का ग्रहण सम्पना
चाहिये। वार्तिक के क्रमशः उदाहरण दिये जाते हैं—

नञ्प्रत्ययान्त का उदाहरण यथा—

सप्तम्यन्त स्त्रीशब्द से प्राग्भवनीय भव आदि अर्थों मे स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञ्जी
भवनात् (१००३) सूत्रद्वारा तद्धित नन् (न) प्रत्यय हो कर तद्धितान्तरत्वेन प्रातिपदिक-
सज्ञा के कारण सुप् (सुप्) का लुक्, प्रत्यय के त्रित्व के कारण तद्धितेष्वचामादे
(६३८) से आदिवृद्धि एव उकार को णकार करने से 'स्त्रैण' यह नञ्प्रत्ययान्त प्राति-
पदिक निष्पन्न होता है। अब इस मे स्त्रीत्व की विवक्षा मे प्रवृत्त नञ्-स्नञ्जीकक्०
(वा० १०१) वार्तिक से डीप् प्रत्यय, अनुबधलोप तथा भसञ्जक अकार का यथेति च
(२३६) से लोप कर विभक्तिकार्य करने मे 'स्त्रैणी' प्रयोग मिट्ट हो जाना है। स्त्रीपुं
भवा स्त्रैणी। स्त्रियो मे होने वाली (कथा, चर्चा, प्रवृत्ति आदि)।

स्नञ्प्रत्ययान्त का उदाहरण यथा—

सप्तमीबहुवचनान्त पुं शब्द से प्राग्भवनीय भव आदि अर्थों मे स्त्रीपुंसाभ्यां
नञ्स्नञ्जी भवनात् (१००३) सूत्रद्वारा तद्धितसञ्जक् स्नञ् (स्न) प्रत्यय हो कर तद्धितान्त-
त्वेन प्रातिपदिकसज्ञा के कारण मुंप् (मुप्) का लुक्, प्रत्यय के त्रित्व के कारण आदिवृद्धि

तथा पदत्व के कारण पुस् के मकार का सयोगान्तलोप हो कर स्न्-प्रत्ययान्त 'पौस्ति' शब्द निष्पन्न होता है। अब स्त्रीत्व की विवक्षा में इस में प्रकृत नञ्स्नञीकक्० (वा० १०१) वाक्तिकद्वारा डीप् प्रत्यय, अनुबन्धलोप तथा भसज्ञक अकार का यस्येति च (२३६) से लोप कर विभक्तिवार्यं करने से 'पौस्नी' प्रयोग सिद्ध हो जाता है। पुसु भवा पौस्नी। पुरुषो में होने वाली (कथा, चर्चा, प्रवृत्ति आदि)। साहित्यगत प्रयोग यथा—

सगच्छ पौस्ति । स्त्रेण मा युवान तरुणी शुभे ।

राघव प्रोष्य पापीयान् अहीहि तमक्ञ्चनम् ॥ (भट्टि० ५६१)

[सीता के प्रति रावण कह रहा है—हे सीते ! हे पुरुषयोग्ये ! तरुणी तुम, स्त्रियो के योग्य मुख तरुण के पास रहो। रामचन्द्र राज्य में भ्रष्ट हो कर भाग्यहीन हो चुका है अत एव उम निर्घन को छोड़ दो। पुमे हिता पौस्नी तन्मम्बुद्री—'पौस्नि'।]

ईक्-प्रत्ययान्त का उदाहरण यथा—

शक्ति प्रहरणमस्या इति शाक्तीकी (शक्ति=बरछी है हथियार जिस का, ऐसी स्त्री)। प्रहरण (शस्त्र) वाचक प्रथमान्त 'शक्ति' शब्द से तदस्य प्रहरणम् के अर्थ में शक्तिपट्टघोरीकक् (४४५६) सूत्रद्वारा तद्धितसज्ञक ईकक् (ईक्) प्रत्यय हो, सुन्नुक्, प्रत्यय के कित्त्व के कारण आदिवृद्धि एव यस्येति च (२३६) से भसज्ञक इकार का लोप करने पर 'शाक्तीक' यह ईक्-प्रत्ययान्त प्रातिपदिक निष्पन्न होता है। जब स्त्रीत्व की विवक्षा में इस से प्रकृत वाक्तिक नञ्स्नञीकक्० (वा० १०१) द्वारा डीप प्रत्यय, अनुबन्धलोप तथा भसज्ञक अकार का यस्येति च (२३६) से लोप कर विभक्ति-वार्यं करने से 'शाक्तीकी' प्रयोग सिद्ध हो जाता है। इसीप्रकार—यष्टि प्रहरणमस्या इति 'याष्टीकी' [लाठी हथियार धारण करने वाली स्त्री] प्रयोग सिद्ध होता है।

ह्यु-प्रत्ययान्त का उदाहरण यथा—

अनादयम् आदय कुवन्ति अनयेति आदयङ्करणा (विद्या)। जिम के द्वारा अनादय (निर्घन) व्यक्ति को आदय (धनी) बनाया जाता है, ऐसी विद्या आदि। यहा च्यर्थ अर्थात् अभूततद्भाव में वर्तमान 'आदय' कर्म के उपपद रहते डुकृञ् करणे (तना० उभय०) घातु में करण कारक में आदय-सुभग-स्थूल-पतित-नग्नाऽन्ध-प्रियेषु च्यर्थेष्वेवौ कृञ् करणे ह्युन् (३२५६) सूत्रद्वारा करणकारक में कृत्मज्ञक ह्युन् (यु) प्रत्यय, युवोरनाको (७८५) से 'यु' को 'अन' आदेश, घातु को आघघातुकगुण, उपपदममास, खित् के परे रहते अर्हद्विषदजन्तस्य भुम् (७६७) से भुम् का आगम, मकार को अनुस्वार, अनुस्वार को वैकल्पिक परमवर्ण तथा अन्त में अट्क्प्वाङ् (१३८) में नकार को णकार करने पर 'आदयङ्करण' यह ह्यु-प्रत्ययान्त कृदन्त शब्द निष्पन्न हो जाता है। अब इस में स्त्रीत्व की विवक्षा में प्रकृत नञ्स्नञीकक्-ह्युस्तर्हणतलुना-

नाम्० (वा० १०१) से डीप् प्रत्यय हो कर भसञ्जक अकार का लोप एव विभक्ति-कार्य करने से 'आढ्यङ्करणी' प्रयोग सिद्ध हो जाता है। इसीप्रकार—सुभगङ्करणी, स्थूलङ्करणी, पलितङ्करणी (जरा), नग्नङ्करणी, अघङ्करणी, प्रियङ्करणी' प्रयोगों की सिद्धि जाननी चाहिये।

तरण और तलुन प्रातिपदिकों के उदाहरण यथा—

तरण और तलुन प्रातिपदिक युववाचक हैं। इन से स्त्रीत्व की विवक्षा में प्रकृतवार्तिक नञ्स्त्रीकङ्क्षुस्तर्षणतलुनानामुपसर्ष्यानम् (वा० १०१) से डीप् प्रत्यय, अनुबन्धलोप एव भसञ्जक अकार का लोप कर विभक्ति लाने में 'तरणी' 'तलुनी' प्रयोग सिद्ध हो जाते हैं। दोनों का अर्थ है—युवति स्त्री।^१

विशेष वक्तव्य—तरण और तलुन शब्द वयोवाचक हैं। इन में स्त्रीत्व की विवक्षा में धयस्यप्रथमे (वा०) वार्तिकद्वारा डीप् प्रत्यय होना चाहिये था। परन्तु गौरादिगण में पाठ के कारण धिद्-गौरादिभ्यश्च (१२५५) सूत्रद्वारा डीप् को बाध कर डीप् का विधान किया गया है। इस पर प्रकृतवार्तिक से डीप् का पुनर्विधान किया जाता है। गौरादिगण में पाठ के सामर्थ्य से पक्ष में डीप् भी हो जायेगा। डीप् करने पर भी रूप में कोई अन्तर नहीं पड़ेगा, पर स्वर में अन्तर आ जायेगा। डीप् करने पर आद्युदात्त तथा डीप् करने पर अन्तोदात्त स्वर हो जायेगा।

न्यासकार तथा कैपट आदियों का कथन है कि इस वार्तिक में पठे तरण और तलुन शब्द वयोवाचक नहीं अपितु सुरा आदि की प्रत्यग्रता (तीक्ष्णता, नवीनता, उत्कृष्टता) आदि के वाचक हैं अतः प्रकृत वार्तिक से डीप् हा कर 'तरणी तलुनी वा सुरा' बनेगा। वयोवाचकों से तो गौरादित्वात् डीप् ही होगा डीप् नहीं। परन्तु प्रदी-पोद्घोनकार नागेशभट्ट का कथन है कि तरण और तलुन शब्द मुख्यतया वयोवाचक ही हैं प्रत्यग्रता आदि तो इन का लाक्षणिक अर्थ है अतः उपर्युक्तप्रकारेण डीप् और डीप् प्रत्ययों की पर्याय से ही प्रवृत्ति होगी।

अब अग्रिमसूत्रद्वारा यजन्त से डीप् का विधान करते हैं—

१ सुभगङ्करणी (जो कल्याणयुवन नहीं उसे कल्याणयुवन बनाया जाता है जिम के द्वारा)। स्थूलङ्करणी (जो स्थूल नहीं उसे स्थूल बनाया जाता है जिम के द्वारा)। पलितङ्करणी (जो बूढ़ा नहीं उसे बूढ़ा बनाया जाता है जिम के द्वारा)। नग्नङ्करणी (जो नग्न नहीं उसे नग्न किया जाता है जिस के द्वारा)। अघ-ङ्करणी (जो अग्घा नहीं उसे अग्घा किया जाता है जिम के द्वारा)। प्रियङ्करणी (जो प्रिय नहीं उसे प्रिय बनाया जाता है जिम के द्वारा)।

२ अनम्यासे विष विद्या, अजोर्गे भोजन विषम्।

विष सभा दरिद्रस्य, धृष्टस्य तरणो विषम् ॥ (हिनोप०)

[लघु०] विधि-सूत्रम्— (१२५२) यञश्च ।४।१।१६॥

यञन्तात् स्त्रिया डीप् स्यात् । अकारलोपे कृते—

अर्थ—स्त्रीत्व की विवक्षा मे यञ्प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से परे डीप् प्रत्यय हो ।

अकारलोपे कृते—यस्येति च (२३६) सूत्रद्वारा अकार का लोप करने पर (अग्रिमसूत्र प्रवृत्त होता है) ।

व्याख्या—यञ १५।१। च इत्यव्ययपदम् । डीप् ।१।१। (ऋन्नेम्यो डीप् ते) ।

प्रातिपदिकात्, स्त्रियाम्, प्रत्यय, परश्च—ये सब पूवन अधिकृत हैं । यञ् यह प्रत्यय है, अतः प्रत्ययग्रहणे तदन्ता ग्राह्या (प०) परिभाषाद्वारा तदन्तविधि हो कर 'यञन्तात् प्रातिपदिकात्' उपलब्ध हो जाता है । अर्थ—(यञ = यञन्तात्) यञन्त (प्रातिपदिकात्) प्रातिपदिक मे (पर) परे (च) भी (डीप्) डीप् (प्रत्यय) प्रत्यय हो जाता है (स्त्रियाम्) स्त्रीत्व की विवक्षा मे । यदि पूर्वस्य टिड्ढाणञ्० (१२५१) सूत्र मे टिट्, ढ, अण् आदियो के साथ यञ् को भी पठ देने तो इस सूत्र के बनाने की आवश्यकता न पड़ती । परन्तु मुनि ने ऐसा नहीं किया । इस का कारण यह है कि वे इस से अगले प्राचा एफ तद्धित (१२५४) सूत्र मे केवल 'यञ' का ही अनुवर्तन चाहते हैं टिड्ढाणञ्० आदि का नहीं अतः उन्होंने पृथक् सूत्र बनाया है^१ ।

सूत्र का उदाहरण यथा—

गर्गस्य गोत्रापत्य स्त्री गर्गा (गर्ग की गोत्रसन्तति कन्या) । गोत्रापत्य अर्थ मे पष्ठ्यन्त गर्गशब्द से गर्गादिभ्यो यञ् (१००८) सूत्रद्वारा तद्धितमञ्जक यञ् (य) प्रत्यय करने पर तद्धितान्त हो जाने मे प्रातिपदिकत्व के कारण सुंपो धातु-प्रातिपदिकयो (७२१) से प्रातिपदिक के अवयव सुंप् (डम्) का लुक्, प्रत्यय के बित्त्व के कारण तद्धितेष्वचामादे (९३८) से आदिवृद्धि एवम् अन्त मे यस्येति च (२३६) स भमञ्जक अकार का लोप करने पर 'गार्ग्य' यह तद्धितान्त प्रातिपदिक निष्पन्न हो जाता है । अब इस से स्त्रीत्व की विवक्षा मे प्रवृत्त यञश्च (१२५२) सूत्रद्वारा डीप् प्रत्यय, उम के अनुवर्धो का लोप तथा पूर्ववत् भसञ्जक अकार का लोप करने पर—'गार्ग्य् + ड्' ड्म स्थिति मे अग्रिमसूत्र प्रवृत्त होता है—

१ यहा 'च' का कोई विशेष प्रयाजन प्रतीत नहीं होता, डीप् की अनुवृत्ति यहा समाप्त नहीं हो रही । आगे वयसि प्रथमे (१२५६) आदि सूत्रो मे भी ड्म का अनुवर्तन हो रहा है । न्यामकार के अनुसार यहा 'च' का ग्रहण अनुक्तो के ममुच्चयार्थ है, अतः नञ्स्त्रीकञ्० (वा० १०१) वार्तिक पाणिन्यनुमत मिद्ध हो जाता है ।

२ टिड्ढाणञ्मूत्रे एव यञ पाठेन डीपि मिद्धे प्राचा एफ तद्धित (१२५४) इत्युत्तर-सूत्रे यञ एवानुवृत्तिर्यथा स्यादित्यतो योगविभाग इत्यवसेयम् ।

[लघु०] विधि-सूत्रम्—(१२५३) हलस्तद्धितस्य ।६।४।१५०॥

हल परस्य तद्धितयकारस्य उपधाभूतस्य लोप ईकारे परे । गार्गी ॥

अर्थ—हल् से परे तद्धित के उपधाभूत यकार का लोप हो जाता है ईकार पर हो तो ।

ध्यास्या—हल ।१।१। तद्धितस्य ।६।१। उपधाया ।६।१। य ।६।१। (सूर्य-तिष्याऽगस्त्य-भस्स्याना य उपधाया सूत्र मे) । लोप ।१।१। (ढे लोपोऽद्वा सूत्र मे) । इति ।७।१। (यस्येति च से) । अर्थ—(हल) हल् से परे (तद्धितस्य) तद्धित के अवयव (उपधाया) उपधा (य) यकार का (लोप) लोप हो जाता है (इति) ईकार परे हो तो ।

'गार्ग्यं + ई' महा ईकार परे है अत हल्-गकार से परे तद्धित प्रत्यय यञ् की उपधा यकार का प्रकृतसूत्र से लोप हो जाता है—गार्ग् -- ई = गार्गी । विभक्तिवाय हल्-घादिलोप करने से 'गार्गी' प्रयोग सिद्ध हो जाता है ।

इसीप्रकार—वत्सस्य गोत्रापत्य स्त्री वात्मी (वत्स की गोत्रमन्ताति कन्या) । वत्सशब्द भी गार्गादिगण में पढ़ा गया है ।

शङ्का—इस सूत्र में 'उपधाया' की अनुवृत्ति लान की आवश्यकता ही क्या है ? सीधा—हल् से परे तद्धित के यकार का लोप हो ईकार पर होने पर—ऐसा सरल अर्थ क्यों नहीं कर देते ? गार्ग्यं + ई = 'गार्गी' सिद्ध हो जायेगा । यदि कहो कि यस्येति च (२३६) द्वारा लुप्त हुआ अकार अच् परस्मिन्पूर्वविधौ (६६६) सूत्र में स्थानिवद्भाव के कारण उपस्थित हो कर पूर्वविधि (यकारलोप) में रूकावट डालता है अत 'उपधाया' का ग्रहण किया गया है, तो यह भी ठीक नहीं, क्योंकि न पदान्त-द्विवचन-वरे-यलोप-स्वर-सवर्णानुस्वार-दीर्घ-जग्-ध्विर्विधियु (१ १ ५७) सूत्र में यकार का लोप करने में स्थानिवद्भाव का निषेध कहा गया है । इस तरह ईकार और यकार के मध्य किसी प्रकार का व्यवधान न पडने से सीधा लोप हो जायगा ।

समाधान—यस्येति च (२३६) वाला लोप नया प्रकृतसूत्रद्वारा विहित यह यकार का लोप—दोनों आभीय कार्य हैं । समानाश्रय कोई आभीय कार्य करना ही तो पहले में किया गया आभीय कार्य असिद्धवदत्राभात् (५६२) अधिकार के कारण उम की दृष्टि में असिद्ध हो जाता है । तदनुसार महा प्रकृत यकारलोप की कल्पना में यस्येति च (२३६) द्वारा पूर्व किया गया अकार का लोप असिद्ध हो जान में यकार और ईकार के मध्य में अकार के आ जाने से उम तथाविधिन सरलार्थ में यकार का

१ पदान्तविधि, द्विवचनविधि, 'वर' के पर रहते विधि, यकारलापविधि, स्वरविधि, मवर्णविधि, अनुस्वारविधि, दीर्घविधि, जग्विधि और ध्विर्विधि—इन विधियों में परनिमित्तक अजादेन स्थानिवत् नहीं होता ।

लोप नहीं हो सकता था अतः 'उपघाया' का अनुवर्तन किया गया है। अब अकार का लोप असिद्ध हो कर ही 'य' प्रत्यय के यकार को उपधात्व प्रदान कर देता है इस से उपघा के लोप में कोई बाधा उपस्थित नहीं होती।

विशेष वस्तव्य—प्रकृत यञश्च (१२५२) सूत्र में 'यञ्' में अपत्याधिकार में पठित यञ्प्रत्यय का ही ग्रहण अभीष्ट है अन्य यञ् का नहीं—ऐसा वार्तिककार का आशय महाभाष्य में व्यक्त किया गया है। इस में अपत्याधिकार में बहिर्भूत यञ् होने पर तदन्त प्रातिपदिक में स्त्रीत्व की विवक्षा में डीप् न होगा, अदन्तलक्षण टाप् ही किया जाएगा। यथा—द्वीपे भवा द्विप्या (द्वीप में होने वाली)। यथा सप्तम्यन्त द्वीप-शब्द से तत्र भव (१०६२) के अर्थ में द्वीपादनुसमुद्र यञ् (४३१०) में यञ् प्रत्यय कर सुञ्नुक्, आदिवृद्धि तथा भमञ्जक अकार का लोप करने पर 'द्विप्य' शब्द निष्पन्न होता है। अब इस से स्त्रीत्व की विवक्षा में प्रकृतसूत्र में डीप् न हो कर अदन्तलक्षण टाप् ही होता है। क्योंकि यथा यञ् प्रत्यय अपत्याधिकार में पडा नहीं गया। २मीप्रकार—देवस्य अपत्य देव्या (देव की लडकी) यथा षष्ठ्यन्त देवशब्द से अपत्य अर्थ में देवाद् यञ्जौ (वा० ६७) वार्तिक में यञ्प्रत्यय हा कर सुञ्नुक्, आदिवृद्धि तथा भमञ्जक अकार का लोप करने पर 'देव्य' शब्द निष्पन्न होता है। यथा यञ्प्रत्यय अपत्याधिकार होता हुआ भी अपत्याधिकार में पडा नहीं गया अपितु प्राग्दीप्त्यर्थे अधिकार में दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्य (६६६) सूत्र पर पडा गया है अतः स्त्रीत्व की विवक्षा में यथा पर भी डीप् न हो कर टाप् ही होता है। विस्तार के लिये सिद्धान्तकौमुदी की टीकाओं का अवलोकन करें।

अब यञ्प्रत्ययान्ता से स्त्रीत्व की विवक्षा में प्राच्य आचार्यों के मत का निर्देश करते हैं—

[लघु०] विधि-सूत्रम्—(१२५४) प्राचा एफ तद्धित ।४।१।१७।।

यञन्तात् (स्त्रिया) एफो वा स्यात्, स च तद्धित ॥

अर्थ—यञ्प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से स्त्रीत्व की विवक्षा में विकल्प य एफ प्रत्यय हो जोर वह तद्धितमञ्जक भी हो।

व्याख्या—प्राचाम् ।६।३। एफ इति तुप्प्रथमैकवचनान्त पदम् । तद्धित ।१।१। यञ् ।१।१। (यञश्च सूत्र से) । प्रातिपदिकात्, स्त्रियाम्, प्रत्यय, परश्च—य सब पूर्वत अधिकृत है। प्रत्यय होने के कारण 'यञ्' ये तदन्तविधि हो कर 'यञन्तात् प्रातिपदिकात्' उपलब्ध हो जाता है। अर्थ—(प्राचाम्) पूवदशवासी आचार्यों के मत

१ परन्तु अन्य लोका का कथन है कि 'उपघाया' की अनुवृत्ति न होने की दशा में ईकार में अव्यवहित पूर्व यकार तो कहीं मिल ही न सकेगा सर्वत्र अकार का व्यवधान अनिवार्यत रहेगा ही, अतः सूनारम्भसामर्थ्य में ही तत्र यकार का लोप हो जायेगा, इस के लिये 'उपघाया' का अनुवर्तन करना व्यर्थ ही है।

में (यञ् = यजन्तात्) यजन्त (प्रातिपदिकात्) प्रातिपदिक से परे (एक = एक) एक (प्रत्यय) प्रत्यय हो जाता है और वह (तद्धित) तद्धितमञ्जक भी होता है (स्त्रियाम्) स्त्रीत्व की विवक्षा में। यह प्राच्य आचार्यों का मत है, अन्य आचार्यों का मत पीछे निदिष्ट कर चुके हैं। हमें सब आचार्यों प्रमाण है अतः विवक्ष्य सिद्ध हो जाता है। एकप्रत्यय के आदि प्रकार की ष प्रत्ययस्य (८३६) से इत्सजा हो कर लोप हो जाता है, 'क' मात्र शेष रहता है। 'क' के आदि प्रकार को आयनेयीनीयिष्य क-ङ-स्त-ः-षां प्रत्ययादीनाम् (१०१३) से आयन् आदेश हो जाता है। एक को पित् करने का प्रयोजन पिबगौरादिभ्यश्च (१२५५) द्वारा डीप् प्रत्यय का विधान करना है। तद्धिता (६१६) के अधिकार से बहिर्भूत होने के कारण एक तद्धित न था अतः महा इमे तद्धित अतिदिष्ट किया गया है। इसमें एकप्रत्ययान्त शब्द वृत्तद्धितसमासाश्च (११७) में प्रातिपदिकसञ्ज्ञक हो जाता है। प्रातिपदिकत्वात् पुनः डीप् की उत्पत्ति होती है।

उदाहरण यथा—

गर्गस्य गोत्रापत्य स्त्री गार्ग्यायणी गार्गी वा (गर्ग की गोत्रमन्त्रि कन्या)। षष्ठ्यन्त गर्गशब्द में गोत्रापत्य अर्थ में गर्गादिभ्यो यञ् (१००८) से यञ् प्रत्यय, मुञ्जुर् आदिवृद्धि तथा भसञ्जक अकार का लोप कर पूर्ववत् 'गार्ग्य' यह यजन्त प्रातिपदिक निष्पन्न होता है। अब इस से स्त्रीत्व की विवक्षा में प्राच्य आचार्यों के मतानुसार प्रकृत प्राचा एक तद्धित (१२५४) सूत्र से एक प्रत्यय ष प्रत्ययस्य (८३६) में प्रत्यय के आदि प्रकार की इत्सजा उस का लोप तथा आयनेयीनीयिष्य ० (१०१३) में 'क' के आदि प्रकार षण का आयन् आदेश हो जाता है—गार्ग्य आयन् अ = गार्ग्य + आयन्। अब यच्चि नम् (१६५) में पूव की भसजा हो कर यस्पति च (२३६) द्वारा भसञ्जक अकार का लोप करन पर गार्ग्य् + आयन् = गार्ग्यायन्' इस स्थिति में अग्रिमसूत्र प्रवृत्त होता है—

[लघु०] विधि सूत्रम्—(१२५५) पिद्-गौरादिभ्यश्च ।४।१।११॥

पिद्भ्यो गौरादिभ्यश्च (स्त्रिया) डीप् स्यात् । गार्ग्यायणी । नत्तंकी । गौरी ॥

अर्थ—जिस का प्रकार इत् हा एन प्रातिपदिका में तथा गौर आदि गणपठित प्रातिपदिकों में परे स्त्रीत्व की विवक्षा में डीप् प्रत्यय हा।

व्याख्या—पिद्-गौरादिभ्य १५।३। च इत्यन्वयपदम् । डीप् ११।११। (अज्यो डीप् सूत्र में) । प्रातिपदिकात्, स्त्रियाम्, प्रत्यय, परश्च—ये सब अधिकृत हैं। प् इत् यस्य स पित्, बहुशीहिममाम् । गौरः (गौराद्यः) आदिर्योपान्ते गौराद्यः, तद्गुण-सविज्ञानबहुशीहिममाम् । पितश्च गौराद्यश्च पिद्गौराद्य तेभ्य = पिद्गौरादिभ्य दत्तरत्तरङ्गम् । 'प्रातिपदिकात्' का मन्व-ध 'पिद्गौरादिभ्य' के साथ है अतः वचन-विपरिणाम हो कर 'प्रातिपदिभ्यः' बन जाता है। अर्थ—(पिद्गौरादिभ्य) पिद् तथा गौरादिगणपठित (प्रातिपदिभ्यः) प्रातिपदिकों में (पर) परे (डीप्) डीप् (प्रत्यय)

प्रत्यय हो (स्त्रियाम्) स्त्रीत्व की विवक्षा म। डीप् और डीष् प्रत्ययों के विधान में यही अन्तर होता है कि डीष्प्रत्ययान्त शब्द आद्युदात्त तथा डीष्प्रत्ययान्त अन्तोदात्त होते हैं। डीष् का उकार लघुस्वरानुद्धिते (१३६) में तथा पकार ह्रस्वप्रत्यय (१) सूत्र में इत्यञ्जक हो कर सुप्त हो जाता है 'ई' मात्र अवशिष्ट रहता है।

उदाहरण यथा—

'गार्म्यायिन' यह एकप्रत्ययान्त होने में पितृ है। तद्धितान्त होने में प्रातिपदिक भी है अतः प्रकृत सिद्धगौरादिभ्यश्च (१२५५) सूत्र में स्त्रीत्व की विवक्षा में^३ इन में डीष् (ई) प्रत्यय हो भनञ्जक अकार का लोप, पत्व तथा विभक्तिरूप करने पर 'गार्म्यायिणी' प्रयोग सिद्ध हो जाता है। राक्ष्य आचार्यों में भिन्न अन्य आचार्यों के मत में पूर्ववत् 'गार्मी' ही बनेगा। इस प्रकार 'गार्म्यायिणी' और 'गार्मी' दो रूप सिद्ध हो जाते हैं।

पितृ का अन्य उदाहरण यथा—

नृतीं गात्रविज्ञेये (दिवा० परमं०) धातु म शिल्पिनि ध्वन् (३११४५) सूत्र-द्वारा शिल्पी कर्ता अर्थ में ध्वन् (वु) प्रत्यय हो कर पकार और नकार अनुबन्धों का लोप करने में—'नृत् + वु हुआ। अत्र मुबोरनाकौ (३८५) में वृ' को अक' आदेश

१ यहा पित्व यत्रपि प्रत्यय का धर्म है तथापि प्रत्यय के लिये वह निष्प्रयोजन है अतः इन समुदाय (प्रातिपदिक) में उच्चरित कर लेते हैं। इस प्रकार समुदाय प्रातिपदिक पित्व कहलाने लगता है। जैसा कि कहा है—अवपवे वृत् लिङ्ग समुदायस्य विशेषक भवति। [अपूप्रभृतीना धातूना पित्व तु सिद्धिर्नास्ति] (३३१०४) इत्यत्रुविद्यो चरितार्थमिति न तत्र प्रातिपदिक पित्व भवतीति। अतः 'त्रया' (लज्जा, शर्म) इत्यादौ पित्वनिमित्तको डीष् प्रत्ययों न भवति, अन्तु जदन्तलक्षणस्यावेव]।

२ जब एक प्रत्यय ने एक बार स्त्रीत्व का द्योतन करा दिया तो पुनः स्त्रीत्व की विवक्षा कहा रह गई जिसे लिंग के लिये दूसरा प्रत्यय डीष् किया जा रहा है? उक्तार्थानामप्रयोग इस न्याय के अनुसार यहा दूसरा स्त्रीप्रत्यय न होना चाहिये—यह शब्दा यहा व्युत्पन्न विद्यायिनी का प्रायः हुआ करती है। इस का मनाधान यह है कि एकप्रत्यय के पिच्छरणसामर्थ्य से ही यहा दुबारा स्त्रीप्रत्यय किया जा रहा है, अन्यथा एक का पिच्छरण व्यर्थ हो जायगा, उन का कोई उपनाम न होगा। यहा एक और डीष् दोनों प्रत्ययों का समुदाय एक ही स्त्रीत्व का द्योतन करा रहा है—ऐसा समझना चाहिये। जैसे 'द्वौ पुरुषौ' में दोनों का समुच्चय एक ही द्वित्व का द्योतन करता है वैसे यहा भी दो स्त्रीप्रत्ययों का समुच्चय एक ही स्त्रीत्व का द्योतक है।

अब ग्रन्थकार गौरादिगणगत अनड्डुह् शब्द पर एक विशेष बात का उल्लेख करते हैं—

[लघु०] (गणसूत्रम्)—आमनड्डुह स्त्रिया वा ॥

अनड्ड्वाही, अनड्डुही । आकृतिगणोऽयम् ॥

अर्थ—स्त्रीलिङ्ग में डीप परे रहते अनड्डुह् शब्द को विकल्प से आम् का आगम हो जाता है । आकृतिगणोऽयम्—गौरादि आकृतिगण है ।

व्याख्या—गौरादिगण में 'अनड्डुही' और 'अनड्ड्वाही' दोनों का उल्लेख है । अनड्डुह् (बैल) शब्द हकारान्त है अदन्त नहीं, अतः इस से स्त्रीत्व में न तो जातिलक्षण (१२६६) डीप् प्राप्त होता था और न ही किसी प्रकार में डीप् । गौरादिगण में पाठ के कारण इस में डीप् हो जाता है—अनड्डुह् + डीप् = अनड्डुह् + ई = अनड्डुही (गाय) । गण में 'अनड्ड्वाही' के भी पाठ के कारण डीप् परे रहते इसे आम् का आगम भी विकल्प से विधान किया गया प्रतीत होता है । इस में कौमुदीकार ने प्रवृत्त गणसूत्र को उचित कर लिया है । आम् के मकार की इत्सज्ञा हो जाती है 'आ' मात्र शेष रहता है । मिदचोऽन्त्यात्पर (२८०) के अनुसार आम् का आगम अनड्डुह् शब्द के अन्त्य अच् उकार से परे होता है । आम् के पक्ष में 'अनड्डु जा ह् + ई' इस दशा में इको यणचि (१५) सूत्र में उकार को यण्-वकार हा कर विभक्ति लाने से 'अनड्ड्वाही' प्रयोग सिद्ध हो जाता है । जिस पक्ष में आम् नहीं होगा वहा केवल डीप् ही रहता है—अनड्डुही ।

गौरादि आकृतिगण है । अर्थात् स्त्रीत्व की विवक्षा में जहा डीप् का विधायक कोई सूत्र न मिले उसे गौरादिया के अन्तर्गत समझ लेना चाहिये ।^१

१ गौरादिगण यथा—

गौर । मत्स्य । मनुष्य । शृङ्ग । हय । गवय । मुक्य । ऋष्य । पुट । तूप । दृण । द्रोण । हरिण । पटर । उक्वण (उणक इति पाठान्तरम्) । आमलक । कुवल । बदर । बिम्ब । कर्कर । तर्कार । शर्कार । पुष्कर । शिखण्ड (शष्कण्ड इति पाठान्तरम्) । सुनन्द । सुपम । सुपव । सलन्द (सलद इति पाठान्तरम्) । अलिन्द । गडुल । पाण्डश । आनन्द । अश्वत्थ । मृपाट । आढक । शष्कुल । सूम । सुब (सूच इति पाठान्तरम्) । सूर्य (शूप इति पाठान्तरम्) । शूप । पूप । मूप । (यूप इति पाठान्तरम्) । यूथ । घातक (धातक इति पाठान्तरम्) । सकलूक । सल्लक । मालव । मालत । साल्वक । उभय । भृङ्ग । वेतस । जतस । पृस (वृस इति पाठान्तरम्) । मह । मठ । छेद । श्वन् । तक्षन् । अनड्डुही । अनड्ड्वाही । एषण करणे (गणसूत्रम्) । देह । काकादन । गवादन । तेजन । रजन । लवण । पान (यान इति पाठान्तरम्) । मेघ । गौतम । आय स्थूण । भौरि (भौरिकि इति पाठान्तरम्) ।

अब वसोविशेष के वाचको में स्त्रीप्रत्ययों का विधान करने है—

[लघु०] द्विधि-सूत्रम्—(१२५६) वयमि प्रथमे ।४।१।२०॥

प्रथमवयोवाचिनोऽदन्तात् स्त्रिया डीप् स्यात् । वुमारो ॥

अर्थ—प्रथम वय (आयु) के वाचक अदन्त प्रातिपदिक में परे डीप् प्रत्यय हो जाता है स्त्रीत्व की विदधा में ।

व्याख्या—वयमि ।४।१। प्रथमे ।३।१। डीप् ।१।१। (श्रुतेभ्यो डीप् सूत्र में) ।

प्रत्यय, परस्व, प्रातिपदिकान्, स्त्रियान्, अन्—ये सब पीछे में अङ्कित हैं । अन्' यह 'प्रातिपदिकान्' का विशेषण है इनमें से उन न अदन्तविधि हो कर 'अदन्तान्' प्रातिपदिकान् बन जाता है । 'वयसि प्रथमे के आगे वर्तमानान्' का उच्चारण किया जाता है । अथ—(प्रथमे) प्रथम (वयमि) वय के अर्थ में (वर्तमानान्) वर्तमान (अन् = अदन्तान्) अदन्त (प्रातिपदिकान्) प्रातिपदिक में (प) परे (डीप्) डीप् (प्रत्यय) प्रत्यय हो जाता है (स्त्रियान्) स्त्रीत्व की विदधा में । प्राणिनां वानृश्वान् वस्त्वविशेषो वय—प्राणियों की कालकृत अस्त्वविशेष वचन आदि को वय (वयम्) कहते हैं । वुमार विश्वर आदि शब्द प्राणियों की कालकृत अस्त्व के प्रायस्त्व को कहते हैं अन् के प्रथमवयोवाचक है । स्त्रीत्व की विदधा में इन में अङ्कितसूत्रशास्त्र डीप् प्रत्यय हो कर—वुमार + डीप् = वुमारो—ई । अब अस्तेति च (२३६) में मन्त्रक अकार का लोप हो प्रथमा के एकवचन में मूं प्रत्यय या कर उन का ह्रस्वपाठ्यो दीर्घान् मुनिस्त्वसुप्त हल (१७६) में लोप करने पर 'वुमारो' 'विशेषो' आदि प्रयोग निवृत्त हो जाते हैं ।

वय नील होने है—वीना वचन। वावन (उवाची) और म्यादि (बुद्धापा) । जैनाकि स्त्री-अणविषय को न व मनु न कहा है—

विना रक्षति वाना भवति रक्षति दीवते ।

पुत्रश्च म्यादिरे भावे, न स्त्री म्वातन्मनहंति ॥ (मनु० ६३)

भौतिक । भौतिक । औदार्यहानि । आनिङ्गि । अनिङ्गि । अनाङ्गि । अनङ्गि । आरु । टोट । नट । नाट । मूनाट । जानन (मानन इति पाठान्तरम्) । पादन । पावन । आम्बरण । अङ्घ्रिकरण । अङ्घ्रिकार । अङ्घ्रिहा-
यणो । प्रत्यवरोहिणो । नवन । मूनङ्गसान् मनायान् (गणनूत्रम्) । अण्डर । मुन्दर । मण्डर । मण्डल । पट । निण्ट । बुद (ऊर्द इति पाठान्तरम्) । रूर्द । मूर्द । पाष्ट (पाष्ट इति पाठान्तरम्) । लापाष्ट (लाहाष्ट) । कदर । कन्दर । कन्दर । वृहत् । महत् । सौधर्मे । रोहिणी नक्षत्रे (गणनूत्रम्) । रेवती नक्षत्रे (गणनूत्रम्) । विक्कल । निष्कल । पुष्कल । बटाच्छोपिदवने (गणनूत्रम्) । निङ्गल । देह । वाक्प । सिप्यम्वादपरश्च (गणनूत्रम्)—निष्कली । हृष्टिकी । बोद्यात्तकी । यनी । करीरी । पृथिवी । श्रोष्टी । नातामही । पितामही । अङ्घ्रि-
गणोऽन् ॥

कुछ लोग वय के चार भेद करते हैं—वान्य कौमार, यौवन जोर वाद्यंक्ष । इन सब को देखते हुए वार्तिककार ने इस मूत्र को वयस्यचरमे (वयसि + अचरमे) बनाने की सलाह दी है । उन का तात्पर्य यह है कि चरम अर्थात् अल्पवयोवाची शब्दों को छोड़ कर अन्य सभी (प्रथम, द्वितीय) वयोवाचकों में स्त्रीत्व की विवक्षा में डीप् प्रत्यय करना चाहिये । इस जय के कारण यौवनवयोवाची वपूट और चिरष्ट प्रातिपदिकों से भी डीप् प्रत्यय हो कर वपूटी चिरष्टी (नौजवान औरत) प्रयोग सिद्ध हो जाते हैं । 'अचरमे' कथन के कारण वृद्धा 'म्यत्रिरा' आदि अल्पवयोवाचकों में डीप् नहीं होना अजाद्यनष्टाय (१२६६) में यदन्तलक्षण टाप् ही होना है^१ ।

यह डीप् अदन्त प्रातिपदिका में ही किया जा सकता है अन्यथा में नहीं । उन 'शिशु' से डीप् नहीं हाना—शिशुरयम्, शिशुरियम् । बालगन्द का पाठ जगादिगण म आया है जत उम से डीप् न हो कर टाप् प्रत्यय ही होना है—बाला (लडकी)^२ । इसीप्रकार बत्सा के विषय में नमजना चाहिये । बन्धा शब्द बन्धाया कनीन च (१०२१) इस ज्ञापक के कारण टाप् प्रत्ययद्वारा सिद्ध किया जाना है ।

परन्तु—यदि प्रथमवयोवाची से डीप् होना है तो 'वृद्धा चानौ कुमारी वृद्धकुमारी' यहा डीप् न हो सकेगा ? क्याकि यहा प्रथमवय की ती वान क्विञ्चिन् भी नहीं है कुमारी तो वृद्धा हो चुकी है ।

१ नूननजलधररचये गोपवधूटीडुकूलचौराय ।

तस्मै कृष्णाय नम ससारमहीरहस्य बीजाय ॥ (कारिकावती १)

चिरष्टी तु स्ववासिनी—इत्यमर । स्ववासिन्या चिरष्टी स्याद द्वितीयवयसि स्थियाम् इति रट् । ऊडा जनूडा वा पितृगृहस्थिना युवनिरिति शब्दकल्पद्रुम । चिरिष्टी इत्यपि क्वचिद् ।

२ वस्तुतः वय दो प्रकार का ही है एक—उपचयलक्षण अर्थात् वह वय जिम में शरीरगत धातुओं का उपचय (वधन) होना रहता है । यह वय यौवनान्त रहता है । दूसरा—अपचयलक्षण अर्थात् वह वय जिम में शरीरगत धातुओं का हान होना रहता है । आचार्य पाणिनि का यही मन्व्य प्रतीत होता है । आचार्य ने इसी मन्व्य को दृष्टि में रखते हुए वयसि प्रथमे (१२५६) मूत्र का निर्माण किया है । उन के मत के अनुसार यौवन तक प्रथम वय ही है । उन वधूटी, चिरष्टी आदि के लिये पृथक् वार्तिक बनाने की आवश्यकता ही नहीं रहती, प्रथमवयोवाचक होने से मूत्रद्वारा ही डीप् सिद्ध हो जाता है । वार्तिक की आवश्यकता तो वय को तीन या चार प्रकार का मानने वालों के मत में ही पटनी है ।

३ जाने तपसो धीर्यं सा बाला परवतीति मे विदितम् ।

न च निम्नादिव सतिव निवर्त्तने मे ततो हृदयम् ॥

(शाकुन्तल ३ ९)

उत्तर—यह प्रयोग साधर्म्य के कारण लाक्षणिक है। वृद्धा होती हुई भी वह पुरुषमयोगराहित्य के कारण या मौढ्य आदि गुणों के कारण कुमारी (प्रथमवयस्का) के सदृश है।

नोट—जिन के श्रवणमात्र से ही वय की प्रतीति होती है वे शब्द ही यहा वयोवाचक समझे जाने हैं। प्रकरणादि के बल से वय की प्रतीति कराने वाले शब्द वयोवाचक नहीं माने जाते। यथा—द्विवर्षा वन्या, त्रिवर्षा वन्या। यहा 'वन्या' पद के सामीप्य के कारण ही 'वय' की प्रतीति होती है, स्वतः नहीं। क्योंकि द्विवर्षा, त्रिवर्षा कोई शाला भी हो सकती है। इसी प्रकार—उत्तानशया बाला (मुह ऊपर कर सोने वाली बच्ची), सोहितपादिका बाला (स्वभावतः लाल पैरों वाली बच्ची) जादि में समझना चाहिये।

अब अदन्त द्विगु से स्त्रीत्व की विवक्षा में डीप् का विधान करते हैं—

[लघु०] विधि-सूत्रम्— (१२५७) द्विगो १४।१।२१॥

अदन्ताद् द्विगोर्डीप् स्यात्। त्रिलोकी। अजादित्वात्—त्रिफला, त्र्यनीका ॥

अर्थ—अदन्त द्विगुसमास में स्त्रीत्व की विवक्षा में डीप् प्रत्यय हो। अजादित्वात्—अजादिगण में पाठ के कारण टाप हो कर त्रिफला और त्र्यनीका शब्दों की सिद्धि होती है।

व्याख्या—द्विगो १५।१। डीप् ११।१। (ऋन्नेभ्यो डीप सूत्र से)। अतः प्रातिपदिकात्, स्त्रियाम्, प्रत्यय, परश्च - ये सब अधिष्ठत हैं। 'अत' यह 'द्विगो' का विशेषण है। विशेषण स तदन्तविधि हो कर 'अदन्ताद् द्विगो' बन जाता है। अर्थ—(अत = अदन्तात्) अदन्त (द्विगो) द्विगु (प्रातिपदिकात्) प्रातिपदिक से परे (डीप्) डीप् प्रत्यय हो जाना है (स्त्रियाम्) स्त्रीत्व की विवक्षा में। अकारान्तोत्तरपदो द्विगु स्त्रियामिष्ट (वा०) अर्थात् अब समाहार अर्थ में द्विगुसमास किया जाये तथा उस का उत्तरपद अकारान्त शब्द हो तो वह द्विगु स्त्रीलिङ्ग में प्रयुक्त करना अभीष्ट होता है। तो ऐसी अवस्था में प्रवृत्तमूत्रद्वारा द्विगुसमास से डीप् प्रत्यय किया जाता है।

उदाहरण यथा—

त्रयाणां लोकानां समाहार—त्रिलोकी (तीन लोकों का समाहार)। यहा 'त्रि आम् + लोक आम्' इस अलौकिकविग्रह में तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च (६३६) सूत्र से समाहार अर्थ में समास हो कर सदृश्यापूर्वो द्विगु (६४१) से उस की द्विगुसज्ञा हो जाती है। अब समास में सुंपो धातु-प्रातिपदिकयो (७२१) में सुंपो (दोनों आम् प्रत्ययों) का लुक् हो कर 'त्रिलोकी' प्रातिपदिक निष्पन्न हो जाता है। तब अकारान्तो-

१ इस वार्तिक का विवेचन समासप्रकरण में इस व्याख्या के चतुर्थभागस्य (६४३) सूत्र पर विस्तार से किया जा चुका है। वह यहा पुनः मन्नीय है।

उत्तरपदो द्विगु स्त्रियामिष्ट (वा०) इम इष्टि से स्त्रीत्व की विवक्षा में टाप् का बाध कर प्रकृत द्विगो (१२५७) सूत्रद्वारा डीप् प्रत्यय, अनुबन्ध-लोप तथा भ्रमञ्जक अकार का यस्येति च (२३६) में लोप कर विभक्ति लाने में 'त्रिलोकी' प्रयोग सिद्ध हो जाता है^१। इसीप्रकार—

- (१) त्रयाणा पादाना समाहार — त्रिपादी ।
- (२) अष्टानाम् अध्यायाना समाहार — अष्टाध्यायी ।
- (३) पञ्चाना वटाना समाहार — पञ्चवटी ।
- (४) चतुर्णां सूत्राणा समाहार — चतु सूत्री ।
- (५) दशाना रथाना समाहार — दशरथी ।
- (६) पञ्चाना पुलाना समाहार — पञ्चपूली (पाच बण्डलो का समूह) ।

त्रयाणा फलाना समाहार — त्रिफला (हरड, बहेडा और आवला इन तीन फलो का समाहार) । यद्यपि यहा पर भी ममाहार अर्थ में द्विगुममास हुआ है और इस का उत्तरपद अकारान्त भी है तथापि इस का अजादिगण में पाठ मान लेने के कारण प्रकृत द्विगो (१२५७) सूत्र में डीप् न हो कर अजाद्यतष्टाप् (१२४९) में टाप हो जाता है । इसीतरह—त्रयाणाम् अनीकाना समाहार — त्र्यनीका सेना (घोडे, हाथी और रथ इन तीन सैन्यदलो का ममाहार अर्थात् सेना) यहा पर भी टाप प्रत्यय समझना चाहिये^२ ।

शङ्का—त्रयाणा भुवनाना समाहार — त्रिभुवनम् (तीन भुवनो का ममाहार) । यहा समाहार अर्थ में द्विगुममास किया गया है । इस ममास में 'भुवन' यह अकारान्त शब्द उत्तरपद में है । तो भला यहा द्विगो (१२५७) इम प्रकृतसूत्रद्वारा डीप् क्यों नहीं होता ?

समाधान—अकारान्तोत्तरपदो द्विगु स्त्रियामिष्ट (वा०) इस दार्ष्टिक का एक अपवाद है—पात्राद्यन्तस्य न (वा०) अर्थात् पात्र आदि शब्द जिस के अन्त में हो ऐसे समाहारद्विगु का स्त्रीलिङ्ग में प्रयोग नहीं होता । पात्रादि को आकृतिगण माना जाता है । जहा जहा शिष्टप्रयोगों में ममाहारद्विगु से डीप् प्रत्यय का प्रयोग नहीं देखा जाता वहा के अकारान्त उत्तरपद को पात्रादियों में परिगणित मान लिया जाता है । 'भुवन' शब्द को भी उन पात्रादियों के अन्तर्गत समझना चाहिये, अतः स्त्रीत्व विवक्षित न होने से यहा डीप् नहीं होता । स नपुंसकम् (९४३) सूत्रद्वारा नपुंसक का ही प्रयोग होता है ।

१ यदि त्रिलोकी गणनापरा स्यात्तस्या समाप्तिर्यदि नायुय स्यात् ।

पारेपरायं गणित यदि स्याद् गण्येयि शेषगुणोऽपि स स्यात् ॥ (नैपथ० ३४०)

२ असाकि कहा है—

स्मृत्याऽजादिगणे युक्ता टाब्रुत्पत्तिद्विगोरपि ।

त्र्यनीकेति गणे कीर्त्यं स्यादाकृतिगणो हि स ॥

इसीप्रकार—

- (१) चतुर्णां युगाना ममाहार—चतुर्युगम् ।
- (२) त्रयाणाम् उपणाना समाहार—धूपणम् (मोठ, काली मिर्च और पीपर) ।
- (३) पञ्चाना पात्राणा समाहार—पञ्चपात्रम् ।
- (४) दशाना मूलाना समाहार—दशमूलम् ।
- (५) पञ्चाना लवणाना ममाहार—पञ्चलवणम् ।

द्विगो (१२५७) सूत्र में 'अन' की अनुवृत्ति आ रही है इसलिये अनदन्त द्विगु से डीप् नहीं होता । यथा—त्रयाणा वटूना समाहार—त्रिवटु (कुष्णमरिच, पीपर और मोंठ का समाहार), पञ्चाना घेनूना ममाहार—पञ्चघेनु, पञ्चाना कुमारीणा समाहार—पञ्चकुमारि ।

अब अग्निमसूत्र में डीप् का पुन विधान करते हैं—

[लघु०] विधि-सूत्रम्—(१२५८) वर्णदिनुदात्तात्तोपधात् तो न ।

१४।१।३६॥

वर्णवाची योजुदात्तान्तस्तोपध, तदन्ताद् अनुपमजनात् प्रातिपदिकात् (स्त्रीत्वे) वा डीप् तकारस्य नकारादेशश्च । एता, एनी । रोहिता, रोहिणी ॥

अर्थ—वर्णवाची (रङ्गवाची) जो अनुदात्तान्त तकारोपध शब्द, तदन्त अनुपसर्जन प्रातिपदिक से परे स्त्रीत्व की विवक्षा में डीप् प्रत्यय तथा नकार को नकार आदेश—ये दोनों कार्य विकल्प में हो ।

व्याख्या—वर्णान् १५।१। अनुदात्तात् १५।१। तोपधात् १५।१। त १६।१। न १।१। (नकारादकार उच्चारणार्थं) । डीप् १।१। (ऋन्नेभ्यो डीप् से) । वा इत्यव्ययपदम् (मनोरो वा सूत्र से) । अतः, अनुपसर्जनात्, प्रातिपदिकात्, स्त्रियाम्, प्रत्यय, परश्च—ये सब अधिष्टत हैं । समास—त = तकार उपधा यस्य स तोपध, बहुव्रीहिसमास । न उपसर्जनम् अनुपसर्जनम्, तस्माद् अनुपसर्जनात्, नञ्त्त्पुरुष । 'अनुदात्तात्' तथा 'तोपधात्' ये दोनों 'वर्णान्' के विशेषण हैं । प्रथमविशेषण में तदन्तविधि हो कर 'अनुदात्तान्तात् तोपधाद् वर्णान्' बन जाता है । वर्णशब्द में यहा वर्णवाची (लाल, पीले आदि रङ्गों के वाची) शब्दों का ही ग्रहण अभीष्ट है, 'वर्ण' इस शब्द का नहीं, अन्यथा 'तोपधान्' विशेषण व्यर्थ हो जायेगा । 'वर्णान्' यह 'अदन्तान् प्रातिपदिकात्' का विशेषण है अन इम में तदन्तविधि हो कर 'वर्णवाचिशब्दान्ताद् अदन्तात् प्रातिपदिकान्' हो जाता है । 'अनुपसर्जनात्' का सम्बन्ध 'प्रातिपदिकात्' में है । इस प्रकार सूत्र का यह अर्थ निष्पन्न होता है—(अनुदात्तात् = अनुदात्तान्तात्) अनुदात्त जिस के अन्त में है तथा (तोपधात्) तकार जिस की उपधा है ऐसा (वर्णान्) रङ्गवाची जो शब्द,

तदन्त' (अनुपसर्जनात्) अनुपसर्जन (अत = अदन्तात् प्रातिपदिकात्) अदन्त प्रातिपदिक से परे (स्त्रियाम्) स्त्रीत्व की विवक्षा में (ङीप् प्रत्यय) ङीप् प्रत्यय तथा (त = तकारस्थ) वर्णवाचिशब्द के तकार के स्थान पर (न) न् आदेश—ये दोनों कार्य (वा) विकल्प से हो जाते हैं। सन्नियोगशिष्टाना सह वा प्रवृत्ति सह वा निवृत्ति (प०) इस परिभाषा के अनुसार जहा ङीप् होगा वहा पर ही तकार को नकार आदेश होगा। जिस पक्ष में ङीप् न होगा वहा तकार को नकार आदेश भी न होगा।

१ तदन्त अर्थात् पूर्वोक्त वर्णवाचक शब्द जिस के अन्त में हो ऐमा अनुपसर्जन अदन्त प्रातिपदिक। लघुकौमुदीस्य यह सूत्रार्थ भट्टोजिदीक्षित की मिद्धान्तकौमुदी से लिया गया है। दीक्षितजी से पूर्व किमी वैयाकरण ने इस सूत्र का ऐमा अर्थ नहीं किया। स्वयं दीक्षितजी ने भी अपनी पूर्वकृति शब्दकौस्तुभ में ऐमा अर्थ नहीं किया। सब वैयाकरण 'अनुपसर्जनात्' को 'वर्णात्' के साथ सम्बद्ध करते चले आ रहे थे। परन्तु दीक्षितजी ने उसे 'वर्णात्' के साथ सम्बद्ध न कर तदन्त अर्थात् वर्णवाचिशब्दान्त के साथ सम्बद्ध कर दिया है। भट्टोजिदीक्षित ने ऐसा क्यों किया? आइये, इस पर थोड़ा प्रकाश डालते हैं—

पारस्करगृह्यसूत्र आदियों में चूडाकरणप्रकरण के अन्तगत शल्यक (साही) के परो में बनी हुई शललीनाम से प्रसिद्ध एक सूची का वर्णन आता है—त्रेण्या शलल्या विनीय केशान्—(पारस्कर० २१) अर्थात् तीन जगह श्वेतरङ्गवाली शललीनामक सूची में केशों को—। यहा शलली के विशेषण 'श्वेणी' शब्द का प्रयोग किया गया है। 'श्वेणी' का विग्रह करते हुए गृह्यवृत्तिकार इसे बहुव्रीहि (त्रीणि एतानि यस्या) मान कर प्रकृतसूत्र से ङीप् + नत्व का विधान करते हैं और णत्व को आर्य मानते हैं। परन्तु बहुव्रीहि में सब पद उपसर्जन होते हैं अत यहा का 'एत्' शब्द भी उपसर्जन हुआ। अब यदि 'अनुपसर्जनात्' का सम्बन्ध 'वर्णात्' (वर्णवाचिन) में करते हैं तो 'एत्' में ङीप् + नत्व नहीं हो सकना क्योंकि वह उपसर्जन है। अत वृत्तिकार की व्याख्या के अनुरोध में उस की व्याख्या को सत्यापित करने के लिये दीक्षितजी ने 'अनुपसर्जनात्' का सम्बन्ध वर्णवाची में न कर वर्णवाचिशब्दात् प्रातिपदिक से कर दिया है। इस में वृत्तिकार के मत में कोई दोष नहीं आता, क्योंकि वर्णवाची के उपसर्जन होने पर वर्णवाचिशब्दान्त समुदाय तो अनुपसर्जन है ही। अत श्वेत' शब्द में स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीप् + नत्व मिद्ध हो जाता है।

परन्तु भाष्यमंजु नागेशभट्ट का कहना है कि ऐसा मानना महाभाष्य के स्वारस्य में विरुद्ध है। गृह्यमाण 'वर्णात्' के साथ ही 'अनुपसर्जनात्' को सम्बद्ध करना चाहिये। उन का यह भी कहना है कि गृह्यसूत्र के उपर्युक्त 'श्वेणी' शब्द में बहुव्रीहिमास न मान कर 'त्रिप् एणी' इस प्रकार सुंपुंसासमास मानना उचित है। विशेषजिज्ञासु शेखरद्वय का अवलोकन करें।

वर्ण (रङ्ग) के वाचक शब्द हमेशा दो तरह का अर्थ दिया करते हैं। एक तो वे गुणवाचक हो कर सुफेद, लाल, नीले, पीले आदि रङ्गों को प्रकट करते हैं। दूसरे वे उस उस रङ्ग वाले पदार्थ के भी वाचक होते हैं। यथा—‘श्वेत’ शब्द जहा श्वेतगुण का वाचक है वहा श्वेतगुणयुक्त पदार्थ का भी वाचक है। गुणवाची होने पर इस का प्रयोग पुलिङ्ग में तथा गुण वाले पदार्थ का वाचक होने पर इस का प्रयोग विशेष्यानुसार तीनों लिङ्गों में होता है। अत एव अमरकोप में कहा है—गुणे शुक्लादयस्त्वि, गुणिलिङ्गास्तु तद्वति । व्याकरणप्रक्रिया के अनुसार गुणवाचक श्वेत आदि शब्दों से तदस्यास्त्यस्मिन्निति मत्तुप् (११८५) सूत्रद्वारा विहित मत्तुप् प्रत्यय का गुणवचनेभ्यो मत्तुपो लुगिष्ट (वा० ६०) इस वार्तिक से लुक् हो जाता है। इस प्रकार गुणवाचक शब्द तत्तद्गुण वाले पदार्थों के भी वाचक हो जाते हैं। तब वे विशेष्यानुसार लिङ्ग को धारण करते हैं। यथा—श्वेत पट, श्वेता शाटिका, श्वेत वस्त्रम् आदि।

सूत्र के उदाहरण यथा—

‘एत’ (चितकबरा, रङ्गबिरङ्गा, नाना रङ्गों वाला) शब्द वर्णवाची है। इस का अन्त्य अकार वर्णाना त-ण-ति-नि-तान्तानाम् (फिट्सूत्र ३३)^१ के अनुसार अनुदात्त है। इस की उपधा में तकार विद्यमान है। व्यपदेशिवद्भाव से इसे तदन्त भी माना जा सकता है। इस की किसी सूत्र के द्वारा उपसर्जनसञ्ज्ञा भी नहीं की गई है। अत इस अदन्त ‘एत’ प्रातिपदिक से स्त्रीत्व की विवक्षा में प्रकृतसूत्र वर्णादनुदात्तात्तोपधात्तो न (१२५८) द्वारा ङीप् प्रत्यय हो जाता है। ङीप्पक्ष में तकार को तकार आदेश एव भसञ्जक अकार का लोप कर विभक्ति ताने से ‘एनी’ प्रयोग सिद्ध हो जाता है। जिम

१ चित्र किर्मीर-कल्माष-शबलैताश्च कर्बुरे—इत्यमर । एतशब्द श्वेतपर्याय इति कल्पसूत्रव्याख्यातारो घूतस्वामि-भवस्वामि-हरदत्तप्रभृतयो याज्ञिका इति बाल-मनोरमा ।

२ अर्थ—जिस वर्णवाची शब्द के अन्त में त, ण, ति, नि अथवा त् हो उस शब्द का आदि अच् उदात्त हो जाता है। जब किसी पद में एक स्वर उदात्त हो जाता है तब अनुदात्त पदमेकवर्जम् (६११५२) सूत्र से उस पद के शेष सब स्वर अनुदात्त हो जाते हैं।

‘त’ अन्त वाला वर्णवाची यथा—एत, रोहित ।

‘ण’ अन्त वाला वर्णवाची यथा—शोण ।

‘ति’ अन्त वाला वर्णवाची यथा—शिति ।

‘नि’ अन्त वाला वर्णवाची यथा—पृश्नि ।

‘त्’ अन्त वाला वर्णवाची यथा—पूपत् ।

इन सब का आदि स्वर उदात्त विधान किया गया है अत शेष सब स्वर अनुदात्त हैं।

इस प्रकार ये शब्द अनुदात्तान्त समझने चाहिये ।

पक्ष में डीप् + नत्व नहीं होता वहा अजाद्यतष्टाप् (१२४६) से टाप्, अनुबन्धलोप, मवर्णदीर्घ तथा विभक्तिकार्य करने से 'एता' प्रयोग सिद्ध हो जाता है।

इसीप्रकार 'रोहित' (लाल रङ्ग वाला) प्रातिपदिक से 'रोहिणी' और 'रोहिता', 'श्वेत' (सुफेद रङ्गवाला) प्रातिपदिक से 'श्वेती' और 'श्वेता', 'हरित' प्रातिपदिक से 'हरिणी' और 'हरिता' दो दो रूपों की सिद्धि होती है।

वर्णवाची शब्द के अन्त में यदि अनुदात्त न होगा तो प्रकृतसूत्र की प्रवृत्ति न होगी। यथा 'श्वेत' शब्द का अन्त्य अकार घृतादीना च (फिट्सूत्र २१)^१ इस फिट्सूत्र में उदात्त है अतः डीप् + नत्व नहीं होता। अदन्तलक्षण टाप् हो कर 'श्वेता' प्रयोग सिद्ध हो जाता है।

वर्णवाचिशब्दान्त प्रातिपदिक अदन्त होना चाहिये तभी प्रकृतसूत्र से डीप् + नत्व की प्रवृत्ति होती है। 'शिति' शब्द घवल-रङ्ग का वाचक है, वर्णाना तणतिनिता-न्तानाम् (फिट्सूत्र ३३) के अनुसार अनुदात्तान्त है और तोषघ भी। पर अदन्त न हो कर इदन्त है अतः प्रकृतसूत्र से डीप् + नत्व नहीं होता। अदन्त न होने से अदन्तलक्षण टाप् भी नहीं होता। स्त्रीत्व में भी वैसे का बँसा रहता है। यथा—शितिर्ब्राह्मणी।

अमरकोष में—अवदात्त सितो गौर इस प्रकार अवदात्तशब्द श्वेतार्थक कहा गया है। परन्तु पुयोगादाख्यायाम् (४१४८) सूत्रम्य महाभाष्य के अनुसार वह स्वच्छ या विशुद्ध अर्थ का ही वाचक है^२। साधर्म्य के कारण उमें सित या गौर कह दिया जाता है। अतः लघावन्ते द्वयोश्च बह्व्यो गुरु (फिट्सूत्र ४२)^३ इस फिट्सूत्र से अनुदात्तान्त होते हुए भी वणवाची न होने से इस में प्रकृतसूत्र की प्रवृत्ति नहीं होती। अदन्तलक्षण टाप् ही होता है—अवदात्ता कीर्ति।

नोट—असित (काला) और पलित (श्वेत) शब्दों से स्त्रीत्व की विवक्षा में प्रकृतसूत्रद्वारा डीप् + नत्व नहीं होता—असितपलितयोर्न (वा०)^४। अतः अदन्तलक्षण टाप् हो जाता है—अमिता, पलिता।

जिन की उपधा में तकार नहीं होना ऐसे वर्णवाची अनुदात्तान्त शब्दों से स्त्रीत्व

१ अर्थ—घृत आदि शब्दों का अन्त्य स्वर उदात्त होता है।

२ अवदात्ताया डीप् प्राप्नोति—अवदात्ता ब्राह्मणी, वर्णादिनुदात्तात्तोपधात्तो न (४१३६) इति। नैप वर्णवाची। किन्तहि विशुद्धवाची। आतश्च विशुद्धवाची—त्रीणि यस्यावदात्तानि विद्या योनिश्च कर्म च।

एतच्छिबे। विजानीहि ब्राह्मणाप्रचस्य लक्षणम् ॥ (महाभाष्य ४१४८)

३ अर्थ—जिसके अन्त में एक लघु या दो लघु हों, ऐसे बहून् अक्षरों वाले प्रातिपदिक का गुरु उदात्त हो जाता है।

४ अर्थ—स्त्रीत्व की विवक्षा में अमित और पलित शब्दों में वर्णादिनुदात्तात्तोपधात्तो न (१२५८) सूत्र द्वारा डीप् + नत्व की प्रवृत्ति नहीं होती।

की विवक्षा मे अल्पतो ङीप् (४१४०) सूत्रद्वारा ङीप् प्रत्यय का विधान किया जाता है। ङीप् जोर ङीप् करने में पद के स्वर में ही अन्तर पड़ जाता है—यह हम पीछे बना चुके हैं। कन्मापी, शबली, मारङ्गी। कृष्ण और कपिल शब्द अनुदानान्न नहीं अपितु उदात्तान्न हैं अतः इन से टाप् ही होता है—कृष्णा कपिला वा गौ।

अब उदन्त गुणवाचको में स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीप् का विधान करते हैं—

[लघु०] विधि-सूत्रम्— (१२५६) वोतो गुणवचनात् ।४।१।४४।।

उदन्ताद् गुणवाचिनो वा ङीप्^३ न्यात् । मृद्धी, मृदु ॥

अर्थ—ह्रस्व उकारान्न गुणवाची प्रातिपदिक में स्त्रीत्व की विवक्षा में विकल्प में ङीप् प्रत्यय हो।

व्याख्या—वा इत्यव्ययपदम् । उत ।५।१। गुणवचनात् ।५।१।। ङीप् ।१।१। (अल्पतो ङीष् सूत्र मे) । प्रातिपदिकात्, स्त्रियाम्, प्रत्यय, परस्च—ये सब अधिहित हैं। यहा सूत्रगत 'गुण' शब्द में अदेङ् गुण (२५) वाला पारिभाषिक गुण नहीं लेना चाहिये वरन् उत का 'उत' विशेषण सगत न हो नकेगा। गुणम् उक्तवान् इति गुणवचन, कर्त्तरि भूते ल्युट् । जो शब्द गुण को कह कर उत गुणयुक्त द्रव्य को कहता है उसे गुणवचन कहते हैं। तात्पर्य यह है कि गुणविशिष्ट द्रव्य के वाचक को गुणवचन कहते हैं। मृदु (बोमल), लघु (छोटा), गुरु (भारी), पटु (चतुर), साधु (ठीक, युक्त, भला), तनु (पतला) आदि शब्द गुणवचन हैं। उत' यह 'गुणवचनात् प्रातिपदिकात्' का विशेषण है, विशेषण में उदन्तविधि हो कर 'उदन्ताद् गुणवचनात् प्रातिपदिकात्'

१ अर्थ—उकारोपध में भिन्न अन्य वणवाची अनुदात्तान्न प्रातिपदिकों से ङीप् प्रत्यय हो जाता है स्त्रीत्व की विवक्षा में।

२ अत्र क्वचिद् ङीप् इति पाठान्तरमुपलभ्यते । नत्तु अत्रत्य वाचिक भाष्यन्वाधित्योक्त प्रतीयते । तथा चाऽत्र भाष्यम्—

गुणवचनाद् ङीप् आद्युदात्तार्थं (वा०) । गुणवचनाद् ङीप् वक्तव्य । किं प्रयोजनम् ? आद्युदात्तार्थं । आद्युदात्ता प्रयोजयन्ति । वस्वी । पट्वी ॥

(महाभाष्य ४१४४)

वत्पुटशब्दो नित्स्वरेण आद्युदात्तो गुणवचनो । ताभ्या ङीपि ईकारोऽनुदात्तपित्त्वान् । आभ्या यदि ङीप् स्यात्तदा प्रत्ययस्वरेण ङीप ईकार उदात्त इत्यपिष्टप्रसङ्गेन । अन्नोदात्ताद् मृद्धादिप्रातिपदिकाद् ङीष्ङीपोर्नास्ति विशेषः । उदात्तमणो ह्रस्ववर्त्तु (६११६८) इति ङीप उदात्तत्वविधानात् । तस्मादत्र ङीपो विधानमेव न्याय्यम् । तथा चोक्त शब्दकौमुत्तुभे दीक्षितैः—

इदं सूत्रमपनीय मनोरी वा (४१३८) इत्यस्मादनन्तर 'गुणवचनाद्दुत्' इति पाठस्यम् । उत्तरसूत्र तु स्वन्त्याने एव वाशब्दनहिनम्पाठस्यम्—बह्नादिभ्यो वा इति । तेनाद्युदानेषु गुणवचनेषु ङीपि स्वरे निष्पति (शब्दकौमुत्तुभ ४१४४) ।

वन जाता है। अर्थ—(उन = उदन्तात्) उदन्त (गुणवचनात्) गुणवाची (प्रातिपदिकात्) प्रातिपदिक से परे (वा) विकल्प से (डीप्) डीप् प्रत्यय हो जाता है (स्त्रियाम्) स्त्रीत्व की विवक्षा म। उदाहरण यथा—

'मृदु' यह उदन्त प्रातिपदिक है जो मृदुत्वविशिष्ट द्रव्य का वाचक होने से गुणवचन है। इस में स्त्रीत्व की विवक्षा में प्रकृत बोलो गुणवचनात् (१२५६) सूत्रद्वारा डीप् प्रत्यय, डीप् के अनुबन्धों का लोप तथा इको यणचि (१५) में उकार को यण् = वकार कर विभक्ति लाने में मृद्वी' प्रयाग सिद्ध हुआ जाता है'। डीप् के अभाव में 'मृदु' ही रहगा। मृद्वीय लता, मृदुरिय लता—दानों तरह से प्रयोग हो सकता है।

इनीतरह—'तनु' में तन्वी और तनु, 'पटु' से पट्वी और पटु, 'गुरु' से गुर्वी और गुरु, 'लघु' में लघ्वी और लघु, 'पृथु' में पृथ्वी और पृथु, 'साधु' से साध्वी और साधु इत्यादिप्रकारेण प्रयोग जानने चाहिये।

सहस्रयोगोपमान (वा०)—खरु (मूख, कठार, क्रूर, श्वेन आदि) तथा सयोगोपध गुणवचनो में स्त्रीत्व की विवक्षा में बोलो गुणवचनात् (१२५६) सूत्र की प्रवृत्ति नहीं होती—खरुर्वाहाणी। सयोगोपध से—पाण्डुरिय लता।

उदन्त प्रातिपदिक यदि गुणवाची न होगा तो उस से स्त्रीत्व की विवक्षा में प्रकृतसूत्रद्वारा डीप् न होगा। यथा—आखुरियम् (यह चुहिया है)। 'आखु' शब्द गुणवाचक नहीं अपितु द्रव्यवाचक है अतः उस से स्त्रीत्व में भी डीप् नहीं हुआ।

विशेष बह्वच्य—इस सूत्र में 'गुण' से क्या अभिप्रेत है? इस के लिये महाभाष्य (४ १ ४४) में एक प्राचीन श्लोक उद्धृत किया गया है—

सत्त्वे निविशतेऽर्पति पृथग्जातिषु दृश्यते ।
आधेयश्चाऽक्रियाजश्च सोऽसत्त्वप्रकृतिर्गुण ॥^२

इस श्लोक की खण्डश व्याख्या प्रस्तुत करते हैं—

सत्त्वे निविशते—जो पदार्थ केवल सत्त्व (द्रव्य) में ही निवेश करता या ठहरता है उसे गुण कहते हैं। इतने कथन से सत्ता जगति की व्यावृत्ति हो जाती है, सत्ता को गुण नहीं कहा जा सकता। कारण कि सत्ता केवल द्रव्य में ही नहीं रहती अपितु द्रव्य, गुण, ब्रह्म तीनों में रहती है। अच्छा तो द्रव्यत्वजाति केवल द्रव्य में ही रहती है, इस नक्षत्र से वह भी गुण होने लगेगी। इस पर कहत हैं—अर्पति ! अर्थात् गुण पदार्थ द्रव्य में दूर भी हो जाता है। यथा पक्कन पर आन्न में नीलिमा हट कर पीतिमा आ जाती है। पर द्रव्यत्वजाति तो द्रव्य में तीनों कालों में कभी नहीं हटती, इसलिये द्रव्यत्व-

१ शिरोपमृद्वी गिरियु प्रपेदे यदा यदा दुःखरातानि सीता ।

तदा तदास्या सदनेषु सौख्यलक्षणानि दृश्यी गलदधु राम ॥ (साहित्यदर्पणे)

२ जो द्रव्य में रहता है, द्रव्य में हट भी जाता है, नानाविध जातियों में रहता हुआ उत्पन्न भी है और अनुत्पन्न भी, ऐसे द्रव्यभिन्न पदार्थ को गुण कहते हैं।

जाति को गुण नहीं कहा जा सकता । सत्त्वे निविशतेऽपैति—इस लक्षण पर पुनः एक शब्दा उत्पन्न होती है कि गोत्वजाति जो गोव्यक्तियों में तो नित्य विद्यमान रहती है पर अश्व आदियों से व्यावृत्त रहती है तो इस लक्षण के अनुसार वह भी गुण होने लगेगी । इस दोष की निवृत्ति के लिये लक्षण में जोड़ते हैं—पुष्यजातिषु दृश्यते । अर्थात् गुण पदार्थं द्रव्य की नाना जातियों में दिखाई देता है । जैसे मेघ में दीपने वाली नीलिमा तृणादियों में भी देखी जाती है । गोत्वजाति तो द्रव्य की अन्य अश्वत्व आदि जातियों में नहीं रहती । इस प्रकार श्लोक के पूर्वार्धोक्त सत्त्वे निविशतेऽपैति पुष्यजातिषु दृश्यते इस गुणलक्षण से किसी प्रकार की जाति गुण के अन्तर्गत नहीं आती ।

अच्छा ! तो इस लक्षण के अनुसार कर्म भी गुण होने लगेगा । कर्म भी द्रव्यो में स्थित रहता है, उन से हट भी जाता है तथा नानाजातियों में भी देखा जाता है । इस के परिहार के लिये कहते हैं—आधेयश्चाऽक्रियाजश्च । अर्थात् गुण-पदार्थं आधेय^१ (उत्पाद्य) भी होता है और अक्रियाज^२ (अनुत्पाद्य) भी । जैसे घटादिगत रक्तिमादि गुण पाकक्रियाजन्य होने से उत्पाद्य है और आकाश में रहने वाला महत्त्व गुण नित्य होने से अनुत्पाद्य है । परन्तु कर्म तो हमेशा उत्पाद्य ही होता है अतः वह गुण न होगा ।

अच्छा ! सत्त्वे निविशतेऽपैति पुष्यजातिषु दृश्यते । आधेयश्चाऽक्रियाजश्च इतना कहने पर द्रव्यपदार्थ में अतिव्याप्ति होगी वह भी गुण कहलाने लगेगा । द्रव्य घटादि अवयवों अपने कपाल आदि द्रव्यरूप अवयवों में अवस्थित होता है और असम-वायिकारण संयोग के नाश होते ही उन अवयवों से हट जाता है । घट पट आदि अनेक जातियों में रहता है और यह उत्पाद्य और अनुत्पाद्य दोनों प्रकार का हुआ करता है, घटपटादि अनित्यद्रव्य उत्पाद्य तथा आकाशादि नित्यद्रव्य अनुत्पाद्य हैं । इस के परिहार के लिये कहते हैं—सोऽसत्त्वप्रकृतिर्गुण । गुण असत्त्वप्रकृति अर्थात् द्रव्यरूप नहीं होता । इस प्रकार जातिभिन्न क्रियाभिन्न तथा द्रव्यभिन्न गुण होते हैं यह निर्दोष लक्षण प्राप्त होता है । परन्तु इस लक्षण को अनेक बंधाकरण सर्वथा ठीक नहीं मानते । उन का कथन है कि भाष्य में यह एकदेशी की उक्ति है, भाष्यकार का स्वमन्तव्य नहीं । अतः एव भाष्य में इस कारिका की व्याख्या नहीं की गई । उन का कथन है कि आकडारावेका सञ्ज्ञा (१४१) के भाष्य में जो गुण का लक्षण किया गया है वही युक्त है । वहाँ कहा गया है कि समास, कृदन्त, तद्धितान्त, अव्यय, सर्वनाम, जाति, मर्यादा तथा सज्ञाशब्दों को छोड़ कर अन्य अर्थवान् शब्द गुणवाचक होते हैं । शेखरकार नागेशभट्ट इसी लक्षण को ही निर्दुष्ट मानते हैं ।

अब अग्रिमसूत्रद्वारा पुनः डीप् का वैकल्पिक विधान करते हैं—

१ आघातु योग्य आधेय, उत्पाद्य इत्यर्थः ।

२ क्रियाया जायत इति क्रियाज, न क्रियाज —अक्रियाज । अनुत्पाद्य इत्यर्थः ।

[लघु०] विधि-सूत्रम्— (१२६०) बह्वादिभ्यश्च ।४।१।४५॥

एभ्यो वा डीप् स्यात् । बह्वी । बहु ॥

अर्थ — बहू आदि गण में पठित प्रातिपदिकों से स्त्रीत्व की विवक्षा में विकल्प से डीप् प्रत्यय हो ।

व्याख्या—बह्वादिभ्य ॥४३॥ च इत्यव्ययपदम् । वा इत्यव्ययपदम् (बोतो गुणवचनात् सूत्र से) । डीप् ।१।१। (अन्यतो डीप् सूत्र में) । प्रातिपदिकात्, स्त्रियाम्, प्रत्यय, परश्च—ये सब पीढ़े से अधिकृत हैं । 'प्रातिपदिकात्' का बहुवचनान्त में विपरिणाम हो कर 'प्रातिपदिकेभ्य' बन जाता है । ममास—बहु (बहुशब्द) आदियँपान्ते बह्वादय तेभ्य = बह्वादिभ्य तदगुणमविज्ञानबहुव्रीहिममास । जयं—(बह्वादिभ्य) बहु आदि (प्रातिपदिकेभ्य) प्रातिपदिकों में परे (वा) विकल्प में (डीप्) डीप् (प्रत्यय) प्रत्यय हो जाता है (स्त्रियाम्) स्त्रीत्व की विवक्षा में । उदाहरण यथा—

बहु (बहुत विपुल) प्रातिपदिक में स्त्रीत्व की विवक्षा में बह्वादिभ्यश्च (१२६०) इस प्रकृतसूत्र से डीप् प्रत्यय, उकार और पकार अनुबन्धों का लोप एवम् इको यणचि (१५) में उकार को वकार आदेश कर विभक्ति लाने से 'बह्वी' प्रयोग मिट्ट हो जाता है । डीप् के अभाव में विभक्ति ला कर 'बहु' ही रहेगा । बह्वी सम्पत्, बहु सम्पत् । एकस्य बह्व्यो जाया भवन्ति, नैकस्य बहुव सप्तय—(ऐत० ब्रा० ३२३) । अजामेका लोहितशुक्लकृष्णा बह्वी प्रजा सृजमाना सख्या—(तै० आ० १० १० १) ।

कुछ लोगों का विचार है कि बहुशब्द गुणवचन है अतः इस से बोतो गुणवचनात् (१२५६) इस पूर्वसूत्रद्वारा ही वैकल्पिक डीप् मिट्ट था, यहाँ उस का ग्रहण अगले सूत्र में अनुवृत्ति के लिये ही किया गया है । परन्तु अन्य वैयाकरणों का कहना है कि बहुशब्द बहुगणबतुडति सत्या (१८६) द्वारा सख्यासज्ञक है, सख्याशब्दों को पीछे महाभाष्य-प्रमाणानुसार गुणवचन माना नहीं गया, इसलिये यहाँ उस से विधान करना पडा है ।

अब बह्वादिगण के अन्तगन दो गणसूत्रों का उल्लेख करते हैं—

[लघु०] (गणसूत्रम्)—कृदिकाराद्वितन ॥

रात्री । रात्रि ॥

अर्थ—कृत्प्रत्ययसम्बन्धी इकार, जो किन्त् का अवयव न हो, तदन्त प्रातिपदिक से स्त्रीत्व की विवक्षा में विकल्प से डीप् प्रत्यय हो जाता है ।

व्याख्या—कृदिकारात् ।५।१। अक्विन' ।५।१। प्रातिपदिकात्, स्त्रियाम्, प्रत्यय, परश्च—ये सब पूर्वत अधिकृत हैं । यह बह्वादिभ्यश्च (१२६०) सूत्रस्य बह्वादिगण का एक गणसूत्र है अतः वैकल्पिक डीप् का विधान करता है । कृत् इकार कृदिकारः, तस्मात् = कृदिकारात्, पठ्ठीनत्पुरुष । न किन्त् अक्विन्त्, तस्माद् = अक्विन', नञ्त्पुरुष । ये दोनों ममस्त पद 'प्रातिपदिकात्' के विशेषण हैं । अर्थ—(कृदिकारात्) कृत् प्रत्यय का

जो इकार तदन्त (अकित्तन) क्तिन्भिनप्रत्ययान्त (प्रातिपदिकात्) प्रातिपदिक में (स्त्रियाम्) स्त्रीत्व की विवक्षा में (वा) विकल्प में (डोप्) डोप् प्रत्यय हो जाता है।

उदाहरण यथा—

रात्रि (रात) शब्द रा दाने (अदा० परस्मै०) धातु में रासदिभ्या त्रिप् (उपादि० ४ ६७) इस औणादिकसूत्रद्वारा त्रिप् प्रत्यय करने में मिड होता है। इन के अन्त में वृत्सज्ञक त्रिप् प्रत्यय का इकार मौजूद है, किञ्च इम के अन्त में क्तिन् प्रत्यय भी नहीं है अतः स्त्रीत्व की विवक्षा में बह्वादिभ्यश्च (१२६०) इस गणस्य के वृदि-कारादकित्तन इस गणसूत्र से वैकल्पिक डोप प्रत्यय हो जाता है। डोप्प्रक्ष में यस्वेति च (२३६) सूत्रद्वारा भसज्ञक इकार का लोप कर विभक्तिकार्य करत में 'रात्री' प्रयाग सिद्ध हो जाता है। डोप् के अभाव में 'रात्रि' रहेगा। इसी प्रकार—

रात्री, राजि. (पठक्ति)। वापी, वापि (वावहो)। ओपधी, ओपधि (वन-स्पति)। दर्वी, दर्वि (कडुछी)। घरणी, घरणि (पृथ्वी)। भूमो, भूमि। श्रेणी, श्रेणि (पङ्क्ति)। श्रोणी, श्रोणि (कमर)। रजनी, रजनि (रात)। घमनी, घमनि (नाडी)। अबनी, अबनि (पृथ्वी)। खनी, खनि (खान)। तमी, तमि (अधेनी रात)। इत्यादिप्रयोग जानने चाहिये।

'अकित्तन' कथन के कारण—वृत्ति, स्तुति मति, नीति, रीति इत्यादिया म इस डोप् की प्रवृत्ति नहीं होती।

अब दूसरे गणसूत्र को निर्दिष्ट करते ह—

[लघु०] (गणसूत्रम्)—सर्वतोऽकित्तन्नर्यादित्येके ॥

शकटी। शकटि ॥

अर्थ—कई आचार्यों का मत है कि कित्तन्नर्यकप्रत्ययान्तों में भिन्न किमों भी इदन्त प्रातिपदिक में स्त्रीत्व की विवक्षा में विकल्प से डोप् प्रत्यय हो जाता है।

व्याख्या—मवंत इत्यव्ययपदम् (पञ्चम्यर्थे सार्वविभक्तिक्त्वमि)। अकित्त-न्नर्याति ॥१॥ 'इति' इत्यव्ययपदम्। एके ॥१॥ यह गणसूत्र पूर्वोक्त गणसूत्र को लक्ष्य म रख कर बनाया गया है। ममास—क्तिनोऽर्थो यस्य स = कित्तन्नर्यं, व्यधिकरणबहु-धोति। न कित्तन्नर्यं = अकित्तन्नर्यं, तस्मात् = अकित्तन्नर्यात्, नञ्त्त्वरूप। यह 'प्राति-पदिकात्' का विशेषण है अतः तदन्तविधि हो कर 'कित्तन्नर्यकभिनप्रत्ययान्ताद् इदन्त-प्रातिपदिकात्' ऐसा उपलब्ध हो जाता है। अर्थ—(अकित्तन्नर्यात्) कित्तन्नर्यकप्रत्ययान्ता में भिन्न (मवंत) सब तरह के (इत् = इदन्तात्) इदन्त (प्रातिपदिकात्) प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीत्व की विवक्षा में (वा) विकल्प से (डोप्) डोप् प्रत्यय हो जाता है (इति) ऐसा (एके) कई आचार्य कहते हैं।

यह गणसूत्र पूर्वगणसूत्र से दो बातों में अधिक व्यापक है—

१ मवंत = मव तरह का। अर्थात् इकार चाहे वृत् का हो या अकृत् का।

[१] पूवगणसूत्र में केवल कृत्सम्बन्धी इकारात् प्रातिपदिकों से ही डीप् का वैकल्पिक विधान किया गया था। परन्तु इस में कृत् या अकृत् किसी में भी सम्बद्ध इकारान्त प्रातिपदिक से डीप् का वैकल्पिक विधान किया जा रहा है। यथा 'शकटि' (छोटा छत्रडा) शब्द अव्युत्पन्न प्रातिपदिक है। इस के अन्त में न तो क्तिन् प्रत्यय है और न ही क्तिन्नर्थक कोई अन्य प्रत्यय, अतः स्त्रीत्व की विवक्षा में सर्वतोऽक्तिन्नर्थ्यादित्येके इस प्रकृतगणसूत्र से डीप् प्रत्यय विकल्प से हो जाता है। डीप्पक्ष में भसञ्जक इकार का यस्येति च (२३६) से लोप कर विभक्ति लाने से 'शकटी' एव डीप् के अभाव में 'शकटि' ये दो प्रयोग सिद्ध हो जाते हैं।

[२] पूर्वगणसूत्र में केवल क्तिन्प्रत्ययान्ता में ही डीप् का निषेध किया गया था परन्तु इस में क्तिन्नर्थक किसी भी प्रत्यय के करने पर इदन्त में डीप् का निषेध कहा गया है। पूर्वोक्त कृति, स्तुति, मति जादि तो इस के प्रत्युदाहरण हैं ही, किन्तु अजननि, अकरणि इत्यादि क्तिन्नर्थक-अनिप्रत्ययान्तो (३३११२) में भी डीप् का निषेध सिद्ध हो जाता है।

बह्वादिगण के कुछ अन्य उदाहरण यथा—

- (१) पद्धति—पद्धती, पद्धति (पगडण्डी, माग)।
- (२) अहनि—अहनी, अहति (दान, कष्ट, रोग)।
- (३) वहति—वहती, वहति (नदी)।
- (४) शक्ति—शक्ती, शक्ति (बरछी)।^१
- (५) अहि—अही, अहि (सर्पिणी)।
- (६) कपि—कपी, कपि (वानरी)।

१ स्त्रिया क्तिन् (३३६४) के अधिकार में यह सूत्र पढा गया है—

आक्रोशे नञ्पनि (३३११२)। अर्थ—आक्रोश गम्यमान हो तो नञ् के उपपद रहते स्त्रीत्व की विवक्षा में धातु में भाव आदि में कृत्सञ्जक 'अनि' प्रत्यय हो जाता है। यथा—जनो प्रादुभवि (दिवा० आत्मने०) में—अजननि, दुकृञ् करणे (तना० उभय०) से—अकरणि। न लोपो नञ् (६४७) से नञ् के नकार का लोप हो जाता है। अजननिस्ते शठ। भूयात् (रे दुष्ट। तेरा जन्म न रहे अर्थात् तू मर जाये)। अकरणिस्ते दुष्ट। भूयात् (ऐ दुष्ट। तेरी करनी का नाश हो)।

२ पादाभ्या हृत्यत इति पद्धति। हन्धातो कर्मणि क्तिनि धातोर्नकारलोपे, समासे मुञ्जुक्त्वि हिम-कापि-हतिषु च (६३५३) इति पादव्य पदादेशे रूपसिद्धि। क्तिन्नन्त से गणसूत्रों द्वारा डीप् का निषेध कहा गया है परन्तु गण में पाठमामर्थ्य से यहा डीप् हो जाता है, निषेध नहीं होता।

३ शक्ति शस्त्रे—इस गणसूत्र से शस्त्र (बरछी) अर्थ में ही इस का बह्वादिगण में पाठ माना गया है अन्यत्र नहीं। अतः मामर्थ्यवाची शक्तिशब्द से डीप् न होगा। यथा—शक्ति (सामर्थ्यम्)।

- (७) यष्टि—यष्टी, यष्टि (छडी) ।
 (८) मुनि—मुनी, मुनि (वानप्रस्थ स्त्री) ।
 (९) चण्ड—चण्डी, चण्डा (अत्यन्त कोपशीला) ।
 (१०) पुराण—पुराणी, पुराणा (पुरानी) ।
 (११) चन्द्रभाग—चन्द्रभागी, चन्द्रभागा (चिनाव नदी) ।
 (१२) विकट—विकटी, विकटा (विकराल, विशाल) ।
 (१३) विशाल—विशाली, विशाला ।
 (१४) वृपाण—वृपाणी, वृपाणा ।
 (१५) कल्याण—कल्याणी, कल्याणा ।
 विशेष जिज्ञासु बह्वादिगण का अबलोकन करें ।
 अब पुयोग में स्त्रीप्रत्ययो का विधान करते हैं—

[लघु०] विधि-सूत्रम्—(१२६१) पुंयोगादाख्यायाम् ।४।१।४८ ॥
 या पुमाख्या पुयोगात् स्त्रियां वर्तते ततो डीप् । गोपस्य स्त्री
 गोपी ॥

अर्थ—पुरुष के साथ सम्बन्ध के कारण जब पुवाचक शब्द स्त्रीलिङ्ग में प्रयुक्त हो तो उस अदन्त प्रातिपदिक से परे डीप् प्रत्यय होता है ।

व्याख्या—पुयोगात् ।५।१। आख्यायाम् ।७।१। (छन्दोवत् सूत्राणि भवन्ति— इति पञ्चम्यर्थे सप्तमी) । डीप् ।१।१। (अन्यतो डीप् सूत्र मे) । स्त्रियाम्, अत, प्रातिपदिकात्, प्रत्यय, परञ्च—ये सब पूर्वत अधिकृत हैं । समास—पुमो योग पुयोग, तस्मात्=पुयोगान्, पष्ठीतत्पुरुष । विभाषा गुणोऽस्त्रियाम् (२३२५) इति हेतौ पञ्चमी । आख्यायते बोध्यतेऽर्थोऽनयेति आख्या, आतश्चोपसर्गे (३३१०६) इत्यङ्-प्रत्यय । वाचक शब्द इत्यर्थः । कस्य वाचक इत्याकाङ्क्षायाम् 'पुयोगाद्' इत्युपस्थितत्वात् पुस इति लभ्यते तेन पुसि प्रसिद्धात् शब्दादिति गम्यते । अर्थ—(पुयोगात्) पुरुष के सम्बन्ध के कारण जब (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग में (पुस आख्याया) पुरुष वाचक शब्द प्रयुक्त होता है तो उस (अत =अदन्तात्) अदन्त (प्रातिपदिकात्) प्रातिपदिक से परे

१ बह्वादिगण यथा—बहु । पद्धति । अञ्चति । अङ्कति । अहति । शकटि । शक्ति शस्त्रे (गणसूत्रम्) । शारि । वारि । राति । राधि (शाधि) । अहि । कपि । यष्टि । मुनि । इत प्राण्यङ्गात् (गणसूत्रम्) । कृविकारादक्षितन (गणसूत्रम्) । सर्वतोऽक्षितन्तर्यादित्येके (गणसूत्रम्) । चण्ड । अराल । कृपण (वृपाण) । कमल । विकट । विशाल । विशङ्कट । भृज । ध्वज । चन्द्रभागानद्याम् (चन्द्रभागा नद्याम्—गणसूत्रम्) । कल्याण । उदार । पुराण । अहत् । क्रोड । नख । खुर । शिखा । बाल । शफ । गुद । आकृतिगणोऽयम् । तेन भग, गल, राग इत्यादि । इति बह्वादय । [यह गण शोधनापेक्ष है] ।

(डीप् प्रत्यय) डीप् प्रत्यय हो जाता है। अभिप्राय यह है कि पुलिङ्ग के लिये प्रयुक्त होने वाला अदन्त प्रातिपदिक यदि पतिपत्नीभावसम्बन्ध के कारण स्त्री के लिये भी प्रयुक्त होने लगे तो उस से डीप् प्रत्यय हो जाता है। जैसे हिन्दी में चौधरी की स्त्री को चौधरायन, पण्डित की स्त्री को पण्डितायन या पण्डितानी आदि कहा जाता है वैसे संहृत में भी डम प्रकार के प्रयोग डीप् प्रत्यय लगा कर स्त्रीलिङ्ग में प्रयुक्त होते हैं।

उदाहरण यथा—

गोपस्य स्त्री (पत्नी)—गोपी (गोप अर्थात् ग्वाले की पत्नी)। गोपशब्द गौओं का पालन करने के कारण मुख्यतया पुलिङ्ग है। पतिपत्नीभावसम्बन्ध के कारण इस का प्रयोग स्त्रीलिङ्ग में भी होता है। तत्र इस से पुयोगादाख्यायाम् (१२६१) इम प्रवृत्तिसूत्रद्वारा डीप् (ई) प्रत्यय होकर भमञ्जक अकार का लोप एव विभक्तिकार्य करने से 'गोपी' (स्वास्तिन) प्रयोग सिद्ध हो जाता है^२।

इमीप्रकार—गणकस्य पत्नी गणकी (ज्यातिविद् की पत्नी), महापात्रस्य पत्नी महापात्री (प्रधानमन्त्री की पत्नी), गिरिशम्य पत्नी गिरिशी (शिव की पत्नी, पार्वती)। इत्यादि।

सूत्र में 'पुयोगात्' इस लिये कहा है कि 'देवदत्ता' में डीप् न हा जाये। यहाँ किसी स्त्री का 'देवदत्ता' यह स्वतः नाम है पुयोग के कारण नहीं। 'आख्या' ग्रहण इनलिये किया है कि वह शब्द पुरुषवाचक होना चाहिये अन्यथा डीप् न होगा। यथा— प्रसूता (प्रसून हुई औरत)। यहाँ यद्यपि प्रसव पुयोग के कारण हुआ है तथापि वह पुमाख्या नहीं। किञ्च इस सूत्र में 'अन' का अनुवर्तन होने से अदन्त प्रातिपदिक से ही इस सूत्र की प्रवृत्ति होती है, इनलिये सहिष्णोर्भाषां सहिष्णु। यहाँ उकारान्त 'सहिष्णु' शब्द में डीप् नहीं होता।

विशेष वक्तव्य—पुयोग = पुरुषसम्बन्ध से यहाँ केवल दाम्पत्यसम्बन्ध (पति-पत्नीभावसम्बन्ध) ही नहीं समझना चाहिये अपितु पितापुत्रीभाव आदि अन्य सम्बन्ध भी ग्रहण किये जा सकते हैं— ऐसा प्रौढमनोरमा में भट्टोजिदीक्षित तथा तत्त्वबोधिनी में ज्ञानेन्द्रसरस्वती का कथन है। प्रक्रियासर्वस्वकार में भी यहाँ स्पष्ट कहा है—

क्वचित्पुत्र्यामपि हर पुयोगे डीपमिच्छति।

केकयी केक्यमुता देवकी देवकात्मजा ॥

अन एव भट्टिकाव्य में—

कौसल्ययाऽसावि सुखेन राम प्राक्केकयीतो भरतस्ततोऽभूत्। (भट्टि० ११४)

१ गा पाति (रक्षति) इत्यर्थे आतोऽनुपसर्गे क (७६१) इति कप्रत्यये, उपपदसमासे 'गोप' इति। तस्य स्त्रिया यदि गोपशब्दो लक्षणया वर्तते तदा डीप्।

२ यदि स्त्री, पति के कारण 'गोप' न हो कर स्वयं गौओं का पालन करने के कारण 'गोप' होगी तब डीप् न हो कर अदन्तलक्षण टाप् ही होगा—गोपा।

'केकयीन' यह प्रयोग उष्पन्न हो जाता है। तथाहि—केकयदेश का राजा भी केकय कहलायेगा। 'केकयस्य दुहिता' इस अर्थ में पुयोग (पितापुत्रीभावसम्बन्ध) के कारण पुयोगादाख्यायाम् (१२६१) सूत्र से डीप् प्रत्यय होकर 'केकयी' प्रयोग निष्पन्न होता है। अन्यथा—'केकयस्यापत्य स्त्री' इस अर्थ में जनपदशब्दात् क्षत्रियादात् (१०२८) से अपत्यार्थ में अञ् प्रत्यय हो कर केकय-मित्रयु-प्रलयाना यादेरिय (७३२) सूत्रद्वारा 'य' को 'इय' आदेश, गुण, आदिवृद्धि एव भसञ्जक अकार का लोप करने पर 'केकयी' रूप बनता। इसीप्रकार—देवकस्य दुहिता देवकी, रेवतस्य सुता रेवती आदि में पितापुत्रीभावसम्बन्धरूप पुयोग में डीप् समझना चाहिये। भगिनीव्रातृभाव-सम्बन्धरूप पुयोग में भी यह डीप् देखा जाता है। यथा—श्यालस्य भगिनी श्याली, यमस्य भगिनी यमी।

परन्तु महाभाष्य के ममवित् नागेशभट्ट इस से सहमत नहीं। उन का यह मन्तव्य है कि पुयोग में दाम्पत्यरूपसम्बन्ध का ही ग्रहण करना उचित है, क्योंकि—ययैवासावकुर्वन्ती किञ्चित्पाप भर्तृकृतान् वधवन्धनादीन् बलेशान् लभते एव—शब्दमपि लभते (महाभाष्य ४१४८)—भाष्य के इस उद्धरण से दाम्पत्यरूपसम्बन्ध की ही प्रतीति स्पष्ट होती है। केकयी, देवकी, रेवती आदि प्रयोग गौरादिगण को आकृतिगण मान कर डीप् करने से सिद्ध करने चाहिये। यहा पर शेखरद्वय द्रष्टव्य हैं।

अब अप्रिमवार्त्तिकद्वारा पुयोग में पालकान्त शब्दों से स्त्रीत्व की विवक्षा में डीप् का निषेध करते हैं—

[लघु०] वा०—(१०२) पालकान्तान् ॥

गोपालिका। अश्वपालिका ॥

अर्थ—'पालक' शब्द जिस के अन्त में हो ऐसे प्रातिपदिक से स्त्रीत्व की विवक्षा में पुयोग में डीप् प्रत्यय नहीं होता।

व्याख्या—पालकान्तात् ॥५१॥ न इत्यव्ययपदम्। यह वार्त्तिक महाभाष्य में पुयोगादाख्यायाम् (१२६१) सूत्र पर पड़ा गया है अतः इस निषेध को तद्विषयक ही समझना चाहिये। पालकशब्दोऽन्तः (अन्तावयव) यस्य स पालकान्त, तस्मात्—पालकान्तात्। बहुव्रीहिसमास। पालक-अन्त वाले शब्द गोपालक^१, अश्वपालक, पशुपालक, प्रजापालक आदि होते हैं।

१ न च अत्र अतरश्च (४११७५) इति स्त्रिया लुक् स्यादिति वाच्यम्, केकयशब्दस्य भर्गादी पाठेन न प्राच्य-भर्गादि-योधेयादिभ्य (४११७६) इति लुको निषेधात्।

२ अत्र पालयतीति पालक (ण्वुलि वोरकादेश, णिलोपश्च), गवा (वर्मणि षष्ठी) पालक—गोपालक इत्येव समासो नैव कार्यं, तुजकाम्या कर्त्तरि (२२१५) इति समासनिषेधप्रसङ्गात्। शेषपठ्या समासश्चेत्तदपि न, तथा सति टाप सुं

गोपालकस्य स्त्री (भार्या, पत्नी)—गोपालिका (गोपालक अर्थात् खाले की पत्नी) । 'गोपालक' शब्द म पुयोग मे स्त्रीत्व की विवक्षा मे पुयोगादास्यायाम् (१२६१) मूनद्वारा डीप् प्रत्यय प्राप्त होता है, परन्तु अन्त मे पालकशब्द होने के कारण प्रकृत-वार्तिक पालकान्तान्न (वा० १०२) मे उस का निषेध हो जाता है । अब अजा-द्यतप्याप् (१२४६) से अदन्तलक्षण टाप्, अनुबन्धी का लोप, वक्ष्यमाण प्रत्ययस्यात् कात्पूर्वस्यात् इदाप्यसुप् (१२६२) सूत्र से ककार मे पूर्व अकार को इकार आदेश, सवर्णदीर्घ एव विभक्तिकार्य करने पर 'गोपालिका' प्रयोग सिद्ध हो जाना है ।

इमीप्रकार—अश्वपालकस्य भार्या—अश्वपालिका । पशुपालकस्य स्त्री—पशु-पालिका । द्वारपालकस्य स्त्री—द्वारपालिका । भूपालकस्य पत्नी—भूपालिका । इत्यादि प्रयोग जानने चाहिये ।

गोपालकशब्द से टाप् प्रत्यय करने पर 'गोपालक + आ' इस स्थिति मे इत्स्व-विधायकसूत्र का निर्देश करते हैं—

[लघु०] विधि-सूत्रम्—(१२६२) प्रत्ययस्थात् कात् पूर्वस्यात्
इदाप्यसुप् ।७।३।४४।।

प्रत्ययस्थात् कात् पूर्वस्याकारम्य इकार स्याद् आपि, म आप् सुप् परो न चेत् । सविका । कारिका । अत किम् ? नौका । प्रत्ययस्थात् किम् ? शकनोतीति शका । असुप् किम् ? बहुपरिव्राजका नगरी ॥

अर्थ —प्रत्यय मे स्थित ककार से पूर्व ह्रस्व अकार के स्थान पर ह्रस्व इकार आदेश हो यदि आप् (टाप्, डाप्, चाप्) प्रत्यय परे हा तो परन्तु वह आप् सुप् से परे नहीं होना चाहिये ।

व्याख्या—इस सूत्र मे मात पद है—प्रत्ययस्थात् ।५।१। वात् ।५।१। (ककारादकार उच्चारणार्थ) । पूर्वस्य ।६।१। अत ।६।१। इत् ।१।१। आपि ।७।१। असुप्

परत्वेन प्रत्ययस्थात् कात्पूर्वस्यात् इदाप्यसुप् (१२६२) इत्यनेन इत्स्वस्य दुर्लभ-त्वात् । अतोऽत्रैत्यम्प्रक्रियाऽवसेया—

गा पालयतीति विग्रहे कर्मण्यण (७६०) इत्यणप्रत्यये, णेरनिटि (५२६) इति णेलोपि, उपपदसमामे च कृते 'गोपाल' इति निष्पद्यते । तत्र —गोपाल एव गोपालक, स्वार्थे क । गोपालकस्य स्त्रीति पुयोगे डीपि प्राप्ते प्रकृतवार्तिकेन तन्निषेधे, टापि, अनुबन्धलोपे, प्रत्ययस्थात्कात्पूर्वस्यात् इदाप्यसुप् (१२६२) इति लकारोत्तरस्य अकारस्य इत्त्वे, सवर्णदीर्घे, विभक्तिकार्ये च कृते 'गोपालिका' इति रूप साधु ।

१ हिन्दी मे नगरपालिका (Municipality) शब्द आजकल प्रसिद्ध हो चला है । इस मे पुयोग जैसी कोई विवक्षा नहीं । केवल स्त्रीत्व के योग्य म टाप् प्रत्यय करने मे उमे भी सङ्कृतशब्द बनाया जा सकता है ।

।५।१। समान—प्रत्यये निष्ठतीति प्रत्ययस्य, तस्मात्=प्रत्ययस्थात्, सुंप् स्थ (३२४) इति कप्रत्यये आतो लोपे (४८६) उपपदसमास । न सुंप् असुंप्, तस्मात्=असुंप्, नञ्तत्पुरुष । प्रसज्यप्रतिषेधोऽयम् । अर्थ—(प्रत्ययस्थात्) प्रत्यय मे स्थित (कात्) क् से (पूर्वस्व) पूर्वं (अत) ह्रस्व अकार के स्थान पर (इत्) ह्रस्व इकार आदेश हो जाता है (आपि) आप् प्रत्यय परे हो तो, परन्तु वह आप् प्रत्यय (असुंप्) सुंप् से परे नहीं होना चाहिये । उदाहरण यथा—

‘गोपालक + आ’ यहा ‘गोपालक’ मे पूर्वोक्तप्रकारेण कन् प्रत्यय किया गया था अतः प्रत्यय के ककार से पूर्व लकारोत्तर अत् को प्रकृत प्रत्ययस्थात्कात्पूर्वस्थात् इदाप्सुंप् (१२६२) सूत्र से ह्रस्व इकार आदेश हो जायेगा, आप् परे है ही । पुनः सवर्णदीर्घ कर विभक्ति लाने से ‘गोपालिका’ प्रयोग सिद्ध हो जायेगा ।

इस सूत्र के अन्य उदाहरण यथा—

सर्विका (अज्ञात सब स्त्रीसमूह) । ‘सर्वे’प्रातिपदिक से स्त्रीत्व की विवक्षा मे अदन्त होने से अजाद्यतष्टाप् (१२४६) से टाप् (आ) प्रत्यय कर सवर्णदीर्घ करने मे ‘सर्वा’ शब्द निष्पन्न हो जाता है । यहा सवर्णदीर्घ एकादेश को अन्तादिवच्च (४१) सूत्रद्वारा पूर्वान्तवत् मान कर ‘सर्वा’ की सर्वादीनि सर्वनामानि (१५१) मे सर्वनाम-सञ्ज्ञा बनी रहती है । अब अज्ञात आदि अर्थो मे इन सर्वनाम की टि से पूर्व अव्यय-सर्वनाम्नामकञ् प्राक्टे (१२३३) सूत्र से अकञ् प्रत्यय करने मे—सर्व् अकञ् आ = सर्व्, अक् आ = ‘सर्वका’ इस स्थिति मे आप् (टाप्) के परे रहते प्रकृत प्रत्ययस्थात् कात्पूर्वस्थात् इदाप्सुंप् (१२६२) सूत्रद्वारा अकञ् प्रत्यय के ककार से पूर्व अकार को इकार आदेश कर विभक्तिकार्य करने से ‘सर्विका’ प्रयोग सिद्ध हो जाता है ।

कारिका (करोति या स्त्री सा कारिका, करने वाली) । डुकृञ् करणे (तना० उभय०) धातु मे कर्त्वारक मे ष्वल्तृचौ (७८४) सूत्र से ष्वुल (वु) प्रत्यय, युवोरताचौ (७८५) से ‘वु’ को ‘अक्’ आदेश एवम् अचो ङिति (१८२) से ऋकार को वृद्धि (आर्) आदेश हो कर—‘कारक’ प्रातिपदिक निष्पन्न होता है । अब स्त्रीत्व की विवक्षा मे अदन्त होने के कारण इस से अजाद्यतष्टाप् (१२४६) से टाप् (आ) प्रत्यय हो जाता है । आप् के परे रहते प्रत्यय के ककार से पूर्व अकार को प्रकृत प्रत्ययस्थात्कात्पूर्वस्थात् इदाप्सुंप् (१२६२) सूत्र मे इकार आदेश हो कर विभक्तिकार्य करने से ‘कारिका’ प्रयोग सिद्ध हो जाता है ।

इसीप्रकार—अध्यापिका, तारिका, हारिका, धारिका, परिव्राजिका, शायिका, नायिका, गायिका आदियो मे इत्व की निष्पत्ति समझनी चाहिये ।^१

१ प्रत्ययस्य ककार यहा दो प्रकार का गृहोत होता है । एव—प्रत्यय के अन्त मे म्यित, तथा दूसरा प्रत्यय के उपान्त (अन्त से पूर्व) मे म्यित । अकञ् (अक्) मे ककार प्रत्यय के अन्त मे स्थित है । वु (अक्), कन् (क्) आदि मे उपान्त मे

अब ग्रन्थकार प्रत्युदाहरणों के द्वारा इस सूत्र के अर्थ को हृदयङ्गम कराते हैं—
अत किम् ? नौका ।

प्रत्ययस्थ ककार से पूर्व अत् (ह्रस्व अकार) को ही इकारादेश होता है अन्य किसी वर्ण को नहीं। यथा—नौ (नाव) शब्द से स्वार्थ में 'क' प्रत्यय हो कर स्त्रीत्व की विवक्षा में अदन्तलक्षण टाप् (आ) करने पर 'नौका' शब्द निष्पन्न होता है। इस में प्रत्यय के ककार से पूर्व अत् नहीं अपितु औकार है, इसलिये इसे इकार आदेश नहीं होता। इसीप्रकार—राका, कटुका, गोका आदि में समझना चाहिये।

प्रत्ययस्थात् किम् ? शक्नोतीति शका ।

ककार भी यदि प्रत्यय में स्थित होगा तभी उस से पूर्व अत् को इकार होगा, अन्यथा नहीं। यथा—शक् [शक्त् शक्तौ, स्वा० परस्मै०] धातु में कर्तृ-कारक में नन्दि-ग्रहि-पचादिभ्यो ल्युणिवच (७८६) मूनद्वारा पचादित्वात् भच् (अ) प्रत्यय कर स्त्रीत्व की विवक्षा में टाप्, सवर्णदीर्घ एव विभक्तिकार्य करने से 'शका' (शक्नोतीति शका, समय स्त्री) प्रयोग सिद्ध हो जाता है। यहा आप् के परे रहते भी ककार से पूर्व शकारोत्तर अत को इकार आदेश नहीं होता। कारण कि ककार प्रत्यय में स्थित नहीं, वह तो शक् धातु का अवयव है।

असुप किम् ? बहुपरिव्राजका नगरी ।

जाप् प्रत्यय यदि सुप में परे होगा तो इस सूत्र की प्रवृत्ति न होगी। यथा—बहुव परिव्राजका यस्या सा बहुपरिव्राजका नगरी (बहुत मन्वासियों वाली नगरी)। यहा अनेकमन्यपदारथे (९६६) में 'बहु' और 'परिव्राजक' पदों का बहुव्रीहिमास हुआ है।

विद्यमान है। इन दो प्रकारों को समझाने के लिये ही मूल में दो उदाहरण दिये गये हैं। पहला 'मर्विका' उदाहरण अन्त में ककार का तथा दूसरा 'कारिका' उदाहरण उपान्त्य ककार का है। इन के अतिरिक्त यदि प्रत्यय में कहीं अन्यत्र ककार मिलेगा तो उस का इस मूत्र में ग्रहण न होने से उस से पूर्व अत् को इत्त्व न होगा। यथा—पुत्रकाम्य + टाप् = पुत्रकाम्य + आ = पुत्रकाम्या। यहा काम्यच् प्रत्यय में स्थित ककार न तो प्रत्यय के अन्त में है और न ही उपान्त में, अत प्रकृतसून-द्वारा इत्त्व नहीं होता। इसीप्रकार—रथाना समूह—रथकटघा। यहा तस्य समूह (४२३६) के अर्थ में रथशब्द से इति-त्र-कटघञश्च (४२५०) मूनद्वारा कटघञ् (कटघ) प्रत्यय कर स्त्रीत्व की विवक्षा में टाप् लाने पर 'रथकटघ + आ' इस स्थिति में कटघप्रत्यय में ककार न तो अन्त में स्थित है और न ही उपान्त में, अत यहा प्रकृतसून में इत्त्व नहीं होना। केवल सवर्णदीर्घ हो कर विभक्ति लाने से 'रथकटघा' प्रयोग सिद्ध हो जाता है। इस मव की उपपत्ति के लिये आकरग्रन्थों का अवलोकन करें।

१ परिपूर्वाद् व्रजेर्ष्वुलु, वोरकादेश । अत उपधाया (४५५) इत्युपधावृद्धि ।

‘बहु जस् + परिव्राजक जम्’ इस अलौकिकविग्रह में बहुव्रीहिसमाम, सामाम की प्रातिपदिकमज्ञा, सुंपो धातु-प्रातिपदिकयो (७२१) में सामाम के अवयव दोनों सुंपो (जस प्रत्ययो) का लुक्, स्त्रीत्व की विवक्षा में जदन-लक्षण (१२४६) टाप् मवर्णदीघ तथा विभक्तिकार्य करने से ‘बहुपरिव्राजका, प्रयोग मिद्ध हो जाता है । यहा आप् (टाप्) प्रत्यय परे तो है पर वह समास के अन्तावयव लुप्त हुए जस्-सुंप् से परे है क्योंकि प्रत्ययलक्षणद्वारा लुप्त हुए जम को माना जा सकता है । [न तुमताङ्गस्य (१६१) में यहा प्रत्ययलक्षण का निषेध नहीं हो सकता, क्योंकि उस की प्रवृत्ति तो तब होती है जब सुवाले शब्द से लुप्त हुए प्रत्यय को मान कर अङ्ग के स्थान पर कोई कार्य करना हो, यहा तो सुंप् से परे जो टाप उम को मान कर अङ्ग को इत्त्व का निषेध करना है ।]’

इस इत्त्वविधायकसूत्र के कुछ अपवादस्थल भी हैं । उन में कुछ यथा—

(वा०) क्षिपकादीना च । अर्थ—क्षिपका आदि शब्दों में प्रत्ययस्थात्० (१२६२) सूत्र की प्रवृत्ति नहीं होती । यथा—क्षिपतीति क्षिप, इगुपघज्ञाप्रोक्तिर क (७८७) इति कप्रत्यय । क्त्वाद् लघूपघगुणो न । तत स्वार्थे कन्—क्षिपक । स्त्रियाम् टापि क्षिपका । इसीप्रकार—चटका । कन्यका । तारका (नक्षत्र) । ध्रुवका । आदि ।

(वा०) त्यक्तरश्च प्रतिषेध । अर्थ—त्यक्त्प्रत्ययान्तो में प्रत्ययस्थात्० (१२६२) सूत्र की प्रवृत्ति नहीं होती । यथा—उपत्यका (पर्वत के समीपवर्ती भूमि) । अधित्यका (पर्वत के उपर वाली भूमि) । उपाधिभ्या त्यक्त्नासन्नाहृदयो (५२३४) इति त्यक्त्प्रत्यय ।

(वा०) मामक्तरकयोरुपसङ्ख्यानम् । अर्थ—मामक् और नरक शब्दों में स्त्रीत्व में आप् के परे रहते ककार में पूर्व अत् को ह्रस्व इकार आदेश हो जाता है ।

१ प्रौढमनोरमा तथा तत्त्वबोधिनी आदि में ‘असुंप्’ का ‘सुंबन्तात् परो य’ टापप्रत्यय तस्मिन् इत्त्व न’ ऐसा व्याख्यान किया गया है । अत उन के अनुसार सामाम में परले जम् का लुक् हो जाने पर भी प्रत्ययलक्षणद्वारा उसे पुन मान कर सामाम का उत्तरपद सुबन्त हो जाता है तब इस सुबन्त में परे टाप के स्थित होने में इत्त्व की प्रवृत्ति नहीं होती । ध्यान रहे कि ‘असुंप्’ में प्रसज्यप्रतिषेध माना जाता है पर्युदास नहीं । यदि पर्युदास-प्रतिषेध मानेंगे तो पर्युदास के सङ्ग्राही होने के कारण ‘सुंबन्त से जो भिन्न, उम से परे टाप हो तो इत्त्व हो जाता है’ ऐसा अभिप्राय निकलेगा । तब ‘बहुपरिव्राजका’ में भी इत्त्व होने लगेगा, क्योंकि यहा समुदाय से तो सुंप् किया नहीं गया इसलिये समुदाय सुंबन्त में भिन्न है और इस से परे टाप है ही, अत यहा पर भी प्रकृतसूत्र से इत्त्व प्राप्त होने लगेगा जो अनिष्ट है । इसलिये यहा प्रसज्यप्रतिषेध माना गया है—सुप् अर्थात् सुंबन्त से परे टाप नहीं होना चाहिये । यहा सुंबन्त ‘परिव्राजक जम्’ में परे टाप है अत इत्त्व नहीं होता ।

मामिका मम्पत्^१ । नरिका^२ । दोनो स्थानो पर ककार प्रत्ययस्य न था अत उस मे पूव अकार को इत्व प्राप्त न था, अत इम वार्तिक से विधान किया गया है ।

प्रासङ्गिक इत्वविधायकसूत्र की व्याख्या कर पुन पुयोग मे स्त्रीप्रत्ययो का विधान करते हैं—

[लघु०] वा०—(१०३) सूर्याद् देवताया चाब्वाच्य ॥

सूर्यस्य स्त्री देवता—सूर्या । देवताया किम् ?

अर्थ—‘सूर्य’ प्रातिपदिक से पुयोग मे देवता स्त्री (पत्नी) वाच्य होने पर ‘चाप्’ प्रत्यय कहना चाहिये ।

व्याख्या—सूर्यान् १५।१। देवतायाम् १७।१। चाप् ११।१। वाच्य ११।१। यह वार्तिक महाभाष्य मे पुयोगदाह्यायाम् (१२६१) सूत्र पर पटा गया है, अत इमे तद्धि-पयक ही समयना चाहिये । पुयोग मे टोप् के प्राप्त होने पर उम का अपवाद यह चाप् प्रत्यय विधान किया जा रहा है । ‘चाप्’ मे चुटू (१२६) से चकार तथा हलन्त्यम् (१) से पकार इत्मज्ञक हा कर लुप्त हो जाने हैं, ‘आ’ मात्र शेष रहता है । टाप् और चाप् प्रत्ययो के करने मे स्वर मे अन्तर पडता है । टाप् प्रत्यय करने पर अनुदात्तो संपितो (३१४) मे टाप् का आकार अनुदात्त रहता है परन्तु चाप् प्रत्यय करने मे चित (६११५७) द्वारा अनोदात्त स्वर होता है, यही दोनो का अन्तर है । चाप् म पकार इच्चाप्रातिपदिकात् (११६) सूत्र मे सामान्यग्रहण के लिये जोडा गया है ।

102341

पौराणिक आख्यानो मे सूर्यदेव की दो पत्निया मानी जाती हैं एक देवता पत्नी और दूसरी मानुषी अर्थात् मनुष्यजातीया । इम वार्तिक की प्रवृत्ति सूर्य की देवता पत्नी के वाच्य होने पर ही होगी है जन एक इस मे ‘देवतायाम्’ कहा गया है । उदाहरण यथा—

सूर्यस्य स्त्री देवता—सूर्या । यहा ‘सूर्य’ प्रातिपदिक मे पुयोग मे देवता-पत्नी की विवक्षा म पुयोगदाह्यायाम् (१२६१) सूत्र मे टोप् प्रत्यय प्राप्त होना था, परन्तु प्रकृतवार्तिक सूर्याद् देवताया चाब्वाच्य (वा० १०३) से उस का वाद्य हा

१ ममेयम् इति विग्रहे युष्मदस्मदोरग्यतरस्या खञ्च (१०७६) इत्यपि तवकममकावे-
कवचने (१०८१) इति ममकादेशे आदिवृद्धो, टापि, प्रकृतवार्तिकेन इत्वे ‘मामिका’
इति सिद्ध्यति । [अत्र टिट्टिडाणज्० (१२५१) इति टोप् तु न, केवलमामकभागधेय०
(४१३०) इत्यादिना मज्ञाच्छन्दमोरेव डीब्निपमात्] ।

२ नरान् कायानि इति नरिका । कं शब्दे (श्वा० परस्मै०) आदेश उपदेशान्ति
(४६३) इत्यात्वे आतोऽनुपसर्गे क (७६१) इति कप्रत्ययः, आतो लोप इति च
(४८६) इत्याकारलोपे उपपदनमाने मुंया लुकि टापि इत्वे विभक्तिभ्यो च कुंचे
म्पनिडि ।



चाप् प्रत्यय हो जाता है। चाप् के चकार और पकार अनुबन्धो का लोप हो कर सवर्णदीर्घ तथा विभक्तिकार्य करने पर 'सूर्या' (सूर्य की देवता पत्नी) प्रयोग मिट्ट हो जाता है।

सूर्यस्य स्त्री मानुषी—सूरी (सूर्य की मनुष्य स्त्री)। यहा मनुष्य स्त्री के वाच्य होने पर 'सूर्य' प्रातिपदिक से प्रकृतवाक्तिक सूर्याद् देवताया चाञ्चवाच्य (वा० १०३) से चाप् नहीं होता। पुयोगदास्यायाम् (१२६१) से डीप् प्रत्यय हो कर अनुबन्धलोप तथा यस्येति च (२३६) से भसन्नक अकार का लोप हो जाता है—सूर्यं + ई। जब अग्रिम वाक्तिक प्रवृत्त होता है—

[लघु०] वा०—(१०४) सूर्यागस्त्ययोश्छे च ड्या च ॥

यलोप । सूरी (कुन्ती) । मानुषीयम् ॥

अर्थ—छ या डी प्रत्यय परे होने पर जो अङ्ग, उम के उपधा के यकार का लोप हो जाता है यदि वह यकार 'सूर्य' या 'अगस्त्य' शब्दो का अवयव हो तो।^१

व्याख्या—यह वाक्तिक महाभाष्य में सूर्य-तिष्यागस्त्य-मत्स्याना य उपधाया (६४ १४६) सूत्र पर पढा गया है। उक्त सूत्र का सरलार्थ यह है—ईकार वा तद्धित

१ सूर्य और अगस्त्य शब्दो की उपधा के यकार का लोप हो जाता है छ या डी प्रत्ययो के परे होने पर—ऐसा सरल अर्थ न कर उपर्युक्त व्यायामपूर्ण अर्थ इस लिये किया गया है ताकि 'सूरी प्रभा' आदि म यकार का लोप हो सके अन्यथा सरलार्थ से यह सिद्ध न होता। तथाहि—

सूर्यशब्द से तस्येदम् (११०६) के अर्थ में अण् प्रत्यय, आदिवृद्धि तथा यस्येति च (२३६) से भसन्नक अकार का लोप करने से 'सूर्यं' प्रातिपदिक बनता है। अब इस से स्त्रीत्व की विवक्षा म टिड्ढाणञ्० (१२५१) सूत्रद्वारा डीप् प्रत्यय करने पर 'सूर्यं + ई' इस स्थिति में सरलार्थ में काम नहीं चल सकता, क्योंकि डी (ई) के परे रहते 'सूर्य' शब्द तो रहा ही नहीं बहा तो अप्रत्ययान्त 'सूर्यं' यह नया शब्द आ गया है अतः उपधा के यकार का लोप नहीं हो सकता। परन्तु उपर्युक्त व्यायामपूर्ण अर्थ करने में कोई बाधा नहीं आती, आसानी में यकार का लोप मिट्ट हो जाता है। क्योंकि 'डी' के परे रहते अङ्ग है—सूर्यं, इस अङ्ग की उपधा के यकार का लोप हो सकता है, कारण कि वह यकार सूर्यशब्द का मौलिक अवयव है कोई भिन्न वर्ण नहीं। अतः यस्येति च (२३६) में भसन्नक अकार का लोप हो प्रकृतवाक्तिक के उपर्युक्त अर्थ में यकार का भी लोप कर विभक्ति लाने में 'सूरी प्रभा' प्रयोग मिट्ट हो जाता है। [न च 'सूर्यं + ई' इत्यथ यस्येति च (२३६) इत्यनेन अणोऽकारलोपे एकदेशविकृतमन्यवद् इतिन्यायेन स एव सूर्य-शब्द इति वाच्यम्, अल्लोपयलोपयोहभयोरप्याभीयत्वेन यलोपे कर्तव्ये पूर्वप्रवृत्त-स्याल्लोपस्यासिद्धत्वेन सूर्यशब्दकल्पनाया अन्यायन्वादिनि] ।

परे ही तो अङ्ग की उपधा यकार का लोप हो जाता है यदि यह यकार सूर्य, तिष्य, अगस्त्य या मत्स्य शब्दों का अवयव हो तो । इस सूत्रद्वारा तद्धितमात्र में प्राप्त उपधा के यकार का लोप प्रकृतवार्तिक तथा कुछ अन्य वार्तिकों के द्वारा नियमित किया जाता है । प्रकृतवार्तिक में सूर्य और अगस्त्य शब्दों के उपधा यकार का लोप ही (ई) में तथा तद्धितप्रत्ययों में केवल छप्रत्यय के परे रहत ही नियमित किया गया है । अतः 'छ' में भिन्न अन्य तद्धितों में इस का लोप न होगा । उदाहरण यथा (टी में)—

'सूर्य् + ई' यथा टी परे है अतः सूर्यागस्त्ययोश्छे च ङच्चा च (वा० १०३) इस प्रकृतवार्तिक में अङ्ग की उपधा यकार का लोप हो जाता है क्योंकि यह यकार सूर्य-शब्द का अवयव है—सूर्य् + ई = सूरि । अब ङ्यन्त में प्रथमा के एकवचन की विवक्षा में सु विभक्ति ला कर उम का हल्च्चादिभ्रंश (१७६) करने में 'सूरी' (सूर्य की मनुष्य स्त्री अर्थात् कुन्ती^१) प्रयोग सिद्ध हो जाता है ।

इसीप्रकार—तस्येदम् (११०६) के अर्थ में सूर्यशब्द में अण् हो कर आदिवृद्धि एव भसञ्जक अकार का लोप करने पर 'सौर्य' शब्द निष्पन्न होता है । अब स्त्रीत्व की विवक्षा में अण्प्रत्ययान्त होने के कारण टिड्ढाणञ्० (१२५१) सूत्र में इस में परे ङीप् (ई) प्रत्यय हो कर भसञ्जक अकार का लोप एव प्रकृतवार्तिकद्वारा उपधा के यकार का भी लोप करने पर विभक्ति लाने में मौरी प्रभा' (सूर्य की चमक) प्रयोग सिद्ध हो जाता है ।

'छ' प्रत्यय में उदाहरण यथा—

मौरीय (सूर्यमन्वन्धी प्रकाश आदि में होने वाला) । सूर्यशब्द में पूर्ववत् तस्येदम् (११०६) के अर्थ में अण् प्रत्यय करने पर 'मौर्य' शब्द निष्पन्न होता है । अब इस में तत्र भव (१०६२) के अर्थ में वृद्धाच्छ (१०७७) में छप्रत्यय, प्रत्यय के आदि छकार को आयनेयीनीयिष फ-ढ-ख-छ-धा प्रत्ययादीनाम् (१०१३) सूत्रद्वारा ईय् आदेश एव यस्येति च (२३६) में भसञ्जक अकार का लोप कर 'सौर्य् + ईय्' हुआ । अब प्रकृत सूर्यागस्त्ययोश्छे च ङच्चाच्च (वा० १०३) वार्तिक में अङ्ग की उपधा यकार (जो सूर्यशब्द में मन्वन्ध रखती है) का लोप कर विभक्ति लाने में 'सौरिय' प्रयोग सिद्ध हो जाता है ।

इसीप्रकार अगस्त्यशब्द में प्रज्ञिया समझनी चाहिये । अगस्त्यस्य पत्नी—अगन्ती [पुंयोग में ङीप्, यस्येति च (२३६) में भसञ्जक अकार का लोप तथा प्रकृतवार्तिक में उपधा के यकार का लोप] । 'छ' में पूर्ववत् 'आगस्तीय' ।

प्रकृतवार्तिकद्वारा नियमित किये जाने से अन्य तद्धित प्रत्ययों में इन के यकार का लोप नहीं होता । यथा—सूर्यो देवताऽभ्येति सौर्यो मन्त्र [साऽस्य देवता (१०४१) में अण् आदिवृद्धि तथा यस्येति च (२३६) में अकार का लोप] । अगस्त्यम्या-

१ सूर्य की मानुषी पत्नी कुन्ती का आख्यान महाभारत आदि-पत्र अध्याय ११० में देखा चाहिये ।

पत्यम्— आगस्त्य [ऋष्यन्धकवृत्णिकुरुम्यश्च (१०१८) मे अण्, आदिवृद्धि, यस्येति च (२३६)] ।

अब अग्रिममूत्रद्वारा डीप् का पुन विधान करते हैं—

[लघु०] विधि-सूत्रम्— (१२६३) ✓ इन्द्र-वरुण-भव-शर्व-रुद्र-मृड-हिमाऽरण्य-यव-यवन-मातुलाऽऽचार्याणाम् आनुंक् । ४।१।४६।।

एषाम् आनुंगागम स्यान्डीप् च । इन्द्रस्य स्त्री—इन्द्राणी । वरुणानी । भवानी । शर्वाणी । रुद्राणी । मृडानी ।।

अर्थ—इन्द्र, वरुण, भव, शर्व, रुद्र, मृड, हिम, अरण्य, यव, यवन, मातुल और आचार्य—इन बारह प्रातिपदिकों में स्त्रीत्व की विवक्षा में डीप् प्रत्यय तथा इन प्रातिपदिकों को आनुंक् का आगम भी हो जाता है ।

व्याख्या—इन्द्र-वरुण—मातुलाचार्याणाम् । ६।३। आनुंक् । १।१। डीप् । १।१। (अन्यतो डीष् सूत्र सं ।) । प्रत्यय, परश्च, प्रातिपदिकात्, स्त्रियाम्—ये सब अधिकृत हैं । इन्द्रश्च वरुणश्च भवश्च शर्वश्च रुद्रश्च मृडश्च हिम च अरण्य च यवश्च यवनश्च मातुलश्च आचार्यश्च — इन्द्र-वरुण-भव-शर्व-रुद्र-मृड-हिमाऽरण्य-यव-यवन मातुलाऽऽचार्या, तेषाम् = इन्द्र-वरुण-भव-शर्व-रुद्र-मृड-हिमाऽरण्य-यव-यवन-मातुलाऽऽचार्याणाम्, इतरेतरद्वन्द्वसमास । प्रत्यय, परश्च—इन अधिकारों के अनुरोध से इस पद की आवृत्ति कर इसे पञ्चमीबहुचनान्त में परिणत कर लिया जाता है । एव 'प्रातिपदिकात्' को बहुवचनान्त में परिणत कर 'प्रातिपदिकेभ्य' बना लिया जाता है । अर्थ— (स्त्रियाम्) स्त्रीत्व की विवक्षा में (इन्द्र—आचार्येभ्य) इन्द्र, वरुण, भव, शर्व, रुद्र, मृड, हिम, अरण्य, यव, यवन, मातुल और आचार्य—इन बारह (प्रातिपदिकेभ्य) प्रातिपदिकों से परे (डीप्) डीप् प्रत्यय हो जाता है तथा इन प्रातिपदिकों का अवयव (आनुंक्) आनुंक् आगम भी हो जाता है ।

यह सूत्र अष्टाध्यायी में पुयोग के प्रकरण में पडा गया है । परन्तु इन्द्र, वरुण, भव, शर्व, रुद्र, मृड, मातुल और आचार्य— इन आठ शब्दों से ही पुयोग में स्त्रीत्व की विवक्षा में इस सूत्र की प्रवृत्ति होती है, अन्यो (हिम, अरण्य, यव) में असम्भव होने के कारण एव यवनशब्द से अप्रसिद्ध होने के कारण पुयोग में प्रवृत्ति नहीं होती । उन में वक्ष्यमाण वार्तिकोक्त अर्थों में ही इस सूत्र की प्रवृत्ति होती है ।

आनुंक् के अन्त में उँकार और ककार इत् हो कर लुप्त हो जाते हैं, 'आन्' मात्र ही शेष रहता है । कित होने से यह आगम आद्यन्तौ टक्तौ (८५) परिभाषा के अनुसार इन्द्र आदि प्रातिपदिकों का अन्नावयव बनता है । उदाहरण यथा—

इन्द्रस्य स्त्री (भार्या, पत्नी)—इन्द्राणी (इन्द्र की पत्नी) । यहा 'इद्र' प्रातिपदिक से पुयोग में स्त्रीत्व की विवक्षा में इन्द्रवरुणभवशर्व० (१२६३) इस प्रवृत्तिसूत्र से डीप् प्रत्यय तथा प्रातिपदिक के अन्त में आनुंक् का आगम हो कर अनुबधलोप करने से 'इन्द्र आन्+ई' हुआ । अब अक सवर्णं दीर्घं (४२) में मवर्णदीर्घं तथा

अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेर्षि (१३८) से नकार को णकार कर जन्त म विभक्तिवायं करने में 'इन्द्राणी' प्रयोग सिद्ध हो जाता है ।^१

इमोप्रकार—वरुणस्य स्त्री (भार्या, पत्नी)—वरुणानी (वरुण की पत्नी) । भवस्य स्त्री—भवानी । शर्वस्य स्त्री—शर्वाणी । रुद्रस्य स्त्री—रुद्राणी । मृडस्य स्त्री—मृडानी । भव, शर्व, रुद्र और मृड—ये सब जिब के नाम हैं शिव की पत्नी पार्वती को भवानी, शर्वाणी, रुद्राणी और मृडानी कहते हैं ।

इन्द्र आदि शब्दों में डीप् तो पुयोग म पुयोगादाख्यायाम् (१२६१) सूत्र में ही सिद्ध था, केवल आनुक् आगम के लिये ही स्त्र म इन का ग्रहण किया गया है ।^२

जब अग्रिम वार्तिकों के द्वारा अन्य शब्दों के अर्थों तथा विशिष्ट कार्यों का निर्देश करते हैं—

[लघु०] वा०—(१०५) हिमाऽरण्ययोर्महत्त्वे ॥

महद् हिम हिमानी । महद् अरण्यम् अरण्यानी ॥

अर्थ—हिम और अरण्य इन दो प्रातिपदिकों में महत्त्व (बड़ा होना) अर्थ में ही डीप् और आनुक् का विधान समझना चाहिये ।

व्याख्या—वार्तिकार्थ मरल है । उदाहरण यथा—

महद् हिमम्—हिमानी (बड़ी बरफ)^३ । महद् अरण्यम्—अरण्यानी (बड़ा जङ्गल)^४ । इन अर्थों में इन का प्रयोग स्त्रीलिङ्ग में ही होता है । इन की सिद्धि 'इन्द्राणी' की तरह समझनी चाहिये ।

[लघु०] वा०—(१०६) यवाद् दोषे ॥

दुष्टो यवो यवानी ॥

अर्थ—दोष दोष्य होने पर यव प्रातिपदिक से पर डीप् प्रत्यय और प्रकृति को जानुक् का आगम हो जाता है ।

१ पुलोमजा शचीन्द्राणी—इत्यमर ।

२ आनुक् आगम की बजाय यदि अनुक् आगम कर दत्त तो अतो गुणे (२७४) स्त्र-द्वारा मवर्णदीर्घ का वाध कर पररूप हो जाना । इस प्रकार 'इन्द्राणी, वरुणानी भवानी' आदि के स्थान पर 'इन्द्रणी, वरुणनी, भवनी' आदि अनिष्ट रूप बन जाते । उन आगम को दीर्घघटित किया गया है । विशेषज्ञानामु इम विषय पर विस्तृत विचार लेखक के शोधप्रबन्ध न्यास-वर्षातीचन म पृष्ठ (१५१, १५२, १५३, १५४, १५५, १५६) पर देखें । यह ग्रन्थ भैमीप्रकाशन में प्रकाशित हो चुका है ।

३ आचार्य युधिष्ठिर भौमामक का कथन है कि महत्त्व में हिम का घनत्व अपेक्षित है (देखें द्रुष्टद्वारा प्रकाशित ज्योतिषशास्त्र पर ४ १ ४६ सूत्र पर उन की टिप्पण) ।

४ निखन (६ २६) में 'अरण्यस्य पत्नी अरण्यानी' ऐसा भी उपलब्ध होता है ।

व्याख्या—वार्तिकार्थं सरल है। दुष्टो यव—यवानी (दुष्ट यव जघान् अज-
वायन)। 'यवानी' वह द्रव्य है जो जास्या तो यव नहीं पर आहृत्या यव के मद्ग्न है।
दोष से यहा वैयाकरणो को यही अभिप्रेत है। जैसाकि कैयटवृत्तप्रदीप में लिखा है—
जात्यन्तरमेवाभिधीयते। दोषस्तु यवत्वजातेरभावे तदाकारानुवृत्तिमात्रम् इत्याहु
[प्रदीप ४१४६]। हरदत्त, मट्टोजिदीक्षित आदियो ने भी कैयट का अनुसरण
किया है।

[लघु०] वा०—(१०७) यवनाल्लिप्याम् ॥

यवनाना लिपिर्यवनानी ॥

अर्थ—'यवन' प्रातिपदिक से डीप् प्रत्यय तथा प्रकृति का आनुंक का आगम
लिपिविशेष के वाच्य होने पर ही होता है।

व्याख्या—यवनात् १५१। निप्याम् १७। वार्तिकार्थं सरल है। जसरो के
विन्यास की विशिष्ट शैली को लिपि कहा जाता ह। ब्राह्मी, शारदा, नागरी आदि
लिपिविशेषो की सजाए हैं। यवनो (यूनानियो) की भाषा जिस लिपि में लिखी जानी
थी उसे प्राचीन काल में 'यवनानी' कहा जाता था। ब्राह्मी जादि भारतीय लिपिया
जहा बाईं ओर से दाईं ओर को चला करती थी वहा यवनानी लिपि इस के विपरीत
दाईं ओर से बाईं ओर को अप्रसर होती थी। आजकल उर्दू, फारसी, अरबी आदिया
की लिपिया यवनानीशैली पर अप्रसर होती हैं।

इम वार्तिकद्वारा लिपि के विषय में विधीयमान इस डीप् और आनुंक का
तत्पदेम् (११०६) द्वारा प्राप्त अण् प्रत्यय का अपवाद समझना चाहिये। अत एव
'यवनानामियम्—यावनी लिपि' ऐसा प्रयाग नहीं होता। हा। भाषा आदि के वाच्य
होने पर अण् का प्रयोग देखा जाता ह। यथा—

न वदेद् यावनी भाषा प्राणं कण्ठगतरपि।

गजंरापोडघमानोऽपि न गच्छेज्जैतमन्दिरम् ॥ (भविष्यपुराणे)

नोट—यवन प्रातिपदिक से पुयोग में पुयोगदाख्यायाम् (१२६१) सूत्रद्वारा
केवल डीप् प्रत्यय ही होगा आनुंक नहीं। अत यवनस्य स्त्री 'यवनी' ही बनेगा 'यव-
नानी' नहीं।

[लघु०] वा०—(१०८) मातुलोपाध्याययोरानुंवा ॥

मातुलानी, मातुली। उपाध्यायानी, उपाध्यायी ॥

अर्थ—मातुल (मामा) और उपाध्याय—इन दो प्रातिपदिको से पुयाग में
स्त्रीत्व की विवक्षा में डीप् प्रत्यय तो नित्य होता है पर आनुंक का आगम विकल्प से।

व्याख्या—मातुलोपाध्याययो १६।२। आनुक् १।१। वा इत्यव्ययपदम्।
वार्तिक का अर्थ पूर्ववत् सरल है। मातुलस्य स्त्री (भायाँ, पत्नी) मातुलानी (मामी)।
जहा आनुंक का आगम न होगा वहा केवल डीप् प्रत्यय हो कर भयञ्ज अवग का

लोप कर विभक्ति लाने से 'मातुली' प्रयोग बनेगा । इसीप्रकार—उपाध्यायस्य^१ स्त्री—उपाध्यायानी, उपाध्यायी (उपाध्याय की पत्नी) वा ।

यदि 'उपाध्यायस्य स्त्री' इस प्रकार पुयुयोग विवक्षित न होगा अर्थात् कोई स्त्री स्वयम् अध्यापिका होगी तो बह्वा डीप् वा विकल्प होगा आनुक् की प्रवृत्ति न होगी—उपाध्यायी, उपाध्याया वा । यह बात महाभाष्य में इडश्च (२४४८) सूत्र पर कही गई है । अत एव सिद्धान्तवैमुदी में भृङ्गाजिदीक्षित न लिखा है—या तु स्वयमेवाध्यापिका तत्र वा डीप् वाच्य (मि० की०) । इस से यह भी प्रमाणित होता है कि प्राचीनकाल में स्त्रिया भी वेद का अध्यापन करती थी । बाद में पुस्त्यो ने उन से यह अधिकार छीन लिया प्रतीत होता है ।

[लघु०] वा०—(१०६) आचार्यादणत्व च ॥

आचायस्य स्त्री—आचार्यानी ॥

अथ—आचार्यप्रातिपदिक से परे आनुक् (आन्) के नकार को णकार नहीं होता ।

व्याख्या—'आचाय'^२ प्रातिपदिक से पुयुयोग में डीप् और आनुक् तो सूत्र से ही सिद्ध हैं परंतु इस के साथ आनुक् के नकार को णकार आदेश भी नहीं होता—इस के मग्रह के लिये वार्तिक में 'च' का ग्रहण किया गया है । उदाहरण यथा—

आचार्यस्य स्त्री (पत्नी) आचार्यानी [आचाय की पत्नी] । यहा आचायशब्द से पुयुयोग में इडश्चरुणभवशब्द० (१२६३) सूत्रद्वारा डीप् प्रत्यय हो कर प्रकृति को आनुक् का आगम हो जाता है—आचार्य आन् + ई = आचार्यानी । अब अट्कुप्वाङ्नुभ्यवायेऽपि (१३८) सूत्र से नकार को णकार प्राप्त होता है, इस पर प्रकृतवार्तिक आचार्यादणत्व च (वा० १०६) से उम का निषेध हो जाता है । पुन विभक्तिकार्य करने से 'आचार्यानी' प्रयोग सिद्ध हो जाता है ।

नोट—यहा यह विशेष ध्यातव्य है कि यदि कोई स्त्री स्वयं व्याख्यात्री पण्डिता होगी तो पुयुयोग के अभाव में प्रकृतसूत्र से डीप् और आनुक् न हो कर अजाद्यतष्टाप् (१२४६) से टाप् प्रत्यय ही होगा—आचार्या ।

[लघु०] वा०—(११०) अर्यक्षत्रियान्या वा स्वार्थे ॥

अर्याणी, अर्या । क्षत्रियाणी, क्षत्रिया ॥

१ उपाध्याय का लक्षण यथा—

एकदेश तु वेदस्य वेदाङ्गान्यपि वा पुन ।

योऽध्यापयति वृत्त्यर्थमुपाध्याय स उच्यते ॥ (मनु० २१४१)

२ आचाय का लक्षण यथा—

उपनीय तु म शिष्य वेदमध्यापयेद् द्विज ।

सकल्प सरहस्य च तमाचार्यं प्रचक्षते ॥ (मनु० २१४०)

अर्थ—‘अर्यं’ (स्वामी या वैश्य) एव ‘क्षत्रिय’ प्रातिपदिको से स्वार्थं मे (पुयोग मे नही बल्कि जाति आदि वाच्य होने पर) स्त्रीत्व की विवक्षा मे डीप्-प्रत्यय + आनुंक-आगम विकल्प से होते हैं ।

व्याख्या—पक्ष मे अदन्तलक्षण टाप् (१२४६) हा जायेगा^१ । उदाहरण यथा—
 अर्याणी, अर्या (स्वामिनी या वैश्य जाति की स्त्री) । क्षत्रियाणी, क्षत्रिया (क्षत्रिय-जाति की स्त्री) । पुयोग मे पुयोगादाह्वयाम् (१२६१) से निर्वाध डीप् हो जायेगा ।
 यथा—अर्यस्य भार्या—अर्या (स्वामी की पत्नी अथवा वैश्य की पत्नी) । क्षत्रियस्य भार्या—क्षत्रियी (क्षत्रिय की पत्नी)^२ ।

[लघु०] विधि-सूत्रम्—(१२६४) क्रीतात् करणपूर्वात् ।४।१।५०॥

क्रीतान्ताद् अदन्तात् करणादे^५ स्त्रिया डीप् स्यात् । वस्त्रक्रीती ।
 क्वचिन्न—घनक्रीता ॥

अर्थ—‘क्रीत’ शब्द जिस के अन्त म तथा करणवाचक जिस का पूर्वविवह हा उस अदन्त प्रातिपदिक से स्त्रीत्व की विवक्षा मे डीप् प्रत्यय हो ।

१ अर्यं स्वामि-वैश्ययो (३११०३) ।

२ यहा यह ध्यातव्य है कि पक्ष मे जातेरस्त्रीविषयादयोपधात् (१२६६) सूत्रद्वारा डीप् नही होता, क्योंकि उक्तसूत्र मे ‘अयोपधात्’ कहा गया है । अर्यं और क्षत्रिय दोनो की उपधा मे यकार है ।

३ अमरकोष मे इन का सग्रह सुन्दररीति से किया गया ह—

अर्याणी स्वयमर्या स्यात् क्षत्रिया क्षत्रियाण्यपि ।

उपाध्यायाऽप्युपाध्यायी स्यादाचार्यापि च स्वत ॥

आचार्याणी तु पुयोगे स्यादर्या क्षत्रियी तथा ।

उपाध्यायान्युपाध्यायी ॥

अर्थ—पुयोग के बिना स्वार्थं मे ‘अर्याणी-अर्या, क्षत्रियाणी-क्षत्रिया’ रूप बनत है । इसीप्रकार पुयोग के बिना स्वत अध्यापन कार्य करने पर ‘उपाध्यायी-उपाध्याया’ तथा ‘आचार्या’ रूप बनते हैं । पुयोग मे—अर्या, क्षत्रियी, उपाध्यायानी-उपाध्याया तथा आचार्याणी रूप बनते हैं ।

४ क्रीतान्ताद् अदन्तात् करणादे—इन तीनों के पुलिङ्ग विशेष्य ‘प्रातिपदिकशब्दात्’ का यहा अध्याहार करना चाहिये । केवल ‘प्रातिपदिकात्’ इस नपुसक विशेष्य का अध्याहार स्वीकार करेंगे तो ‘करणादे’ यह पुलिङ्ग प्रयोग अनुपपन्न होगा—
 ऐसा बालमनोरमाकार श्रीवासुदेवदीक्षित का कथन है । परंतु हमारे विचार म ‘करणादि’ शब्द भाषितपुस्क है अत नपुसक के पञ्चम्येकवचन मे इस के ‘करणादे और करणादिन’ दोनो रूप बन सकते हैं । यहा ‘प्रातिपदिकात्’ इम नपुसक विशेष्य के साथ किसी भी रूप का प्रयोग हो सकता है—कोई दोष नही आता ।

व्याख्या—क्रीतान् १५।१। करणपूर्वात् १५।१। डीप् ११।१। (अयतो डीष् सूत्र से) । अत, प्रातिपदिकात्, स्त्रियाम्, प्रत्यय, परश्च—ये मव पूवन अधिकृत हैं । करण (करणवाचकम्) पूर्वम् (पूर्वपदम्) यस्य प्रातिपदिकस्य तत् करणपूर्वम् तस्मात्= करणपूर्वात्, बहुव्रीहिमाम । 'अत' और क्रीतान्' ये दातो 'प्रातिपदिकात्' के विशेषण हैं । विशेषण मे तदन्तविधि हो कर 'क्रीतशब्दान्ताद् जदन्तात् प्रातिपदिकात्' उपलब्ध हो जाता है । अर्थ—(क्रीतात् = क्रीतशब्दान्तात्) क्रीतशब्द जिसके अन्त मे हो तथा (करणपूर्वात्) करणवाचक जिम् के पूव मे हा ऐमे (अत = अदन्तात्) अदन्त (प्रातिपदिकात्) प्रातिपदिक मे परे ट्रीप प्रत्यय हो जाना है (स्त्रियाम्) स्त्रीत्व की विवभा मे । उदाहरण यथा—

वस्त्रे क्रीता वस्त्रक्रीती (वस्त्राद्वाग खरीदो गई स्त्री भूमि आदि कोई स्त्रीलिङ्ग वस्तु) । वस्त्र भिम् + क्रीत' उम श्लौकिकविग्रह मे 'क्रीत' शब्द मे मुबुत्पत्ति मे पूर्व ही गतिकारकोपपदाना कृद्भि सह समासवचन प्राक् सुबुत्पत्ते इस परिभाषा के बल से कर्तृकरणे कृता बहुलम् (६२६) सूत्रद्वारा तत्पुरुषममाम हा कर सुंपो धातुप्रातिपदिकयो (७२१) मे सुब्लक् कर्म पर वस्त्रक्रीत' बना । इस शब्द के अन्त मे क्रीतशब्द तथा इस के आदि मे करणवाचक वस्त्रशब्द मौजूद है किञ्च यह ममस्त प्रातिपदिक अदन्त भी है, इसलिय स्त्रीत्व की विवज्ञा मे इस मे प्रकृत क्रीतात्करणपूर्वात् (१२६८) सूत्रद्वारा ट्रीप (ई) प्रत्यय हा भग्नक अकार का लोप कर विभक्ति-कार्य करने मे वस्त्रक्रीती प्रयोग मिद्ध हा जाना है ।^१

क्वचित्—घनक्रीता ।

प्रकृतसूत्रद्वारा विधीयमान ट्रीप् क्वचित् नही भी होता । यथा—घनन क्रीता घनक्रीता^२ (घन मे खरीदो हुई स्त्री, भूमि आदि कोई स्त्रीलिङ्ग वस्तु) । कारण यह है कि कर्तृकरणे कृता बहुलम् (६२६) सूत्र मे 'बहुलम्' ग्रहण के कारण गतिकारकोपपदाना कृद्भि सह समासवचन प्राक्सुबुत्पत्ते (५०) उम परिभाषा का क्वचित् आश्रयण नही भी किया जाना । तब सह सुपा (६०६) अधिकार के कारण मुबन्त का मुबन्त के माय ही ममास होने के कारण क्रीत' को मुबन्त बनाने मे पूर्व ही स्त्रीप्रत्यय करना पडना है । ऐमौ जवस्या मे उम मे अजाद्यतष्टाप् (१२८६) द्वारा ट्रीप् ही हा मकता है, ट्रीप् नही, क्योंकि ट्रीप् की प्रवृत्ति तो तब होती है जब उम के पूर्व करणकारक

१ इस परिभाषा की सोदाहरण विम्बृत व्याख्या इस भैमीव्याख्या के चतुर्थभाग ममासप्रकरण मे पृष्ठ १५०—१५३ तक देखे ।

२ 'वस्त्रक्रीती' की ओर अधिक विम्बृत मिद्धि का जानन के निच ममामप्रकरण मे पृष्ठ (१५२) पर लिखी 'अवक्रीती' की मिद्धि का देखे ।

३ सा हि तस्य घनक्रीता प्राप्तेन्योऽपि गरीयसी—इत्युद्धृत काशिकायाम् । मूलमस्य मृचम् ।

जुडा हो। इस प्रकार 'घन टा-क्रीता मुं' इस अलौकिकविग्रह वाले ममास में सुंपो (टा और मुं) का लुक् कर 'वनक्रीता' यह आदन्त प्रातिपदिक निष्पन्न होता है। अब इस से स्त्रीत्व की विवक्षा होने पर भी प्रवृत्तसूत्र से डीप् नहीं होता क्योंकि इस में आदन्त प्रातिपदिक में ही डीप् का विधान किया गया है आदन्त से नहीं। इस तरह प्रथमा के एकवचन में मुं का हल्डचादिलोप (१७६) हो कर 'घनक्रीता' प्रयोग सिद्ध हो जाता है।

सूत्र में 'करणपूर्वात्' कहने के कारण मुक्रीता, दुष्क्रीता, विक्रीता' आदि में डीप् न होगा। इसीप्रकार 'स्वक्रीता' में कर्तृकारक पूर्व में जुडा होने के कारण भी डीप् की प्रवृत्ति नहीं होगी।

'बन्धे क्रीता' इत्यादि विग्रहवाक्यों में 'क्रीता' से डीप् न हो कर टाप् ही हाता है। कारण कि यह करणादि एव क्रीतान्त प्रातिपदिक नहीं है।

— ० —

अभ्यास [१]

- (१) क्या स्त्रीप्रत्यय लगा कर ही स्त्रीत्व प्रकट किया जा सकता है या अन्यथा भी? सोदाहरण स्पष्ट करें।
- (२) सस्कृतभाषा में स्त्रीत्व का निर्णय किस आधार पर किया जाता है?
- (३) निम्नस्थ प्रश्नों का यथोचित उत्तर दीजिये—
 - [क] पाणिनीयव्याकरण के कुल स्त्रीप्रत्यय नामत निर्दिष्ट करें।
 - [ख] 'श्वेता' में वर्णविनुवात्तात्तोपधात्० की प्रवृत्ति क्यों नहीं होती?
 - [ग] 'चटका' में ककार से पूर्व अत् को इत्त्व क्यों नहीं होता?
 - [घ] 'त्रिभुवनम्' में द्विगो द्वारा डीप् क्यों नहीं होता?
 - [ङ] प्राचां ष्फ तद्धित में ष्फ को तद्धित क्यों कहा है?
 - [च] यवाद् दोषे में दोष से क्या अभिप्रेत है?
 - [छ] वत्स, बाल और शिशु में वयसि प्रथमे की प्रवृत्ति होगी या नहीं?
 - [ज] बोटो गुणवचनात् से 'आखु'शब्द में डीप् होगा या नहीं?
 - [झ] युवावस्थावाची 'वधूटी' में वयसि प्रथमे द्वारा डीप् कैसे हो जाता है?
 - [ञ] जाति के वाच्य होने पर 'क्षत्रिय' और 'अय' का क्या रूप बनेगा?
 - [ट] प्रथमवयोवाची कन्याशब्द में डीप् न हो कर टाप् कैसे?
 - [ठ] 'आचार्यानी' में णत्व क्यों नहीं होता?
- (४) अधोलिखित प्रातिपदिकों के स्त्रीलिङ्गरूप सिद्ध करें—
 - १ राजन् । २ अनड्डह् । ३ विद्वस् । ४ शिव । ५ सुदर । ६ दण्डिन् । ७ पञ्चन् । ८ कर्त् । ९ गच्छत् । १० जानत् । ११ नश्वर । १२ यत्मान । १३ कुप्यत् । १४ कुर्वत् । १५ मातुल । १६ बहुकुरुचर । १७ देव ।

- (१४) सर्वतोऽवितन्त्र्यादित्येके यह गणमूत्र किन किन बातों में कृदिकारावस्तित मूत्र की अपेक्षा अधिक व्यापक है ?
- (१५) निम्नम्य कारिका की सोदाहरण विस्तृत व्याख्या करे—
सत्त्वे निविशतेऽपेति पृथग्जातिषु दृश्यते ।
आधेयश्चाक्रियाजश्च सोऽस्तत्त्वप्रकृतिगुण ॥
- (१६) न षट्स्वस्त्रादिभ्यः द्वारा डीप् और टाप् दोनों का निषेध किया जाता है । टाब्निषेध को उदाहरणों में घटा कर समझाए ।
- (१७) अजाद्यतष्टाप् में कौमुदीकार 'अजाद्यत' को षट्घन्त क्यों मानते हैं ?
- (१८) प्रत्यय में ककार किस स्थान पर हो तो इत्व की प्रवृत्ति होती है ?
- (१९) आगम के टित्व के कारण कोई प्रातिपदिक टिट् नहीं होता—इस कथन की सोदाहरण पुष्टि करे ।
- (२०) लकाराश्रित अनुबन्धकार्य लालेशो में सक्रमित नहीं होते—इस कथन की सोदाहरण सप्रमाण व्याख्या करे ।

— ० —

अब पुनः डीप् का विधान करते हैं—

[लघु०] विधि-सूत्रम्—(१२६५) स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसयोगो-
पधात् । ४।१।५४॥

असयोगोपधम् उपसर्जनं यत् स्वाङ्गं तदन्ताद् अदन्ताद् डीप् वा स्यात् (स्त्रियाम्) । केशान् अतिक्रान्ता अतिकेशी, अतिकेशा । चन्द्रमुष्ठी, चन्द्रमुष्ठा । असयोगोपधात् किम् ? सुगुल्फा । उपसर्जनात् किम् ? शिखा ॥

अर्थ—जिस की उपधा में सयोग न हो ऐसा या उपसर्जनसञ्ज्ञक स्वाङ्गवाची शब्द तदन्त अदन्त प्रातिपदिक से स्त्रीत्व की विवक्षा में विकल्प से डीप् प्रत्यय हो ।

व्याख्या—स्वाङ्गात् । ५।१। च इत्यव्ययपदम् । उपसर्जनात् । ५।१। असयोगो-
पधात् । ५।१। डीप् । १।१। (अन्यतो डीप् सूत्र में) । वा इत्यव्ययपदम् । प्रातिपदिकात्, अतः, स्त्रियाम्, प्रत्यय, परश्च—ये सब पूर्वतः अधिकृत हैं । समास—सयोग उप-
धाया यस्य स सयोगोपध, न मयोगोपध—असयोगोपध, बहुव्रीहिसंज्ञकम् तत्पुरप ।
'असयोगोपधात्' और 'उपसर्जनात्' ये दोनों 'स्वाङ्गात्' में अन्वित होते हैं । 'स्वाङ्गात्'
तथा 'अत' ये दोनों 'प्रातिपदिकात्' के विशेषण हैं अन इन में तदन्तविधि हो जाती
है । अर्थ—(असयोगोपधात्) जिस की उपधा में सयोग न हो ऐसा जो (उपसर्जनात्)
उपसर्जनसञ्ज्ञक (स्वाङ्गात्) स्वाङ्गवाची शब्द, तदन्त (अत = अदन्तात्) अदन्त
(प्रातिपदिकात्) प्रातिपदिक से परे (वा) विकल्प से (डीप्) डीप् (प्रत्यय) प्रत्यय
हो जाता है (स्त्रियाम्) स्त्रीत्व की विवक्षा में । उदाहरण यथा—

केशान् अतिक्रान्ता—अतिकेशी, अतिकेशा वा (केशो को जो लाट् चुकी है
अर्थात् केशों में अधिक लम्बी माला आदि, अथवा लम्बे केशों वाली स्त्री आदि) ।
यथा 'केश शम् + अति' इस अलौकिकविग्रह में अत्यादय कान्ताद्यर्थे द्वितीयया
(वा० ५९) इन वार्तिक में प्रादिममास, सुपो धातु-प्रातिपदिकयो (७२१) सूत्र से

मुञ्जुक् तथा प्रथमानिदिष्ट 'अनि' की उपमजनसञ्ज्ञा (६०६) एवम् उपसर्जनम्पूर्वम् (६१०) से उम का पूर्वनिपात कर 'अतिकेश' प्रातिपदिक निष्पन्न हुआ। यहा प्रातिपदिक के अंत म स्वाङ्गवाची शब्द है—केश। इस की उपधा म काई मयोग नहीं किञ्च विग्रह मे नियतविभक्तिक होने से एकविभक्ति चाङ्पूर्वनिपाते (६५१) सूत्रद्वारा यह उपसर्जनसञ्ज्ञक भी है जन तदन्त 'अतिकेश' शब्द से विभक्ति लाने से पूर्व स्त्रीत्व की विवक्षा म प्रकृतसूत्र स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसयोगोपघात् (१२६५) द्वारा विकल्प से डीप् (ई) प्रत्यय हो जाता है। डीप्पक्ष मे भमसञ्ज्ञक अकार का यस्येति च (२३६) मे लोप कर विभक्ति लाने से 'जतिकेशी' तथा टीप् के जभाव म अजाद्यतष्टाप् (१२४६) मे अदन्तलक्षण टाप् हो मवर्णदीर्घ कर विभक्ति लान मे 'अतिकेशा' प्रयोग सिद्ध हो जाता है^१। इस तरह अतिकेशी, जतिकेशा—ये दो प्रयोग सिद्ध हो जाते हैं।

इमोप्रनार—चन्द्र इव मुख यस्या सा चन्द्रमुखी, चन्द्रमुखा वा (चन्द्र के समान सुन्दर मुखवाली स्त्री)। यहा 'चन्द्र मुं + मुख मु' इस अलौकिकविग्रह म अनेकमन्यपदार्थ (६६६) सूत्रद्वारा बहुव्रीहिसमाम म सुंपो का लुक् हो कर 'चन्द्रमुख' प्रातिपदिक निष्पन्न हुआ। इस प्रातिपदिक के अन्त मे स्वाङ्गवाची 'मुख' शब्द विद्यमान है। इस की उपधा म कोई मयाग नहीं। सर्वोपसर्जनो बहुव्रीहि (जयात् बहुव्रीहिसमाम मे मव पद उपसर्जन होत है)^२ इस वचन के अनुसार यह उपमजन भी है अत तदन्त 'चन्द्रमुख' से विभक्ति लान मे पूव स्त्रीत्व की विवक्षा म प्रकृतसूत्र स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसयोगोपघात् (१२६५) द्वारा पालिक डीप् (ई) प्रत्यय हो भमसञ्ज्ञक अकार का लोप कर विभक्ति लाने मे 'चन्द्रमुखी' तथा पक्षान्तर म अदन्तलक्षण टाप् (१२४६), मवर्णदीर्घ एव विभक्ति लाने से 'चन्द्रमुखा' प्रयाग सिद्ध हो जाता है।

असयोगोपघात किम् ? सुगुल्फा।

यदि स्वाङ्गवाची उपसर्जनसञ्ज्ञक शब्द की उपधा म सयाग हागा तो तदन्त प्रातिपदिक मे प्रकृतमूनद्वारा डीप् न होगा बल्कि अजाद्यतष्टाप् (१२४६) से केवल अदन्तलक्षण टाप् ही होगा, कारण कि मून म 'असयोगोपघात्' कहा गया है। यथा—शोभनौ गुल्फौ यस्या सा सुगुल्फा (सुन्दर गुल्फो = गिट्टो वाली)। यहा 'सु + गुल्फ जी' इस अलौकिकविग्रह मे अनेकमन्यपदार्थ (६६६) मे बहुव्रीहिसमास हुआ है।

१ अतिकेश' मे यद्यपि तत्पुन्यममाम है और तत्पुरुषममाम म परवल्लिङ्ग इन्द्र-तत्पुरुषयो (६६२) के अनुसार परवल्लिङ्गता हुआ करती है तथापि यहा प्राप् परवल्लिङ्गता का द्विगु-प्राप्ताङ्गपन्नाङ्गम्पूर्व-नतिसमासेषु प्रतिषेधो वाच्य (वा० ६३) इस वार्तिक मे निषेध हो कर विशेष्यानुसार लिङ्ग होता है। विशेष्य यहा स्त्रीलिङ्ग विवक्षित है अत स्त्रीत्व मे वैकल्पिक डीप् किया गया है।

२ सर्वोपसर्जनो बहुव्रीहि—इम वचन की व्याख्या समामप्रकरण मे (६६६) सूत्र पर कर चुके हैं वही देखें।

ममाम मे मुंङ्नुक् हो स्त्रीत्व की विवक्षा मे अदन्तलक्षण टाप्, मवर्णदीर्घ एव विभक्ति-
कार्य करने पर 'मुगुल्फा' प्रयोग सिद्ध हो जाता है । यहा 'गुल्फ' इस स्वाङ्गवाची
शब्द की उपधा मे 'ल्फ' यह सयोग वर्तमान है अत 'मुगुल्फ' प्रातिपदिक मे
प्रकृतसूत्रद्वारा टोप् नही हुआ । इमीतरह—मुपाश्वर्वा, सुवक्त्रा, सुहस्ता आदियों मे
टोप् का अभाव समझना चाहिये ।^१

उपसर्जनान्त किम् ? शिक्षा^२ ।

स्वाङ्गवाची शब्द यदि उपसर्जन न होगा तो भी तदन्त मे प्रकृतसूत्रद्वारा
पाक्षिक टोप् न होगा । यथा—शिखा (चोटो) । यहा शीङ् स्वप्ने (अदा० आत्मने०)
धातु से शीङो ह्रस्वश्च (उणा० ५ २४) इस उणादिसूत्रद्वारा 'ख' प्रत्यय तथा धातु
को ह्रस्व हो कर 'शिख' प्रातिपदिक निष्पन्न होता है । इस की उपसर्जनमज्ञा नही है
अत स्त्रीत्व की विवक्षा मे प्रकृतसूत्र से पाक्षिक टोप् न हो कर अदन्तलक्षण टाप्,
मवर्णदीर्घ एव विभक्तिकार्य करने पर 'शिखा' पयोग सिद्ध हुआ जाता है ।

इस सूत्र मे 'स्वाङ्ग' मे 'अपना अङ्ग' नही समझना चाहिये । व्याकरण मे
यह पारिभाषिक शब्द माना गया है । इस की त्रिविध परिभाषा वैयाकरणों के
अनुसार इस प्रकार कही जाती है—

(१) अद्रव मूर्तिमत् स्वाङ्ग प्राणित्थमविकारजम् ।

(२) अतत्स्थ तत्र दृष्ट च (३) तेन चेततथायुतम् ॥

स्वाङ्ग का प्रथम लक्षण यथा—

१ ध्यान रहे कि नासिकोदरोष्ठजङ्घादन्तकर्णशृङ्गाच्च (८१ ५५) इस सूत्र के
अनुसार आष्ठ, जङ्घा, दन्त, कर्ण और शृङ्गा इन पाञ्च मयागोपधो के अन्त मे
जाने पर निषेध की प्रवृत्ति नही होती, वैकल्पिक टोप् हो जाता है । यथा—
विम्बोष्ठी-विम्बोष्ठा, दीर्घजङ्घी-दीर्घजङ्घा, ममदन्ती-ममदन्ता, चारवर्णी-
चारवर्णा, तीक्ष्णशृङ्गी-तीक्ष्णशृङ्गा । उपयुक्तसूत्र मे 'च' ग्रहण के कारण अङ्ग,
गान, कण्ठ और पुच्छ इन चार मयोगोपधो का भी ग्रहण किया जाता है—
मृदङ्गी-मृदङ्गा, तनुगात्री-तनुगात्रा, स्निग्धकण्ठी-स्निग्धकण्ठा, कल्याणपुच्छी-
कल्याणपुच्छा ।

२ कुछ लोग यहा 'मुग्निजा' प्रत्युदाहरण पढ़ते हैं । उत का कथन है कि—शोभना
शिखा मुग्निजा । यहा कु-गति प्रादय (६४६) द्वारा प्रादिन्पुरुषममाम मे
प्रथमानिदिष्ट होने मे 'मु' तो उपसर्जन है पर 'शिखा' नहीं, अत इस मे
प्रकृतसूत्रद्वारा टोप् प्रत्यय न होगा । परन्तु उन का यह कथन युक्त प्रतीत नही
होता । कारण यह है कि तत्र 'शिखा' शब्द के अदन्त न होने मे स्वत ही टोप्
प्राप्त न होगा ।

अद्रव मूर्तिमत् स्वाङ्ग प्राणित्यम् अविकारजम् ।^१ अर्थात् जो पदार्थ द्रव (तरल) न हो, मूर्तिमान् (दृश्य) हो, विकार से उत्पन्न न हुआ हो एव प्राणिया में स्थित रहता हो—वह 'स्वाङ्ग' कहाता है । जैसे प्राणित्य केश, मुख, स्तन आदि 'स्वाङ्ग' हैं । अतः तदन्तो से प्रकृतसूत्रद्वारा टीप् तथा पक्ष में टाप् हो जाता है—मुकेशी-मुकेशा, चन्द्रमुखी-चन्द्रमुखा, पीनम्पनी-पीनस्तना आदि ।

'कफ' और 'म्वेद' (पमीना) में उपयुक्त अन्य सब लक्षण घटित होते हैं परन्तु वे द्रव (तरल) हैं अतः वे स्वाङ्ग नहीं, इसलिये तदन्तो में प्रकृत-सूत्रद्वारा टीप् नहीं होता । यथा—मुक्फा (बहुत कफ वाली), मुस्वेदा (बहुत पमीने वाली) । अजाद्यतष्टाप् (१२४६) द्वारा अदन्तलक्षण टाप् ही होता है ।

'ज्ञान' मूर्तिमत् (दृश्य, आकार वाला) नहीं होता अतः ज्ञेय सब लक्षणों के घटित होने पर भी वह 'स्वाङ्ग' नहीं होता । अतः तदन्तः से प्रकृतसूत्रद्वारा टीप् नहीं होता । यथा—मुज्ञाना (शोभन ज्ञान यस्या मा मुज्ञाना, श्रेष्ठ ज्ञान वाली) । अजाद्यतष्टाप् (१२४६) से अदन्तलक्षण टाप् ही होता है ।

सुमुखा शाला (सुन्दर मुख यस्या सा सुमुखा । सुन्दर द्वार वाला घर) । यहाँ का 'मुख' शब्द प्राणित्य नहीं अतः स्वाङ्ग नहीं । इसलिये तदन्तः में यहाँ प्रकृत-सूत्रद्वारा टीप् नहीं हुआ । अजाद्यतष्टाप् (१२४६) से अदन्त-लक्षण टाप् ही हुआ है ।

मुशोफा (बहुत सूजन वाली म्त्री) । यहाँ 'शोक' (शोय, सूजन) में अन्य तो सब लक्षण पाये जाते हैं पर वह अविकारज नहीं, ज्वारीक विकाररूप रोग से उत्पन्न होता है । अतः वह स्वाङ्ग नहीं । इसलिये तदन्तः से प्रकृतसूत्रद्वारा टीप् नहीं होता । अदन्तलक्षण टाप् ही होता है ।

स्वाङ्ग का दूसरा लक्षण यथा—

अतत्स्थ तत्र दृष्ट च (स्वाङ्गम्) ।^२

चाह अब प्राणिया में स्थित न हो परन्तु प्राणियों में देखा अवश्य गया हो वह भी स्वाङ्ग होता है । तात्पर्य यह है कि प्राणियों के अङ्ग यदि अब प्राणिया में विद्यमान न होकर कहीं अन्यत्र पड़े हुए हो तो भावे स्वाङ्ग कहलाते हैं । यथा—मुकेशी मुकेशा का रथ्या (सुन्दर या बहुत केशों वाली गली) । यहाँ के 'केश' अब प्राणिया में स्थित नहीं (गली में विद्यमान हैं) परन्तु वे हैं तो प्राणियों के अङ्ग ही,

१ न विद्यते द्रवो द्रवव (तरलता) यस्मिन्तद्रद्रवम् । मूर्ति = अवयवयोगा-
ज्याम्नीति मूर्तिमत् । प्राणिप् - जन्तुषु विद्यमान प्राणित्यम् । अविकारजम् =
रोगादि-विकाराऽजन्तु च यत् तत् प्रथम स्वाङ्गमित्यर्थः ।

२ तच्छब्देन प्राणी परामृश्यते । अतन्त्यम् = अप्राणित्यम्, तत्र = प्राणिनि दृष्ट यत्
तदपि स्वाङ्गमित्यर्थः ।

अतः इमं द्वितीयं लक्षणं के अनुसारं वे 'स्वाङ्ग' है । इमलिये तदन्त मे प्रवृत्तसूत्रद्वारा डीप् की विकल्प मे प्रवृत्ति हो जाती है ।

स्वाङ्ग का तृतीय लक्षण यथा—

तेन चेत् तत् तयायुतम् ।^१

तात्पर्यं यह है कि जैसे यह स्वाङ्ग प्राणियो मे स्थित होता है यदि उसी प्रकार अन्यत्र मूर्ति आदि मे स्थित हो तो भी उसे 'स्वाङ्ग' समझना चाहिये । यथा— सुस्तनी सुस्तना वा प्रतिमा (सुन्दर स्तनो वाली मूर्ति) । यहा स्तन प्राणिमा की तरह प्राणिसदृश प्रतिमा मे स्थित ह अतः ये भी स्वाङ्ग है । इसलिये तदन्त मे प्रवृत्तसूत्रद्वारा विकल्प से डीप् हो जाता है ।

आचार्य हेमचन्द्र ने अपने शब्दानुशासन मे इन तीना लक्षणो को सुन्दर सरल शब्दो मे इस प्रकार पद्यबद्ध किया है—

अविकारोऽद्रव मूर्तं प्राणिस्थ स्वाङ्गमुच्यते ।

च्युत च प्राणिनस्तत्तद् निभ च प्रतिमादिषु ॥

(बृहद्-हैमवृत्ति २४३८)

अब कुछ स्वाङ्गवाची शब्दा मे डीप् का निषेध करते हैं—

[लघु०] निषेध-सूत्रम्—(१२६६) न क्रोडादि-बह्वच ॥४॥१॥५६॥

क्रोडादेर्बह्वचस्व स्वाङ्गान्न डीप् । कल्याणक्रोडा । आकृतिगणोऽयम् ॥

अर्थ—क्रोडादिगणपठित स्वाङ्गवाचको से तथा बह्वच् (दो से अधिक अचो वाले) स्वाङ्गवाचक शब्दो मे परे स्त्रीत्व की विवक्षा मे डीप् प्रत्यय नहीं होना । क्रोडादि आकृतिगण है ।

व्याख्या—न इत्यव्ययपदम् । क्रोडादि-बह्वच ॥५॥३॥ डीप् ॥१॥१॥ (अचतो डीप् सूत्र से) । स्वाङ्गात् ॥५॥१॥ उपमजनात् ॥५॥१॥ (स्वाङ्गाच्चोपसर्जनसदस्योपेतात् सूत्र से) । स्त्रियाम्, प्रातिपदिकात्, प्रत्यय, परश्च—ये सब अधिकृत है । ममाम—क्रोडा (क्रोडाशब्द) आदिर्येषां ते क्रोडादयः, तद्गुणसविज्ञानवदुपेताः । बह्वचो यस्य स बह्वच्, बहुव्रीहिसमास । क्रोडादयश्च बह्वच् च क्रोडादिवह्वच्, तस्मात्=क्रोडादिवह्वच । समाहारद्वन्द्व । समासान्तविधेरनित्यत्वाद् द्वन्द्वान्च्युदपहान्तात् समाहारे (६६२) इति टच् न । 'स्वाङ्गात्' और 'उपसर्जनात्' ये दोनो 'क्रोडादिवह्वच' के साथ अन्वित होते हैं । 'क्रोडादिवह्वच' यह 'प्रातिपदिकात्' का विशेषण है अतः

१. तेन चेत्तत्तयायुतमिति तृतीय स्वाङ्गलक्षणमिति बोध्यम् । अत्र भाष्ये 'स्वाङ्गम-प्राणिनोऽपि' इति शेष पूरित । तेन=प्राणिस्थेन मन्नाद्यङ्गाकृतिकाव्यवविशेषेण तत्=अप्राणिद्रव्य प्रतिमादि तथा=प्राणिद्रव्यवद् युतम्=सम्बद्ध चेद् भवति तदा तत्=स्तनाद्यङ्गाकृतिकम् अप्राणिनोऽपि स्वाङ्गमित्यर्थं । (बालमनोरमा)

विशेषण मे तदन्तविधि हो जाती है । अथ —(उपमजनात्) उपसर्जनमज्ञक (स्वाङ्गात्) स्वाङ्गवाची (त्रोडादिवह्वच) जो त्रोडादिशब्द जयवा दो स अधिक अचो वाले शब्द, तदन्त (प्रातिपदिकात्) प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीत्व की विवक्षा मे (डीप्) डीप् प्रत्यय (न) नही होता । यह मून स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसयोगोपधात् (१२६५) सूत्रद्वारा प्राप्त डीप् का अपवाद है । इस से डीप् का निषेध हो जाने पर अजाद्यतष्टाप् (१२४६) से अदन्तलक्षण टाप हो जाता है । त्रोडादि स्वाङ्गो का उदाहरण यथा—

कल्याणी त्रोडा (वक्षम्यलम्) यस्या सा = कल्याणत्रोडा अश्वा (शुभ छाती वाली घोड़ी) । 'त्रोडा' शब्द घोड़े के वक्षम्यल का वाचक है और नित्यस्त्रीलिङ्ग है । 'कल्याणी सुं + त्रोडा मुं' इम अनौक्त्विवग्रह मे अनेकमन्यपदार्यो (६६६) मे बहुव्रीहिममास, सुंपो का लुक् (७२१) तथा स्त्रिया पुवद् भाषितपुस्कावनुड समानाधिकरणे म्त्रियामपूरणीप्रियादिषु (६६६) मे 'कल्याणी' का पुवद्भाव के कारण 'कल्याण' कर देने पर 'कल्याणत्रोडा' इम स्थिति मे गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य (६४२) से उपमर्जनह्रस्व हो जाता है—कल्याणत्रोट । अब सुंबुत्पत्ति मे पूवं स्त्रीत्व की विवक्षा मे स्वाङ्गवाची 'त्रोडा' शब्द अन्त मे होने के कारण स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसयोगोपधात् (१२६५) मे पाथिक डीप् प्राप्त होना है परन्तु प्रकृत न त्रोडादिवह्वच (१२६६) सूत्र मे उम का निषेध हो जाता है । तब अजाद्यतष्टाप् (१२४६) से अदन्तलक्षण टाप, अनुब्रजलोप, मवर्णदीर्घ तथा विभक्ति (म्) ला कर उम का ह्रस्वादिनोप (१७६) करने पर 'कल्याण-त्रोडा' प्रयोग सिद्ध हो जाता है ।

इसी प्रकार—कल्याणखुरा, कल्याणनखा, कल्याणगुदा, कल्याणघोणा, सुगला, सुभगा आदि प्रयोगो की सिद्धि समझनी चाहिये ।

त्रोडादि आठुतिगण है । जाकृत्या गप्यते = बुध्यते = परिधीयते इत्याकृति

१ त्रोडादिगण का पहला शब्द 'त्रोड' ह या 'त्राडा' यह विवादग्रस्त है । महाभाष्य मे यह मून व्याख्यात नही । काशिकाकार ने इस पर कुछ प्रकाश नही डाला । न्यामकार जिने द्रबुद्धि एव पदमञ्जरीकार हरदत्तमिश्र इमे 'त्राडा' मानने ह । हरदत्त ने लिखा है—'अश्वानामुर त्राडा, स्त्रीलिङ्गोऽयम् । तत्र बहुव्रीहौ पूवपदस्य पुवद्भाव, उत्तरपदस्योपमजनह्रस्वत्वम् ।' माघवाचार्य धातुवृत्ति म तौदादिक ऋड निमग्जने धातु पर स्पष्ट लिखते हैं—'त्रोड, घट् । त्रोडा अश्वानामुर । टाबन्तोऽयं स्वभावता विशेषविषय । त्रोडादिषु टाबन्तमानस्य पाठाद् भुञ्जान्तरवाचकस्य त्रोडशब्दस्य बहुव्रीहौ स्वाङ्गलक्षणो टीविकल्प एव भवति । कल्याणत्रोडो कल्याणत्रोडा मयूरीति ।' परन्तु गणरत्नमहोदधिकार आचार्य वर्तमान अपने ग्रथ मे इसे त्राट पटते हैं और स्वोपज्ञ-व्याख्या मे स्पष्ट लिखते हैं—'रत्नमतिन्तु कल्याण त्राटा यस्या इति विग्रह दर्शयन् पुलिङ्गता म्यापयति' । इन सब को देखत हुए नत्वबोधिनीकार ज्ञानेन्द्रसरस्वती तथा

गण । आकृति (कार्यदर्शन) से ही इस गण की पहचान होती है । तात्पर्य यह है कि लोक में जहाँ स्वाङ्गवाचिशब्दान्त प्रातिपदिक से स्त्रीत्व की विवक्षा में डीप् की अप्रवृत्ति दिखाई दे और उस अप्रवृत्ति का विधान किसी सूत्र या वार्तिक से न हुआ हो तो वहाँ स्वाङ्गवाची शब्द को ऋडादिगण के अन्तर्गत समझ लेना चाहिये ।

पदमञ्जरीकार हरदत्तमिश्र ने ऋडादिगण में ये शब्द गिनाये हैं—ऋडा बालखुरोला शफो गुड भगगलौ चैति । गणरत्नमहोदधिकार वर्धमान ने इस गण का परिगणन इस प्रकार किया है—

ऋड-बाल-गला भाल-भगोला खुरसयुता ।

शफो भुजो गुड घोणाकरो ऋडादिनामनि ॥

अथ बह्वच् स्वाङ्गवाची का उदाहरण यथा—

शोभने जघने यम्या मा सुजघना (सुन्दर जघना वाली स्त्री) । यहाँ 'सु + जघन औ' इस अलौकिकविग्रह वाले बहुव्रीहिसमाम म सुंभ्लुक् होकर 'सुजघन' बना । 'जघन' शब्द स्वाङ्गवाची है अतः तदन्त 'सुजघन' में स्त्रीत्व की विवक्षा में स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसयोगोपधात् (१२६५) से वैकल्पिक डीप् प्राप्त होता है । परन्तु 'जघन' शब्द दो से अधिक अचो वाला है अतः प्रकृत न ऋडाविबह्वच् (१२६६) सूत्र में डीप् का निषेध हो जाता है । अब अदन्तलभण टाप् कर सवर्णदीघ एव विभक्ति-कार्य करने पर 'सुजघना' प्रयोग सिद्ध हो जाता है ।

इसीप्रकार—पृथुजघना, सुवदना, पद्मवदना, चन्द्रवदना, म्वधरा, महाललाटा, सुनयना, वामलोचना, पादापितेक्षणा आदि प्रयोगों की सिद्धि ममथनी चाहिये । परन्तु नासिका और उदर इन दो स्वाङ्गवाचकों में बहु-अच्-निमित्तक यह निषेध प्रवृत्त नहीं होता, वहाँ नासिकोदरोष्ठजङ्घादन्तकणशृङ्गाच्च (४१५५) सूत्रद्वारा वैकल्पिक डीप् प्रवृत्त हो जाता है—तुङ्गनासिकी-तुङ्गनासिका, कृशोदरी कृशोदरा ।

अब कुछ अन्य स्वाङ्गवाचकों से डीप् के निषेध का विधान करते हैं—

[लघू०] निषेध-सूत्रम्—(१२६७) नखमुखात् सजायाम् ।४।१।५८॥

न डीप् ॥

अर्थ—स्वाङ्गवाची जो 'नख' अथवा 'मुख' शब्द, तदन्त प्रातिपदिक से

बालमनोरमाकार वामुदेवदीक्षित का कहना है कि यहाँ पर तीनों लिङ्गों में उदाहरण दिये जा सकते हैं । 'ऋड' शब्द मोद और छानी का वाचक प्रसिद्ध है । न ना ऋड भुजान्तरम् इत्यमर । अमरकोष में इस पुलिङ्ग नहीं माना गया परन्तु अन्य कोपदारों ने इसे पुलिङ्ग भी माना है । अतः तीनों लिङ्गों में उदाहरण सम्भव है ।

१ इस विषय पर एक टिप्पण पीछे (६२) पृष्ठ पर लिख चुके हैं वह यहाँ पर भी पुनः ध्यातव्य है ।

स्त्रीत्व की विवक्षा में डीप् प्रत्यय नहीं होता यदि सज्ञा अर्थात् किसी का नाम गम्यमान हो तो ।

व्याख्या—नखमुखात् १५।१। सज्ञायाम् ७।१। न इत्यव्ययपदम् (न क्रोडादि-
बह्वच सूत्र से) । डीप् ११।१। (अन्यतो डीप् सूत्र से) । स्वाङ्गात् १५।१।
(स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसयोगोपधात् सूत्र से) । प्रातिपदिकात्, स्त्रियाम्, प्रत्यय,
परश्च—ये सब पूवन अधिकृत हैं । समास—नख च मुख च तयो समाहार
नखमुखम्, तस्मात्=नखमुखात्, समाहारद्वन्द्व । 'स्वाङ्गात्' यह 'नखमुखात्' में
जन्वित होता है । 'नखमुखान्' यह प्रातिपदिकात् का विशेषण है । विशेषण स
तदन्तविधि हो जाती है । अथ—(स्वाङ्गात्) स्वाङ्गवाची जो (नखमुखात्) नख और
मुख शब्द, तदन्त (प्रातिपदिकात्) प्रातिपदिक से परे (डीप्) डीप् प्रत्यय (न) नहीं
होता (स्त्रियाम्) स्त्रीत्व की विवक्षा में (सज्ञायाम्) सज्ञा गम्य हा ता । यह सूत्र
स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसयोगोपधात् (१२६५) द्वारा प्राप्त डीप् का निषेध करता है ।
डीप् के न होने पर अजाद्यतष्टाप् (१२६६) में अदन्तलक्षण टाप् हो जाता है ।

उदाहरण यथा—

शूर्पणखा । यह रावण की बहन राक्षसी की सज्ञा है^१ । सज्ञाएँ यद्यपि
लौकिकविग्रहद्वारा प्रदर्शित नहीं की जा सकती तथापि अज्ञो को ममज्ञाने के लिये
अलौकिकमाग का आश्रय कर किसी तरह विग्रह प्रदर्शित किया जाता है । शूर्पाणीव
नखानि यस्या मा तन्नाम्नी राक्षसी शूर्पणखा (छाज की तरह नाखूनों वाली तन्नाम्नी
राक्षसी, रावण की बहन) । यहा 'शूप नम् + नख जम्' इस अलौकिकविग्रह में
अनेकमध्यपदार्थ (६६६) सूत्र से बहुव्रीहिसमान हो कर मुँपा का लुक् हो जाता है—
शूर्पणख । अब स्त्रीत्व की विवक्षा में स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसयोगोपधात् (१२६५)
सूत्रद्वारा प्राप्त पाश्चिक डीप् का प्रकृत नखमुखात्सज्ञायाम् (१२६७) से निषेध हा
जाता है । पुन अजाद्यतष्टाप् (१२४६) में अदन्तलक्षण टाप्, अनुबन्धलोप, मवणदीर्घ
एव वक्ष्यमाण 'पूर्वपदात्मञ्ज्ञायामग' (१२६८) से नकार को णकार कर विभक्ति
नाने से 'शूर्पणखा' प्रयोग सिद्ध हो जाता है । यदि यह किसी का नाम न होगा तो
यौगिकवृत्ति से 'शूर्पाणीव नखानि यस्या' इस विग्रह में स्वाङ्गाच्चोप० (१२६५)
सूत्र से पाश्चिक डीप् एव टाप् हो कर—'शूर्पणखी-शूर्पणखा' बनेगा । तब वक्ष्यमाण
(१२६८) सूत्र में णन्व भी न होगा, क्योंकि वह सञ्ज्ञा में ही णन्व का विधान
करता है ।

^१ कुवेर ने अपने पिता विश्रवा (विश्रवम्) की सेवा के लिय तीन मुन्दरी
राक्षसकन्याओं को नियुक्त किया था । जिन के नाम थे—पुष्पोत्कटा, राका
तथा मालिनी (देखें महाभारत वन० २७१, ३५) । इन के द्वारा पुष्पोत्कटा
में रावण और कुम्भकर्ण का, राका म छर और शूर्पणखा का तथा मालिनी में
विभीषण का जन्म हुआ (देखें महाभारत वन० २७५, ७-८) ।

दूसरा उदाहरण यथा—

गौरमुखा (गोरे मुख वाली तन्नाम्नी कोई स्त्री) । गौर मुख यस्या सा तन्नाम्नी काचित् स्त्री । यहा 'गौर सुं + मुख सुं' इस विग्रह में भी पूर्ववत् बहुव्रीहि-समास, सुंञ्लुक् तथा स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसयोगोपधात् (१२६५) से प्राप्त पाक्षक डीप् का प्रकृत नखमुखात्सज्ञायाम् (१२६७) सूत्र से निषेध हो कर अदन्तलक्षण टाप् कर विभक्ति लाने से 'गौरमुखा' प्रयाग सिद्ध हो जाता है । यहा भी यदि यज्ञा विवक्षित न होगी तो यौगिकवृत्ति से पाक्षक डीप् हो कर 'गौरमुखी-गौरमुखा' वनेगा ।

सञ्ज्ञा न होने पर प्रकृतसूत्र से निषेध नहीं होता । यथा—ताम्रमुखी कन्या (ताम्बे की तरह लाल मुख वाली कन्या) । यह किमी का नाम नहीं यौगिक शब्द है अतः बहुव्रीहिसमास म सुंञ्लुक् कर म्त्रोन्व की विवक्षा म स्वाङ्गाच्चोपसर्जनाद-सयोगोपधात् (१२६५) से डीप् तथा पक्ष में टाप् करने से 'ताम्रमुखी-ताम्रमुखा' रूप सिद्ध होते हैं । सञ्ज्ञा न होने से प्रकृतसूत्रद्वारा निषेध नहीं होता ।

'शुभं + नखा' के णत्वविधान में समानपद न होने से रेफ में परे अट्कुष्वाड्-नुम्व्यवायेऽपि (१३८) द्वारा नकार को णकार नहीं हो सकता । अतः इस के लिये अग्रिमसूत्र दर्शाने हैं—

[लघु०] विधि-सूत्रम्—(१२६८) पूर्वपदात् सज्ञायामग । ८।४।३॥

पूर्वपदस्थान्निमित्तात्परस्य नस्य ण स्यात् सज्ञाया न त गकारव्यवधाने । शूर्पेणखा । गौरमुखा । सज्ञाया किम ? ताम्रमुखी कन्या ॥

अर्थ—पूर्वपदस्य निमित्त (ऋ, रु, पु) में परे नकार को णकार हा जाता है सञ्ज्ञा में, परन्तु गकार का व्यवधान होने पर इस सूत्र से णत्व नहीं होता ।

व्याख्या—पूर्वपदात् । ५।१। सज्ञायाम् । ७।१। अग । १५।१। रषाम्भ्याम् । ५।२। न । ६।१। ण । १।१। (रषाम्भ्या नो ण समानपदे सूत्र से) । पूर्वपद का अभिप्राय यहा 'पूर्वपदस्य' से है । 'पूर्वपद' कहने से सम्बन्धिशब्द के कारण 'उत्तरपद' को अघ्याहृत कर उस को 'न' से सम्बद्ध कर लिया जाता है । समास—अविद्यमाना गकारो यस्मिन् तद् अगु, तस्माद् अग, बहुव्रीहिसमास । 'अग' यह 'पूर्वपदात्' का विशेषण है । अर्थ—(अग) जिस में गकार विद्यमान नहीं ऐसा जो (पूर्वपदात्) पूर्वपद, उम में स्थित (रषाम्भ्याम्) रेफ या पकार निमित्त से परे (उत्तरपदस्यस्य) उत्तरपदस्य (न) न् के स्थान पर (ण) ण् आदेश हो जाता है (सज्ञायाम्) सज्ञा में । अट्कुष्वाड्नुम्व्यवायेऽपि (१३८) सूत्र में अट्, क्वण, पत्रग आदियों के व्यवधान में भी णत्व का विधान हो जाता है । इसीप्रकार ऋत्वर्णान्नस्य णत्व वाच्यम् (वा० २१) वाचित्वद्वारा रेफ और पकार के माथ ऋवण को भी णत्वविधि में निमित्त समझना चाहिये । समास में अखण्डपद न होने के कारण णत्व प्राप्त न था अतः इस सूत्र के द्वारा विशेष परिस्थितियों में णत्व का विधान किया गया है ।

‘गुर्गु + नखा’ यहा मनाम मे ‘गुर्गु’ पूर्वसद है, इन में गकार विद्यमान नहीं है तथा इस में रेण निमित्त भी मान्य है । अतः ‘नखा’ उभ उतरपदस्य गकार ओ प्रकृत पूर्वपदान् सञ्जायामाग (१२६२) सूत्र मे गकार हा क ‘गुर्गुगखा’ प्रतीत सिद्ध हो जाता है । बीच मे अट् जोर पर्वों का व्यवधान पडता था जो अनुत्त होने मे बाधक नहीं था । ‘गुर्गुगखा’ यह मना है—यह पूर्वसूत्र की व्याख्या मे बताया जा चुका है ।

इसीप्रकार—दुग्धम्, वात्रोगाम गति मजावाचकों में णत्व हो जाता है ।^१

पूर्वपद मे गकार नहीं होता चाहिन गकार के व्यवधान में इस सूत्र की प्रवृत्ति नहीं होती । यथा—रुचान् उरतम सुगयनम् । यहा पञ्चोत्पुदयमनान में षट् के चकार का ओ कू (३०६) मे कुच-ककार हो कर शना जगोष्मे (६७) से जन्व के कारण ककार का गकार हो गया है । यह अन्यविशेष की मता ह । परन्तु गकार के व्यवधान म णत्व नहीं होता ।

प्रत्यय—यदि मना म पूर्वपदस्य निमित्त मे पने प्रकृतसूत्रद्वारा उतरपदस्य गकार का णका हो जाता है ता गृताय ग्माताय पुनर्देवा, स्वर्मानु (राहु), चित्रमानु (अग्नि), नग्वाहन (कुबेर) आदिना म भी प्रकृतसूत्रद्वारा णत्व होगा चाहिन क्याकि ये भी मचाए है ।

उत्तर—इत का धुम्नादिषु म पाठ मान लेन स धुम्नादिषु च (७१७) सूत्रद्वारा णत्व का निषेध हो जाता है । अथवा—मञ्जान् तो उ न च अवस्था में ही है णत्व करने मे ना म मचाए ही नहीं रहेगी, अत इत मे णत्व नहीं होगा । वैनाकि नागभट्ट ने कहा है—णत्वेन चैन सत्ता गम्यत तदाग्य सूत्रस्य प्रवृत्ति । इह तु कृते णत्वे सत्तामङ्गापमेते णत्वम् । (लघुगण्येन्दुगण्डर) ।

[लघु०] विप्रिभ्रत—(१२६६) जानेरन्त्रीविषयादयोपधात्

।६।१।६३।।

जातिवाचि यद् न च स्त्रिया नियतमनोनश्च तत्र स्त्रिया ङीप् स्यात् । नटी । वृषलो । कठी । बहू, वृची । जाने किन् ? मुम्डा । अन्त्री-विषयात् किम् ? बलाका । ययोन्यात् किम् । क्षन्त्रिया ॥

अर्थ—जा जातिवाचक प्रातिपदिक नि-अन्त्रीविद्ग न ह्य तथा उन की उरध्र मे यका भी न ह्य ना उभ म स्त्रीत्व की विषया मे ङीप् प्रत्यय हो ।

व्याख्या—तान् ।१।१। अन्त्रीविषयात् ।१।१। अनन्त्यात् ।१।१। ङीप् ।१।१।

१ द्रुग्वि = द्रुम इव = वृषगावेषे नामिका स्य तन्नामा पुत्रयो द्रुमन । वात्रोव = रज्जुविशेष इव नामिका स्य न वात्रोगमो मृगविशेष इति ह्यदन । उरध्वत् बहुदोही अन् नामिकाया मचाया नमञ्जाम्बुनात् (१६११८) इत्यन्नामासात्यो नामिकायाश्च नमादेग ।

(अन्यतो डीष् सूत्र से) । स्त्रियाम्, प्रातिपदिकात्, अत, प्रत्यय, पररच—ये सब पूर्वत अधिकृत हैं । समास —स्त्री विषयो (नियमेन वाच्या) यस्य तत स्त्रीविषयम्, नित्यस्त्रीलिङ्गमित्यर्थ । न स्त्रीविषयम् अस्त्रीविषयम्, तस्मात् = अस्त्रीविषयात्, बहुव्रीहिगर्भनञ्चत्पुरप । नित्यस्त्रीलिङ्गभिन्नादिति भाव । य (यकार) उपधा यस्य तत् = योपधम्, न योपधम् अयोपधम्, तस्मात् = अयोपधात्, बहुव्रीहिगर्भनञ्चत्पुरप । अत्र जाल्या जातिवाचक प्रातिपदिक गृह्यते, अर्थ कार्याभिम्भवात् । स्वरूपमपि न गृह्यते, अस्त्रीविषयाद् इति वैयर्थ्यापत्ते । अर्थ — (अस्त्रीविषयात्) जो नित्यस्त्रीलिङ्गी नहीं तथा (अयोपधात्) जिस की उपधा में यकार भी नहीं ऐसे (जाते = जातिवाचकात्) जातिवाचक (अत = अदन्तात्) अदन्त (प्रातिपदिकात्) प्रातिपदिक से (स्त्रियाम्) स्त्रीत्व की विवक्षा में (डीष्) डीप् प्रत्यय हो जाता है ।

यहा 'जाति' से पारिभाषिक जातिवाचको का ही ग्रहण अभीष्ट है । 'जाति' की व्याकरणसम्मत परिभाषा इस प्रकार है—

आकृतिग्रहणा जाति, लिङ्गाना च न सर्वभाक् ।

सकृदाख्यातनिर्ग्राह्या, गोत्रञ्च चरणं सह ॥

इस श्लोक में जाति के चार लक्षण दिये गये हैं । तद्यथा—

[१] आकृतिग्रहणा जाति ।

गृह्यतेऽनेन इति ग्रहणम् = व्यञ्जकम्, चरणे ल्युट् । आकृति ग्रहणम् = व्यञ्जक यस्या सा = आकृतिग्रहणा । आकृति से पहचाने जाने वाली 'जाति' होनी है । तात्पर्य यह है कि आकृतिविशेष जिम का व्यञ्जक हाता है उस 'जाति' कहते हैं । जैसे एक कुक्कुट (मुर्गे) या मूकर (मूअर) आदि को देख कर उम में गृहीत अवयवसंस्थान से अन्यत्र सबन कुक्कुट मूकर आदि व्यक्तियों का ज्ञान हो जाता है ता य कुक्कुट, मूकर आदि प्रातिपदिक व्यञ्जितवाचक होत हुए भी जातिवाचक ह । अत स्त्रीत्व की विवक्षा में इन से प्रकृत जातेरस्त्रीविषयादयोपधात् (१२६६) मूत्रद्वारा डीप् प्रत्यय होकर भसज्जक अकार का लोप कर विभक्तिकार्य करने से 'कुक्कुटी' (मुर्गे) 'मूकरा' (मूअर की मादा) आदि सिद्ध हो जाते हैं ।

इसीप्रकार 'तट' शब्द भी जातिवाचक ह । जल के समीप प्रदेश में एक तट का दख कर अन्यत्र सब तटों का ज्ञान हो जाता ह । अत इस जातिवाचक प्रातिपदिन से स्त्रीत्व की विवक्षा में प्रकृतसूत्र से डीप् प्रत्यय हो भसज्जक अकार का लोप कर विभक्तिकार्य करने से 'तटी' प्रयोग सिद्ध हो जाता है ।

[२] लिङ्गाना च न सर्वभाक् सकृदाख्यातनिर्ग्राह्या (जाति) ।

१ या सर्वाणि लिङ्गानि न भजते । एकस्या व्यक्तौ सकृद् आख्यातन = उपदेशेन व्यक्त्यन्तरे उपदेश विनाऽपि या सुग्रहा साऽपि जातिरिति जाल्या लक्षणा-न्तरमित्यर्थ ।

किमी व्यक्ति में एक द्वार निम्न के कथन में अन्य अनेक व्यक्तियों में उस का बोध हो जाये तो उसे भी जानि ममयना चाहिये । परन्तु ऐमा शब्द त्रिलिङ्गी या सर्वलिङ्गी नहीं होना चाहिये । यथा—किसी को जब वृषल (शूद्र) कह दिया जाये तो उस के पिना, पिनामह, पुत्र, भ्राना आदि का भी वृषलत्व स्वयं विदित हो जाना है । इस तरह यह 'वृषल प्रातिपदिक जानिवाचक' हुआ । इस में स्त्रीत्व की विवक्षा में प्रकृत जातेरस्त्रीविषयादयोपधात् (१२६६) सूत्र में डीप् प्रत्यय हो जकार का लोप कर विभक्ति लाने में 'वर्षली' (शूद्रजाति की स्त्री) प्रयोग मिद्ध हो जाना है । इस द्वितीय लक्षण में लिङ्गाना च न सर्वभाक् इमलिये कहा है कि शुक्ल आदि त्रिलिङ्ग प्रातिपदिकों में सङ्घादाख्यातनिर्वाह्या के अनुसार स्त्रीत्व की विवक्षा में डीप् प्रत्यय न हो जाये । यथा—शुक्ला (बलाका) । यथा शुक्लशब्द में अदन्तलक्षण टाप् ही होना है, जानिलक्षण डीप् नहीं ।

इस द्वितीय लक्षण के अनुसार 'ब्राह्मण' शब्द भी जातिवाचक है, इस स भी प्रकृतसूत्रद्वारा डीप् प्राप्त होता है, परन्तु शाङ्गत्व आदि गण में इस का पाठ होने के कारण शाङ्गखाद्यो डीन् (१२७५) सूत्र में डीप् का बाध कर डीन् प्रत्यय हो जाता है—ब्राह्मणी । 'शूद्र' शब्द भी इसी तरह जानिवाचक है परन्तु अजादिगण में पाठ के कारण इस से प्रकृतसूत्रद्वारा डीप् नहीं होना, अजाद्यतप्याप् (१२४६) से गप् हो मघण्दीघ कर विभक्ति लाने में 'शूद्रा' (शूद्रजाति की औरत) प्रयोग मिद्ध हो जाना है^३ । क्षन्त्रियशब्द के विषय में आगे मूल में ही कहेंगे ।

102341

१ शुक्ल आदि शब्दों का तीना लिङ्गों में प्रयोग देखा जाना है । यथा—शुक्ला हस, शुक्ला बलाका शुक्ल वस्त्रम् । अत एव जमरकाप में कहा गया है—

गुणे शुक्लादप्य पुमि गुणिलिङ्गास्तु तद्वति ।

२ डीप् जोर डीन् प्रत्ययों के करने में म्वर का ही अन्तर पडना है । डीप्प्रत्ययान्त जन्तोदात्त तथा डीन्प्रत्ययान्त जाद्युदात्त होने हैं ।

३ अजादिगण में यह गणमून पडा गया है—शूद्रा चाऽमहन्पूर्वा जाति । जयान् यदि शूद्रशब्द जानिवाचक हो और उस से पूर्व 'महन्' शब्द भी न हो तो स्त्रीत्व की विवक्षा में उस में टाप् प्रत्यय होना है—शूद्रा (शूद्रजाति की औरत) । 'महन्' पूर्व में हा ना टाप् नहीं आता, जानिलक्षण डीप् ही होना है—महास्त्री (अहोर जाति की औरत) । पुषाग में ता पुषोणादाख्यायाम् (१२६१) का प्रयोग होगा ही—शूद्रस्य स्त्री शूद्री, महाशूद्रस्य स्त्री महाशूद्री, कहा है—

शूद्री शूद्रस्य भार्या स्याच्छूद्रा तज्जातिवाच ।

आभीरी तु महाशूद्री जातिपुषोणयोः



[३-४] गोत्र च चरणं सह (जाति) ।

गोत्र अर्थात् अपत्यप्रत्ययान्त प्रातिपदिक तथा चरणवाची (वेदशाखाध्यतृवाचक) प्रातिपदिक भी जाति-वाचक होते हैं। यथा—उपगोरपत्यम् औपगव (उपगु की सन्तान) । यहा 'उपगु डस्' से अपत्य अर्थ में तस्याऽपत्यम् (१००४) सूत्र में अण् तद्धित प्रत्यय ला कर सुंनुक्, आदिवृद्धि, ओर्गुण (१००५) में भगज्ज उच्चारण को ओकार गुण तथा एचोऽपवायाव (२२) में ओकार को अच् आदेश करने पर 'औपगव' प्रातिपदिक निष्पन्न होता है। अपत्यप्रत्ययान्त होने से इस तृतीयलक्षणानुसार यह जातिवाचक है। अतः स्त्रीत्व की विवक्षा में इस से परे प्रकृतसूत्रद्वारा डीप् प्रत्यय आ कर भसज्जक अकार का लोप कर विभक्ति लाने में 'औपगवी' (उपगु की लडकी) प्रयोग सिद्ध हो जाता है। यहा यह विशेष ध्यातव्य है कि अण्प्रत्ययान्त होने में 'औपगव' से स्त्रीत्व में टिड्ढाणञ् (१०५१) सूत्रद्वारा डीप् प्राप्त था, उस का यह अपवाद है।

चरणवाचियों का उदाहरण यथा—

कठेन प्रोक्तमधीते इति कठी (कठऋपिद्वाग प्राक्त वेदशाखा का पठन वाली स्त्री) । सर्वप्रथम ऋपिवाचक 'कठ' में तेन प्रोक्तम् (११०८) के अर्थ में कलापि-वंशम्पायनान्तेवासिम्यसच (४३१०४)^२ सूत्र में णिर्नि प्रत्यय हो कर कठचरकाल्लुक् (४३१०७)^३ से उस का लुक् हो जाता है। 'कठ' अर्थात् कठऋपिप्रोक्त वेदशाखा। पुनः इस 'कठ' से तदधीते (उसे पढ़ता है) के अर्थ में तदधीते तद्वेद (१०५३) द्वारा अण् प्रत्यय हो कर उस का भी प्रोक्ताल्लुक् (४२६३)^४ से लुक् हो जाता है। अब 'कठ' शब्द का अर्थ हो गया—कठऋपिप्रोक्त वेदशाखा का अध्ययन करने वाला। गोत्र च चरणं सह के अनुसार 'कठ' यह जातिवाचक प्रातिपदिक है। अतः स्त्रीत्व की विवक्षा में जातेरस्त्रीविषयादयोपधात् (१२६६) इस प्रकृतसूत्रद्वारा इस में डीप् प्रत्यय हो भसज्जक अकार का लोप कर विभक्ति लाने से 'कठी' (कठऋपिप्रोक्त वेदशाखा का अध्ययन करने वाली स्त्री) प्रयोग सिद्ध हो जाता है।

१ चरणं सह गोत्र जातिरित्यर्थः । गोत्र चरण च जातित्व सभन इति भावः । गोत्रशब्देनेह अपत्यमान विवक्षित न तु अपत्य पौत्रप्रभृति गोत्रम् (१००६) इति पारिभाषिकम् । गोत्रस्य आकृतिग्रहणत्वाऽभावात् सर्वलिङ्गत्वाच्च पूर्वलक्षणा भ्याम् असग्रहात् पृथगुपादानम् ।

२ कलापिन्, ऋ शिष्यवाची तथा वंशम्पायन के शिष्यवाची तृतीयासमय प्रातिपदिका से प्रोक्तार्थे में णिर्नि प्रत्यय होता है। 'कठ' को वंशम्पायन का शिष्य माना जाता है।

३ कठ और चरक प्रातिपदिकों से परे प्रोक्त प्रत्यय का लुक् हो जाता है।

४ प्रोक्तप्रत्ययान्त द्वितीयासमर्थ प्रातिपदिक से अध्येतृ-वेदिन् अर्थ में उत्पन्न प्रत्यय का लुक् हो जाता है।

चरणवाची का दूसरा उदाहरण यथा—

बहुव श्लुचो (अभ्येतव्या) यस्या मा बहुवृचो (बहुव श्लुचाया अर्थान् ऋग्वेद का अध्ययन करने वाली स्त्री) । बहु जम् - ऋच् नम् इम बहुव्रीहिमास म मुपो का तुक् हो कर ऋक्पूरब्धू पथामानक्षे (९६३) मूनम्य अनुचबहुवृचो अभ्येतव्येव (वा०) इम इष्टि के अनुसार समामान्न 'अ प्रत्यय करन म बहुवृच' यह अदन्त प्रातिपदिक निष्पन्न होता है^१ । चरणवाचक होन म यह जानिवाचक ह। जत स्त्रीत्व की विवक्षा मे जातेरस्त्रीविषयादयोपधात् (१२६६) इम प्रकृतमूत्र म इस म टीप् प्रत्यय हो कर भसञ्जक अकार का लाप एव विभक्तिकार्य करन पर बहुवृचो प्रयोग मिद्ध हो जाता ह।^२

जाते किम् ' मुण्डा ।

प्रकृत मून द्वारा जानिवाचक म ही टीप् का विज्ञान किया गया है अन्य म नहीं । यथा—मुण्डा (मिर् मुण्डी ओग्न) । मुण्ड शब्द जानिवाचक नहीं क्पाकि यहा जाहृति से जानि की अभिव्यक्ति नहीं होती । मिर् के मुण्डान या न मुण्डान म जाहृति एक भी रहती है । जानि का द्वितीय लक्षण भी इम मे घटित नहीं हाता क्योंकि यह सर्वलिङ्गी है । अपत्यप्रत्ययान्त एव चरणवाचो न हात म गोत्र च चरणे सह के अनुसार भी यह जानिवाची नहीं । जत प्रकृतमूत्रद्वारा इम म जानिलक्षण टीप् न हा कर अजाद्यतष्टाप् (१२६६) म अदन्त-लक्षण टाप् हो मवणदीष कर विभक्तिकार्य करन म 'मुण्डा' प्रयोग मिद्ध हा जाता है ।

अस्त्रीविषयान् किम् ? बलाका ।

प्रकृतमून म अस्त्रीविषयान् कहा गया है । अयान् जानिवाचक शब्द केवल स्त्रीलिङ्ग नहीं होना चाहिन । यथा—बलाका (बकविशेष)^३ । यह शब्द मदा स्त्रीलिङ्ग मे ही प्रयुक्त होता ह जत प्रकृतमून म टीप् न हो कर अजाद्यतष्टाप् (१२६६) म अदन्तलक्षण टाप् ही होना ह । इसीप्रकार—मभिका पिपीलिका यूका (जू), खट्वा (खाट) आदि मे जानना चाहिये ।

१ इम प्रयाग की विस्तृत मिद्धि क लिय इम व्याख्या के चतुसभागम्य (९६३) मून की व्याख्या का अवलोकन करे ।

२ कठी, बहुवृचो आदि प्रयागो से यही मिद्ध होना ह कि प्राचीनकाल म स्त्रिया का भी पुग्पो की तरह वेद के अध्ययन अध्यापन का पुरा पुरा अधिकार प्राप्त था, बाद मे यह अधिकार किमी तरह उन म छीन लिया गया । अत एव यमम्मृति (?) म कहा है—

पुरा कल्पे तु नारोगा मौञ्जोवचनमिष्यते ।

अध्यापन च वेदाना सावित्रीवचन तथा ॥

३ बलाका वितकण्डिका—इत्यमर ।

अयोपधात् किम् ? क्षत्रिया ।

जातिवाचक प्रातिपदिक की उपधा में यकार नहीं होना चाहिये अन्यथा प्रकृतसूत्र से डीप् न होगा । यथा—क्षत्रिया (क्षत्रियजाति की औरत) । क्षत्रियशब्द उपर्युक्त द्वितीय जातिलक्षण के अनुसार जातिवाचक है परन्तु इस की उपधा में यकार है अतः प्रकृतसूत्र में डीप् नहीं होगा । अजाद्यतष्टाप् (१२४६) से टाप् हो कर रूप सिद्ध हो जाता है । इसीप्रकार—वैश्या (वैश्यजाति की स्त्री), इन्ध्या (हथिनी) आदि में जानना चाहिये ।

यहां यह भी ध्यातव्य है कि 'अत' की अनुवृत्ति के कारण इस सूत्र की प्रवृत्ति जातिवाचक अदन्त प्रातिपदिका तक ही सीमित है । अत एव आखु, तित्तिरि, गो इत्यादियों में जातिलक्षण डीप नहीं होता ।

अब कुछ यकारोपध प्रातिपदिकों से भी जातिलक्षण टाप् का विधान करने के लिये अग्रिमवार्तिक प्रवृत्त होता है—

[लघु०] वा०—(१११) योपधप्रतिषेधे ह्य-गवय-मुकय-मनुष्य-
मत्स्यानामप्रतिषेधे ॥

हयी । गवयी । मुकयी । हलस्तद्धितस्य (१२५३) इति यलोप—
मनुषी ॥

अर्थ—यकारोपध जातिवाचका से पूर्वसूत्रद्वारा जो टाप् का निषेध किया गया है वह निषेध ह्य, गवय, मुकय, मनुष्य और मत्स्य इन पांच शब्दा में प्रवृत्त नहीं होता ।

व्याख्या—प्रतिषेध का प्रतिषेध विज्ञान हुआ करता है । ता इस प्रकार ह्य आदि पांच प्रातिपदिकों से पूर्वसूत्रद्वारा जातिलक्षण डीप् हो जाता है । उदाहरण यथा—ह्य (घोडा)—हयी (घोड़ी) । गवय (नीलगाय)—गवयी (नीलगाय की मादा) । मुकय (खच्चर)—मुकयी (खच्चरी) । ये सब जाति के प्रथमलक्षण (आकृतिग्रहणा जाति) के अनुसार जातिवाचक हैं । इस प्रकृतवार्तिक की सहायता से जातेरस्त्रीविषयादयोपधात् (१२६६) इस पूर्वसूत्रद्वारा डीप् हो कर भमञ्जक अकार का लोप कर विभक्तिकार्य करने में उक्त रूप सिद्ध हो जाते हैं ।

मनोज्ञातावञ्च्यतो षुक् च (४११६१) सूत्रद्वारा मनुशब्द से तद्धित यत् प्रत्यय कर प्रकृति को षुक् का आगम करने से 'मनुष्य' शब्द निष्पन्न होता है । यह भी जातिवाचक है । इस का भी प्रकृतवार्तिक में उल्लेख आया है । अतः यापध होते हुए भी स्त्रीत्व की विवक्षा में इस से जातिलक्षण डीप् हो कर भसञ्जक अकार का लोप

१ ह्य, गवय, मुकय, मनुष्य और मत्स्य—इन शब्दों का परिगणन गौरादिगण में भी किया गया है । परन्तु प्रकृतवार्तिक के कारण इन का गणगत पाठ अप्रामाणिक प्रतीत होता है । यदि गणगत पाठ को प्रामाणिक माने तो इस वार्तिक की आवश्यकता नहीं रहती ।

करने से 'मनुष्य् + ई' हुआ। अब हलस्तद्धितस्य (१२५३) से उपधाभूत यकार का लाप कर विभक्ति लाने से 'मनुषी' (मनुष्यजाति की स्त्री) प्रयोग सिद्ध हो जाता है।

'मत्स्य' शब्द भी जातिवाचक है^१। इस से भी प्रकृत योपधप्रतिषेधे ह्य-गव्य-मुक्यमनुष्यमत्स्यानामप्रतिषेध (वा० १११) वार्तिक की सहायता से जातेरस्त्री-विषयादयोपधात् (१२६६) सूत्रद्वारा डीप् प्रत्यय हो कर भमञ्जक अकार का यस्पेति च (२३६) से लोप करने पर 'मत्स्य् + ई' हुआ। अब यहा उपधाभूत यकार तो है परन्तु वह तद्धित का अवयव नहीं अतः हलस्तद्धितस्य (१२५३) के प्राप्त न होने पर अग्रिमवार्तिक से यकार के लोप का विधान करते हैं—

[लघु०] वा०—(११२) मत्स्यस्य ड्याम् ॥

यलोप । मत्सी ॥

अर्थ—डी परे होने पर ही मत्स्यशब्द के उपधाभूत यकार का लाप हो।

व्याख्या—यह वार्तिक सूर्य-तिष्याजस्त्य-मत्स्याना य उपधाया (६०१४६) सूत्र पर पढा गया है। उक्त सूत्र का अर्थ यह है—सूर्य, तिष्य, जगस्त्य और मत्स्य शब्दों के उपधाभूत भमञ्जक यकार का लोप हो जाता है तद्धित या ईकार परे हो तो। इस के अनुसार डी (ई) या तद्धित परे होने पर 'मत्स्य' के उपधाभूत यकार का लोप प्राप्त था ही पुन सिद्धे सत्यारम्भो नियमार्थ इम न्याय के अनुसार इम वार्तिक का नियमार्थ समझना चाहिये। मत्स्य के उपधाभूत भमञ्जक यकार का लोप केवल डी (ई) परे होने पर ही होना है अन्यत्र नहीं—यह यहा नियम फलित होना है। इस नियम के कारण तद्धित परे हान पर मत्स्य के उपधाभूत भमञ्जक यकार का लोप न

१ मनोजातिवन्ध्यतौ षुक् च (४११६१)। अर्थ—यदि समुदाय से जाति गम्यमान हो तो मनुशब्द से तद्धितसञ्ज्ञक अञ् तथा यत् प्रत्यय होते हैं किञ्च इन प्रत्ययों के सन्नियोग म मनुशब्द को षुक् का आगम भी हो जाता है। अञ् करण पर आदिवृद्धि हो कर 'मानुष', तथा यत् करने पर 'मनुष्य' प्रयोग सिद्ध होता है। मनुष्य का स्त्रीलिङ्ग 'मनुषी' तथा मानुष का स्त्रीलिङ्ग 'मानुषी' बनेगा। मानुषी का प्रयोग यथा—

मानुषीभ्य कथ नु स्यादस्य रूपस्य सम्भव ।

न प्रभातरल ज्योतिश्चेति वमुधातलात् ॥ (शाकुन्तल १२८)

स्त्रीणामशिक्षितपटुत्वममानुषीणा

सन्दृश्यते, किमुत या परिवोधवत्य ।

प्रागन्तरिक्षगमनात् स्वमपत्यजात-

मन्यंदिजे परभृता किल पोषयन्ति ॥ (शाकुन्तल ५२३)

२ मद् धातु से औणादिक (उणा० ४२) स्पन् प्रत्यय करने से 'मत्स्य' शब्द सिद्ध होता है। इसे तद्धितान्त समझने की भूल नहीं करनी चाहिये।

होगा । इम से—मत्स्यस्य इदम् मात्स्य मासम्—इत्यादियों मे तस्येदम् (११०६) से हुए अण् तद्धित के परे रहते यकार का लोप नहीं होता ।

प्रकृत मे 'मत्स्य + ई' इम स्थिति मे मत्स्यस्य डघाम् (वा० ११२) इस वार्तिक के नियमानुसार डी के परे रहते मत्स्यशब्द के उपघाम्भूत यकार का लोप कर विभक्ति-कार्य करने मे 'मत्सी' (माहा मच्छली) प्रयोग सिद्ध हो जाता है ।

जब एक अन्य सूत्र के द्वारा जातिलक्षण डीप् का विधान करते हैं—

[लघु०] विधि-सूत्रम्—(१२७०) इतो मनुष्यजाते १४।१।६५॥
डीप् । दाक्षी ॥

अर्थ - मनुष्यजातिवाचक ह्रस्व-इकारान्त प्रातिपदिक से परे डीप् प्रत्यय हो जाता है स्त्रीत्व की विवक्षा मे ।

व्याख्या—इत १४।१। मनुष्यजाते १४।१। डीप् १४।१। (अन्यतो डीप् सूत्र से) । प्रातिपदिकात्, स्त्रियाम्, प्रत्यय, परश्च—ये सब पूर्वत अधिभूत हैं । 'इत्' यह 'प्रातिपदिकात्' का विशेषण है । विशेषण से तदन्तविधि हा कर 'इदन्तात् प्रातिपदिकात्' बन जाता है । अर्थ—(मनुष्यजाते) मनुष्यजातिवाचक (इत = इदन्तात्) ह्रस्व इकारान्त (प्रातिपदिकात्) प्रातिपदिक मे (स्त्रियाम्) स्त्रीत्व की विवक्षा मे (डीप् प्रत्यय) डीप् प्रत्यय हो जाता है । जातेरस्त्रीविषयपादयोपघाम् (१२६६) सूत्र मे 'अत' के अनुवर्तन के कारण उस की प्रवृत्ति अदन्त जातिवाचको तक ही सीमित ह । यहा पुन मनुष्यजाति-वाचक इदन्त प्रातिपदिको से डीप् का विधान किया जा रहा है ।

उदाहरण यथा—

दक्षस्यापत्य स्त्री दाक्षी (दक्ष की मन्तति कन्या) । यहा 'दक्ष' प्रातिपदिक से तस्यापत्यम् (१००४) के अर्थ मे अत इञ् (१०१४) सूत्र से तद्धितसञ्जक् इञ् (इ) प्रत्यय हो कर आदिवृद्धि एव यस्येति च (२३६) द्वारा भसञ्जक् अकार का लोप करन पर 'दाक्षि' यह ह्रस्व-इकारान्त प्रातिपदिक निष्पन्न होता है । अपत्यप्रत्ययान्त होने से गोत्र च चरण सह के लक्षणानुसार यह जातिवाचक है । मनुष्यजाति का वाचक होने के कारण स्त्रीत्वविवक्षा मे प्रकृत इतो मनुष्यजाते (१२७०) सूत्रद्वारा इस मे डीप् प्रत्यय हो भसञ्जक् इकार का यस्येति च (२३६) मे लोप कर विभक्तिकार्य करने मे 'दाक्षी' प्रयोग सिद्ध हो जाता है ।

इसीप्रकार—प्लक्षस्यापत्य स्त्री प्लाक्षी (प्लक्ष की लक्ष्मी) आदि प्रयागा की सिद्धि जाननी चाहिये ।

१ महाभाष्य आदि कई प्राचीन ग्रन्थो मे अष्टाध्यायी के प्रणेता आचार्य पाणिनि को दाक्षीपुत्र कहा गया है । यथा—

सर्वे सर्वपदादेशा दाक्षीपुत्रस्य पाणिने । (महाभाष्य ११२०)

इस से स्पष्ट भासित होना है कि आचार्यवर की माता दक्षकुल की कन्या थी ।

अवन्ति और कुन्ति—ये शब्द जनपदवाची भी हैं और क्षत्रियवाची भी । अवन्तयो नाम जनपदा, अवन्तयो नाम क्षत्रिया । क्षत्रियवाची अवन्ति और कुन्ति इन इदन्त शब्दों से अपत्यार्थ में बृद्धत्कोसलाजादाञ्ज्यङ् (४१ १६६) सूत्र में ञ्यङ् प्रत्यय हो स्त्रीत्व की विवक्षा में स्त्रियामवन्तिकुन्तिकुह्म्यरश्च (४१ १७४)^२ से उस प्रत्यय का लुक् हो जाता है । परन्तु प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम् (१६०) में अवन्ति और कुन्ति को अपत्यप्रत्ययान्त मान गोत्र च चरण सह के अनुसार उमें जातिवाचक (मनुष्यजातिवाचक) स्वीकार कर स्त्रीत्व की विवक्षा में प्रकृत इतो मनुष्यजाने (१२७०) सूत्र से ङीप्, भग्नञ्क इकार का लोप तथा विभक्तिवाचक करण म 'अवन्ती' (अवन्तरपत्य स्त्री, अवन्ती की लडकी), कुन्ती (कुन्तेरपत्य स्त्री, कुन्ति की लडकी) प्रयोग मिट्ट हो जाते हैं ।

पीठे में 'जाते' की अनुवृत्ति जाने पर भी इस सूत्र में जाते' का पुन उल्लेख यह व्यक्त करता है कि आचार्य मनुष्यजातिवाचक से सत्रथा ङीप् चाहते हैं । इस में इदन्त मनुष्यजातिवाचक शब्द यदि यकारोपध भी हो तो भी उमें से ङीप् कर लिया जाता है । यथा—उदमेयथाऽपत्य स्त्री जौदमेयी (उदमेय की लडकी) । 'उदमेय' से जपत्यार्थ म तस्यापत्यम् (१००४) में इङ् प्रत्यय, आदि अच् को बृद्धि एव भग्नञ्क अकार का लोप कर 'जौदमेयि' प्रातिपदिक निष्पन्न होता है । अब स्त्रीत्व की विवक्षा में यकारोपध होने हुए भी इस में प्रकृतसूत्रद्वारा ङीप् प्रत्यय हो भग्नञ्क इकार का यस्थेति च (२३६) में लाप कर विभक्तिवाचक करणे में 'जौदमेयी' प्रयोग मिट्ट हा जाता है ।

इदन्त प्रातिपदिक यदि मनुष्य में भिन्न अन्य जाति का वाचक होगा तो उमें म प्रकृतसूत्रद्वारा ङीप् न होगा । यथा—निर्त्तिरि (नीतर की माहा) । यह इदन्त जातिवाचक तो है परन्तु मनुष्यजाति का वाचक नहीं अतः इस में ङीप् नहीं होगा ।

अब ऊँङ् प्रत्यय का विधान करने हैं—

[लघु०] विधि सूत्रम्—(१२७१) ऊँङुत १४।१।६६॥

उदन्ताद् अयोपधाद् मनुष्यजातिवाचिन स्त्रियामृङ् म्यात् । कुम् । अयोपधात् किम् ? अश्वयं ब्राह्मिणी ॥

अर्थ—जिस की उपधा म यकार न हो ऐम मनुष्यजातिवाची उदन्त प्रातिपदिक से स्त्रीत्व की विवक्षा में ऊँङ् प्रत्यय हो ।

१ अर्थ—क्षत्रियाभिधायी जनपदवाची बृद्धमज्ञको, इदन्ता, तथा कौमल और अजाद प्रातिपदिकों में अपत्य जय म नद्वितमज्ञक ञ्यङ् प्रत्यय हो । उदाहरण यथा—(बृद्धसज्ञको म) जाम्बष्ठानामपत्यम् जाम्बष्ठथ मौर्वीराणाम् अपत्य मौर्वीय । (इदन्तो म) आवन्त्य, कौन्त्य । कौमल्य । अजाद्य ।

२ अर्थ—क्षत्रियाभिधायी जनपदवाची जो अवन्ति, कुन्ति तथा कुह् शब्द उन से उत्पन्न जो तद्वाज प्रत्यय उन का भी स्त्रीत्व की विवक्षा में लुक् हो जाता है ।

व्याख्या—ऊङ् १११। उन १५१। मनुष्यजाते १५१। (इत्तो मनुष्यजाते सूत्र मे) । अयोपधात् १५१। (जातेरस्त्रीविपद्यादयोपधात् सूत्र मे) । स्त्रियाम्, प्रातिपदिकात्, प्रत्यय, परश्च—ये मव पूर्वत अधिभूत हैं । 'उत' यह 'प्रातिपदिकात्' का विशेषण है । विशेषण से तदन्तविधि हो कर 'उदन्तात् प्रातिपदिकात्' बन जाता है । अर्थ—(अयोपधात्) जिस की उपधा में यकार नहीं ऐसे (मनुष्यजाते) मनुष्यजानिवाचक (उत = उदन्तात्) उदन्त (प्रातिपदिकात्) प्रातिपदिक से परे (ऊङ् प्रत्यय) ऊङ् प्रत्यय हो जाता है (स्त्रियाम्) स्त्रीत्व की विवक्षा में । ऊङ् प्रत्यय के डकार अनुबन्ध की इत्मञ्जा एव लोप करने पर 'ऊ' मात्र शेष रहता है । ऊङ् में टकार अनुबन्ध नोद्धात्वो (६१ १६६) इस स्वरविधायकसूत्र में ऊङ् के ग्रहण के लिये है अन्यथा कोई सा भी उकार गृहीत हो जाता । ऊङ् में दीर्घ उकार का ग्रहण इधशुरम्य स्त्री—'श्वधू' यहा दीर्घ के श्रवण के लिये किया गया है ।

उदाहरण यथा—

कुरोरपत्य स्त्री—कुरु (कुर की लटकी) । कुरु' शब्द से तस्याऽपत्यम् (१००४) के अर्थ में कुरु-नादिभ्यो ण्य (१०२६) से तद्धितमञ्जक ण्य प्रत्यय हो कर स्त्रियामवति-कुन्ति-कुरुम्यश्च (४१ १७४) में उम का लुक् हो जाता है । इस प्रकार प्रत्ययलक्षणद्वारा अपत्यप्रत्ययान्त होने से गोत्र च चरण सह के अनुसार यह जातिमञ्जक ठहरता है । पुन इस से स्त्रीत्व की विवक्षा में प्रकृत ऊङुत (१२७१) सूत्र में ऊङ् प्रत्यय हो कर मवर्णदीर्घ करन में कुरु' शब्द निष्पन्न हो जाता है । अब इस की प्रातिपदिकमञ्जा करनी है जिम के कारण इस स सु जादि प्रत्ययो की उत्पत्ति हो सके । परन्तु कृदन्त तद्धितान्त या समास इन म से कोई सा भी न होने के कारण इस की कृत्तद्धित-समासाश्च (११७) में प्रातिपदिकसञ्जा कैसे हो क्योंकि यह ऊङ्प्रत्ययान्त है, ऊङ्प्रत्यय अष्टाध्यायी में तद्धिता (६१६) अधिकार के आरम्भ हान म पहले पढा गया है ? इस समस्या के समाधान के लिये यहा एक परिभाषा का आश्रयण किया जाता है—प्राति-पदिकग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्यापि ग्रहणम् (५०) अर्थात् प्रातिपदिक के ग्रहण म लिङ्ग-विशिष्ट (लिङ्गयुक्त) प्रातिपदिक का भी ग्रहण हो जाता है । इस में ऊङ्प्रत्ययान्त का भी ग्रहण हो कर 'कुरु' की प्रातिपदिकमञ्जा सिद्ध हो जाती है । तब प्रथमा के एव वचन की विवक्षा म 'सुं' प्रत्यय ला कर सकार का सप्तजुषो है (१०५) में रैत्व तथा रेफ को अवसान म खरवसानयोर्विसर्जनीय (६३) में विसर्ग आदेश करने पर 'कुरु' प्रयोग सिद्ध हो जाता है । ध्यान रह कि यहा डी अथवा आप् न होने म हल्ड्यादिसूत्र (१७६) द्वारा सकार का लोप नहीं होता ।

अयोपधात् किम् ? अध्वर्युर्ब्राह्मणी ।

यदि उपधा म यकार होगा तो ऊङुत (१२७१) सूत्र की प्रवृत्ति न होगी । यथा—अध्वर्यु (ब्राह्मणी) । यजुर्वेद का अध्ययन करने वाली ब्राह्मणी । यहा चरण

१ अध्वर्युशब्दोऽत्र अध्वर्युशाखाध्यायिनीपर अध्वर्युशाखाध्यायिविशोदूवा वा, तद्व्य-त्वात् ताच्छब्दार्थम् ।

वाची होने में 'अध्वर्यु' जानिवाचक है। परन्तु उपमा में यकार होने के कारण स्त्रीत्व की विवक्षा में इस में प्रकृतसूत्रद्वारा ऊर्ध्व नहीं होता स्त्रीनिङ्ग में भी पुनिङ्ग की तरह 'अध्वर्यु' रूप ही रहता है।

अत्र अत्रिमसूत्रद्वारा पङ्गुशब्द में स्त्रीत्व में ऊर्ध्व का विधान करते हैं—

[लघु०] विधि-सूत्रम्—(१२७२) पङ्गोश्च ।४।१।६८॥

पङ्गु ॥

अर्थ—पङ्गुप्रातिपदिक में स्त्रीत्व की विवक्षा में ऊर्ध्व प्रत्यय है।

व्याख्या—पङ्गो ।१।१। च इत्यन्यन्तदम् । ऊर्ध्व ।१।१। (ऊर्ध्व सूत्र में) ।

प्रातिपदिकान्, स्त्रियान्, प्रत्यय, पङ्गश्च—य सब पूर्वतः ज्ञात हैं। अथ—(पङ्गा प्रातिपदिकान्) पङ्गु प्रातिपदिक में परे (ऊर्ध्व प्रत्यय) ऊर्ध्व प्रत्यय है (स्त्रियान्) स्त्रीत्व की विवक्षा में।

पङ्गुशब्द गुणवाचक है जानिवाचक नहीं अतः स्त्रीत्व की विवक्षा में इस में ऊर्ध्व (१२७१) सूत्र द्वारा ऊर्ध्व प्राप्त नहीं होता था। इसलिये प्रकृतसूत्र में उस का विधान किया गया है। उदाहरण यथा—

पङ्गु प्रातिपदिक में स्त्रीत्व की विवक्षा में पङ्गोरश्च (१२७२) इस प्रकृतसूत्र में ऊर्ध्वप्रत्यय टकार अनुबन्ध का लान तथा अक सवर्ग्य दीर्घ (४२) में सवर्ग्यीय करण पर 'पङ्गु' शब्द लिख्यमाना जाता है। अब पूर्वोक्त त्रिङ्गविधिप्रतिष्ठापा में इन की प्रातिपदिकमञ्जा हो कर म आदिना की उपनि जानी है। प्रथमा के एकवचन की विवक्षा में सु प्रत्यय जा कर मकार का स्वर तथा म् का अवसान में विभक्त जाकर करने पर 'पङ्गु' (लङ्गुडी जोरत) प्रयोग भिन्न हो जाता है। पङ्गुशब्द बाल पङ्गुरित वनिता।

अत्र पङ्गुशब्द के स्त्रीनिङ्ग का निर्देश कत है—

[लघु०] मा०—(११३) श्वशुरस्योकाराकारलोपश्च ॥

श्वश्रु ॥

अर्थ—श्वशुर (समुग) प्रातिपदिक में स्त्रीत्व की विवक्षा में पुनी म ऊर्ध्व प्रत्यय हो जाता है तथा इस के साथ श्वशुर शब्द के उकार तथा अन्य अकार को भी लोप हो जाता है।

व्याख्या—श्वशुरस्य ।६।१। उकाराकारलोप ।१।१। च इत्यन्यन्तदम् । नह वानिक ऊर्ध्वप्रत्यय के प्रकरण में पठा गया है जब ऊर्ध्व का विधान ही सम्पत्ता चाहिये। अर्थ—(श्वशुरान्) श्वशुर प्रातिपदिक में (स्त्रियान्) स्त्रीत्व की विवक्षा में (ऊर्ध्व) ऊर्ध्व प्रत्यय हो जाता है तथा इस के साथ (श्वशुरस्य) श्वशुरशब्द के (उकाराकारलोप) उकार और जकार का (लोप) लान (च) भी हो जाता है। श्वशुर श्वश्रुवा (१२७१) सूत्र के आशय पर यह वानिक उक्ति किना गया है तत्र अन्य यका

का ही लोप ममक्षा जायेगा नकि वकारोत्तर का । ऊट् प्रत्यय तद्धिनमज्ञक नहीं है वन उस के परे रहते यस्त्येति च (२३६) में भमज्ञक जकार का लोप प्राप्त नहीं होता था जन इस वार्त्तिक म उन के लोप का विधान करना पडा है । पूर्वोक्त ज्ञापक में इस वार्त्तिक की प्रवृत्ति पुयाग म ही होनी है ।

उदाहरण यथा—

श्वशुरस्य स्त्री (पत्नी) — श्वशू (मसुर की पत्नी अर्थात् सास) । यहा श्वशुर-शब्द में पुयोग में स्त्रीत्व की विवक्षा म पुयोगादाख्यापाम् (१२६१) में डीप् प्रत्यय प्राप्त होता था उस का बाध कर प्रकृत श्वशुरस्योकाराकारलोपरश्च (वा० ११३) वार्त्तिक से ऊट् प्रत्यय हो कर 'श्वशूर' के उच्चार तथा अन्य अकार का लोप करने पर — श्वशूर् + ऊ = 'श्वशू' बना । जब पूर्ववत् लिङ्गविगिष्टपग्भिभाषा से प्रातिपदिकसज्ञा हो कर सुंआदियों की उत्पत्ति होती है । प्रथमा के एकवचन की विवक्षा में 'सुं' प्रत्यय आ कर सकार को रँत्व-विमर्ग करने में 'श्वशू' प्रयोग मिट्ट हो जाता है ।^१

पुन ऊट् प्रत्यय का विधान करते हैं—

[लघु०] विधि-सूत्रम्— (१२७३) ऊत्तरपदादौपम्ये ।४।१।६६॥

उपमानवाचिपूर्वपदम ऊत्तरपद यत् प्रातिपदिक तस्माद् ऊट् म्यात् । करभोर ॥

अर्थ — जिम का पूर्वपद उपमानवाचक तथा उत्तरपद 'ऊ' हा तो उम ममस्त प्रातिपदिक में परे स्त्रीत्व की विवक्षा म ऊट् प्रत्यय हा ।

व्याख्या—ऊत्तरपदात् १५।१। औपम्य १७।१। ऊट् ११।१। (ऊटुत् सूत्र से) । स्त्रियाम्, प्रातिपदिकात्, प्रत्यय, परश्च—य मव पूर्वं अधिकृत ह । ऊत्तरपद मम्य तद् ऊत्तरपदम्, तस्मान् = ऊत्तरपदात् (प्रातिपदिकात्) । बहुव्रीहिनमाम । उत्तरपद के कथन में पूर्वपद का जोशेष बिया जाता है । 'औपम्ये' का अन्वय उमी आशिज पूर्वपद म होना ह । उपमायतभिया इत्युपमा, उपमानमित्यथ, करणेऽट् । उपमैव औपम्यम्, स्वार्थे ण्यत् । इस प्रकार 'उपमानवाचिपूर्वपदम्' यह पद प्राप्त हा जाता है । इस 'प्रातिपदिकात्' के माथ मम्बद्ध कर विभक्तिविपरिणाम में 'उपमानवाचिपूर्वपदात्' रना लेत है । अर्थ — (औपम्ये = उपमानवाचिपूर्वपदात्) उपमानवाचक जिम का पूर्वपद है तथा (ऊत्तरपदात्) 'ऊ' शब्द जिस का उत्तरपद है ऐसे ममस्त (प्रातिपदिकात्) प्रातिपदिक में परे (स्त्रियाम्) स्त्रीत्व की विवक्षा में (ऊट्) ऊट् प्रत्यय हो जाता है ।

उदाहरण यथा—

करभावि उरु यस्या मा करभोर (करभ के ममान मामत पटो वाली स्त्री) । मणिवध (हाथ के पहुँचे) में ले कर कनिष्ठिका अट्गुलि तक जो हाथ की हथेलियों का

१ श्वशूजनानुष्ठितचारुवेपा कर्णोरस्यस्या रघुवीरपत्नीम् ।

प्राप्तादवातायनदृश्यदन्धं साकेतनार्योञ्जलिभि प्रणेम् ॥

(रघु० १४ १३)

पार्श्ववर्ती मामल भाग होता है उसे करभ कहते हैं। यहा समाम म 'करभ' शब्द 'करभ के समान' अर्थ में लाक्षणिक है। 'करभ औं+ऊर औं' इस अलौकिकविग्रह जाने जन्यपदप्रधान बहुव्रीहिसमाम में अनेकमन्यपदार्थों (६६६) सूत्र से समास हो मुँज्जुक् कर गुण करने से 'करभो' यह समान प्रातिपदिक निष्पन्न होता है। इस में पूर्वपद (करभ) उपमानवाचक तथा उत्तरपद 'ऊर' है अतः प्रकृत ऊरुत्तरपदादीपम्ये (१२७३) सूत्र में स्त्रीत्व को विवक्षा में ऊर् प्रत्यय, मवणदीघ तथा लिङ्गविशिष्टपरिभाषा में स्वादिगो की उत्पत्ति हो प्रथमा के एकवचन की विवक्षा में सकार को रैत्व-विमग करन से 'करभो' प्रयोग मिद्ध हो जाता है।

इनीप्रकार—रम्भोह कदलीम्भोम्भो गजनामोह आदि प्रयोग नमझने चाहिये।

रघुवश (६ ८३) में 'करभोपमो' ३ पद का प्रयोग अशुद्ध है इन के स्थान पर 'करभोपमो' होना चाहिये। करभ उपमा ययोस्तौ करभोपमौ, करभोपमौ ऊरु यस्या मा करभोपमो । यहा बहुव्रीहिसमास में 'करभ' उपमान तो है पर पूर्वपद नहीं (पूर्वपद तो 'करभोपम' है), अतः प्रकृतसूत्र से ऊर् न होगा। इमीप्रकार—उपमान पूर्वपद न होने में 'सुन्दरो ऊरु यस्या मा सुन्दरो पीवरो ऊरु यस्या मा पीवरो' ३ वती ऊरु यस्या मा वृत्तो' इत्यादिगो में ऊर् न हागा।

यदि उत्तरपद में केवल 'ऊ' शब्द न हो कर ऊवन्त कुछ और होगा तो भी ऊर् न होगा। यथा—स्वामिन ऊरु स्वाम्यूर, हस्तिन इव स्वाम्यूरु यस्या मा हस्तिन्वाम्यूर । उत्तरपद में 'ऊ' न हो कर 'स्वाम्यूर' है अतः ऊर् प्रत्यय नहीं होता।

१ मणिबन्धाद् आकृतिष्ठ करस्य करभो वहिर्—इत्यमर । 'करभ' शब्द हाथी या ऊँट के बच्चे के लिये भी प्रसिद्ध है। यदि यह अर्थ होगा तो 'उष्ट्रमुख' की तरह नमान होगा। तथाहि—करभस्य ऊरु करभाम् । करभो द्व ऊरु यस्या सा= करभो । इस दशा में सप्तम्युपमानपूर्वपदस्योत्तरपदलोपश्च (वा०) इस वार्तिक में बहुव्रीहिसमाम होगा।

२ सा चूर्णगौर रघुन दनस्य धात्रीकराम्या करभोपमोह ।

आसञ्जयामास ययाप्रदेशे कण्ठे गुण मूलमिवानुरागम् ॥ (रघु० ६ ८३)

३ कुमारमम्भव (८ ३६) में कालिदास ने 'पीवरोह । पिबतीव वहिण' इसप्रकार 'पीवरो' शब्द के मन्वोऽन में अन्वयार्थनयोर्ह्रस्व (१६५) सूत्र प्रवृत्त कर जा पीवरा' प्रयोग किया है वह पाणिनीयव्याकरण की दृष्टि से ठीक नहीं है। यहा उपमानपूर्वपद न होने में ऊर् का विधान सम्भव नहीं। [अथवा—सञ्ज्ञापूर्वकी विधिरनित्य इत्याश्रित्य ह्रस्वस्य गुण (१६६) इत्यस्याऽप्रवृत्ते कथञ्चित्प्रमा-धेपोऽयम्प्रयोग] ।

४ इस सूत्र के अर्थ का वैयकरण म त्रमिक विकास हुआ है। विशेषजिज्ञामु इस क लिये नेत्रक के सुप्रसिद्ध शोधप्रबन्ध न्यासपर्यालोचन (२ ३०) का अवलोकन करे।

अब पूर्वपद उपमानवाची न होने पर भी ऊरुत्तरपद से अप्रिमसूत्रद्वारा ऊट प्रत्यय का विधान करते हैं—

[लघु०] विधि-सूत्रम्—(१२७४) सहित-शफ-लक्षण-वामादेश्च

१४।१।७०॥

अनोपम्यायै सूत्रम् । सहितोरु । शफोरु । वामोरु ॥

अयं—महित (सश्लिष्ट, जुटा हुआ, मटा हुआ), शफ (खुर), लक्षण (लक्षणवान, मुलक्षण), वाम (अतिसुन्दर)—इन में से कोई जिस का पूर्वपद तथा 'ऊरु' शब्द जिस का उत्तरपद हो तो ऐसे समस्त प्रातिपदिक से स्त्रीत्व की विवक्षा में ऊट प्रत्यय हो ।

उपमानवाची पूर्वपद न होने के कारण पूर्वसूत्रद्वारा ऊट प्राप्त न था अतः प्रकृतसूत्र से विधान किया जा रहा है ।

व्याख्या—सहित-शफ-लक्षण-वामादेश्च १४।१। च इत्यव्ययपदम् । ऊरुत्तरपदात् १४।१। (ऊरुत्तरपदादौपम्ये सूत्र मे) । ऊट् १४।१। (ऊटुत् सूत्र मे) । प्रातिपदिकात्, स्त्रियाम्, प्रत्यय, परश्च—ये सब पूर्व लक्षण अधिकृत हैं । ममाम—महितश्च शफश्च लक्षणश्च वामश्च सहित-शफ-लक्षण-वामा, सहित-शफ-लक्षण-वामा आदय (आद्य-वयवा) यस्य स =सहित-शफ-लक्षण-वामादि, तस्मात् =महितशफलक्षणवामादेश्च, ब्रह्म-गर्भवह्व्रीहिममास । अयं—(सहित-शफ-लक्षण-वामादेश्च) सहित, शफ, लक्षण वाम—आदि वाले तथा (ऊरुत्तरपदात्) ऊरु-उत्तरपद वाले (प्रातिपदिकात्) प्रातिपदिक स परे (स्त्रियाम्) स्त्रीत्व की विवक्षा में (ऊट प्रत्यय) ऊट प्रत्यय ही जाना है । क्रमशः उदाहरण यथा—

सहितो ऊरु यस्या सा =सहितोरु (सश्लिष्ट अर्थात् परस्पर सटे हुए पेटों वाली स्त्री) । यथा 'सहित औ + ऊरु औ' इस अलौकिकविग्रह में अन्यपद के अर्थ में अनेकमन्यपदायै (१६६) से बहुव्रीहिममाम हो संव्युक् कर गुण करने से 'महितोरु' प्रातिपदिक निष्पन्न होता है । इस से स्त्रीत्व की विवक्षा में प्रकृत सहित-शफ-लक्षण-वामादेश्च (१२७४) सूत्रद्वारा ऊट प्रत्यय हो सर्वणदीघ कर पूर्ववत् प्रथमा के एकवचन में सुं प्रत्यय के सकार को रेंत्व-विसर्ग करन पर 'सहितोरु' प्रयोग सिद्ध हो जाना है ।

इमीप्रकार—

शफो (खुरो) ऊरु यस्या सा शफोरु (खुर हैं ऊरु जिस के, अर्थात् खुरो की

१ खुरवाची शफशब्द अशरकोप में शफ क्लोबे खुर पुमान् इस प्रकार नपुसकलिङ्ग माना गया है । परंतु लोक में यह पुलिङ्ग भी देखा जाता है । अत एव हेमचन्द्र ने अपने कोप में शफ खुरे गवादीना मूले विटपिनामपि इस प्रकार इसे पुस्त्व में प्रयुक्त किया है । ग्राम्यपशुसङ्घेष्वतर्णेषु स्त्री (१२७३) सूत्र की व्याख्या में पदमञ्जरी में इसे पुलिङ्ग प्रयुक्त किया गया है । राय् ने अपने कोप में भी इस की पुनपुसकता कही है ।

तरह मशिल्ल पट्टो वाली स्त्री) । यहा भी पूववत् बहुव्रीहिसमाम मे मादृश्य के कारण ऊरुओ मे छुरत्व का आरोप किया गया है, जत उपमानवाचिपूर्वपद न होने से पूर्वसूत्र-द्वारा ऊर् प्रत्यय प्राप्त न था ।

सूत्रगत 'लक्षण' शब्द अशंआदिभ्योऽच् (११६५) से प्राशस्त्य अर्थ मे मत्वर्थीय अच् प्रत्यय करने से निष्पन्न हुआ है । प्राशस्त लक्षणम् अस्त्यस्येति लक्षण (शुभलक्षण वाला) । लक्षणो (शुभलक्षणवन्तो) ऊर् यस्या मा = लक्षणोरु (शुभलक्षणयुक्त पट्टो वाली स्त्री) । पूर्ववत् बहुव्रीहिसमास मे ऊर् हो गया है ।

वामशब्द अतिसुन्दर अर्थ मे त्रिलिङ्गी है' । वामो = अतिसुन्दरी ऊर् यस्या मा = वामोरु (अतिसुन्दर पट्टो वाली स्त्री)^१ । पूर्ववत् बहुव्रीहिसमाम मे म्बुक् हो कर ऊर् हो गया है ।

जब डीन् प्रत्यय का जग्रिमसून मे विधान करते हैं—

[लघु०] विधि-सूत्रम् — (१२७५) शाङ्गरवाद्यत्रो डीन् । ४।१।७३॥

शाङ्गरवादेरञ्चो योऽकारस्तदन्नाच्च जानिवाचिनो डीन् स्यात् ।
शाङ्गरवी । वैदी । ब्राह्मणी ॥

अर्थ — शाङ्गरव जादि गणपठिन प्रातिपदिक मे तथा अञ् प्रत्यय का जो अकार तदन जानिवाचक प्रातिपदिक मे स्त्रीत्व की विवक्षा म डीन् प्रत्यय हो ।

व्याख्या — शाङ्गरवादि । ५।३। (लुप्तपञ्चम्यन्त पृथक्पदम्) । अत्र । ६।१। डीन् । १।१। जाते । ५।१। (जातेरस्त्रीविषयादयोपधात् सूत्रसे) । अत, प्रातिपदिकात्, स्त्रियाम्, प्रत्यय, परश्च — ये सब पूर्वत अधिक्कृत ह । 'अत्र' इस पठ्यन्त वा अन्वय 'अत' के माथ होता है । किञ्च 'प्रातिपदिकात्' का विशेषण होने से 'अत' से तदन्तविधि हो जाती है । 'अत्रो योऽत्, तदन्ताद् जातिवाचिन प्रातिपदिकात्' ऐसा अध निष्पन्न हो जाता है । अर्थ — (शाङ्गरवादे) शाङ्गरव आदि गण मे पडे प्रातिपदिक मे तथा (अत्र) अन् प्रत्यय का जो (अत) अन् तदन्त (जाते प्रातिपदिकात्) जातिवाचक प्रातिपदिक मे (स्त्रियाम्) स्त्रीत्व की विवक्षा मे (डीन्) डीन् प्रत्यय हो जाता है ।^२

डीन् मे डकार और नकार इत्यञ्जन हो कर लुप्त हो जाने है, 'ई' मात्र शेष रहता है । डीन्प्रत्ययान्त शब्द अन्त्यादिनित्यम (६११६१) सूत्रद्वारा आद्युदात्त होत

१ वाम सन्धे प्रतीपे च द्विविधे चातिसुन्दरे—इति विश्व ।

२ तदिद विपहिष्यते कय च वामोरु । चिनाधिरोहणम्—(रघु० ८ ५७) ।

हे वामोरु ! सम्बुद्धौ अम्बार्थनद्योह्लस्व (१६५) इति ह्रस्व ।

३ 'जाते' का सम्बन्ध यथाम्भव 'शाङ्गरवादि' मे भी कर लेना चाहिये । इस से शाङ्गरवादियो से विहित यह डीन् जानिलक्षण डीप् का ही अपवाद होगा, पुयोग मे होने वाले डीप् का नहीं । अत एव 'शाङ्गरवस्य स्त्री' इस प्रकार पुयोग की विवक्षा मे पुयोगादाख्यायाम् (१२६१) मे डीप् ही होता है डीन् नहीं ।

हैं जबकि टोप्प्रत्ययान्त शब्द प्रययस्वर मे जन्तोदात्त, यही डीन् और टोप् करने म अन्तर होता है ।

उदाहरण यथा—

शृङ्गरोरपत्य स्त्री शाङ्गर्वी (शृङ्ग की लडकी) । शृङ्गर नामक कोई व्यक्ति है । तद्वाचक 'शृङ्गर' शब्द से तस्यापत्यम् (१००४) के अर्थ में अण् प्रत्यय, आदिवृद्धि, ओर्गुण (१००५) सूत्र से उकार को ओकार गुण एवम् एचोऽयवायाव (२२) से ओकार को अच् आदेश हो कर 'शाङ्गर्व' प्रातिपदिक निष्पन्न होता है । गोत्रञ्च चरण सह के अनुसार अपत्यप्रत्ययान्त होने से यह जातिवाचक है, अत स्त्रीत्व की विवक्षा म जातेरस्त्रीविषयादयोपधात् (१२६६) सूत्रद्वारा प्राप्त टोप् का बाध कर प्रकृत शाङ्गर्वाद्यत्रो डीन् (१२७५) सूत्र मे इम मे परे डीन् प्रत्यय हो कर अनुबन्धलाप करने से 'शाङ्गर्व + ई' हुआ । अब यस्वेति च (२३६) से भसजक अकार का लोप कर विभक्तिकार्य करने से 'शाङ्गर्वी' प्रयोग सिद्ध हो जाता है ।

इसीप्रकार 'ब्राह्मण' शब्द शाङ्गरवादियों के अन्तगत पदा गया है । यह लिङ्गाना च न सर्वभाक् । सकृदाख्यातनिर्ग्राह्या के अनुसार जातिवाचक है^१ । अत इम से भी पूर्ववत् प्राप्त जातिलक्षण टोप् का बाध कर प्रकृतसूत्र मे डीन् प्रत्यय कर भसजक अकार का लोप तथा विभक्तिकार्य करने मे 'ब्राह्मणी' प्रयोग सिद्ध हो जाता है । याद रह कि 'ब्राह्मणी' म जातिलक्षण टोप् करना अशुद्ध है ।

अञ् का जो अकार तदन्त जातिवाचक का उदाहरण यथा—

विदस्य गोत्रापत्य स्त्री वैदी (विदनामक व्यक्ति की गोत्रापत्य लडकी) । यहा 'विद' से गोत्रापत्य अर्थ मे अनुप्यानतयै विदाविभ्योऽञ् (१०१६) सूत्र से अञ् प्रत्यय, आदिवृद्धि एव भसजक अकार का लोप कर 'वैद' शब्द निष्पन्न होता है । यहा अञ् का जो अकार तदन्त प्रातिपदिक 'वैद' है ही । अपत्यप्रत्ययान्त होने मे गोत्र च चरण सह के अनुसार यह जातिवाचक भी है । अत स्त्रीत्व की विवक्षा मे जातेरस्त्रीविषयादयोपधात् (१२६६) सूत्र मे प्राप्त जातिलक्षण टोप् का बाध कर प्रकृतसूत्र मे डीन् प्रत्यय, अनुबन्धलोप तथा भसजक अकार का लोप कर विभक्तिकार्य करन मे 'वैदी' प्रयोग सिद्ध हो जाता है ।^२

१ अथवा—ब्राह्मणोऽपत्य ब्राह्मण [तस्यापत्यम् (१००६) इत्यण्, अन् (१०२४) इति टिलोपो न] इस प्रकार अपत्यप्रत्ययान्त होने के कारण गोत्र च चरण सह के अनुसार जातिवाचक है ।

२ अन्त जातिवाचक म डीन् हो—ऐसा भीधा सरल अर्थ न कर के 'अञ् का जो अकार तदन्त जातिवाचक मे डीन् हो' इस प्रकार का अर्थ करना तथा सूत्र के मीधे 'शाङ्गर्ववाद्यत्र' पद मे 'शाङ्गरवादि' को लुप्तपञ्चम्यन्त तथा 'अञ्' को पठ्यन्त मान कर उपर्यक्त श्रमेलो मे भरे अर्थ करने की यहा आवश्यकता ही

जब शाङ्गरवादिगण के जन्तगन एक गणमूत्र का निर्देश करते हैं--

[लघु०] गणमूत्रम्—नृनरयोर्बृद्विश्च ॥

नारी ॥

अर्थ—नृ और नर इन दो जानिवाचक प्रातिपदिका में पर स्त्रीत्व की विवक्षा में डीन् प्रत्यय तथा इम के माथ नृ और नर शब्दा को वृद्धि भी हो जाती है ।

व्याख्या—यह गणमूत्र शाङ्गरवादिगण में पटा गया है अतः डीन्विषयक ही समझना चाहिये । नृ (मनुष्य) शब्द आकृतिग्रहणा जाति के अनुसार जातिवाचक है । परन्तु अदन्त न होने से इम में जातेरस्त्रीविषयावयोपघात (१२६६) द्वारा स्त्रीत्व में डीप् प्राप्त नहीं, ऋन्नेभ्यो डीप् (२३२) में डीप् ही प्राप्त है । इसी तरह 'नर' शब्द भी जानिवाचक है परन्तु अदन्त होने में यहा जातेरस्त्रीविषयावयोपघात (१२६६) में डीप् प्राप्त है । इन दोनों का अपवाद यह डीन् प्रत्यय विधान किया जा रहा है किञ्च डीन् के माथ इन प्रातिपदिकों में वृद्धि का विधान भी हा रहा है ।

नृशब्द का उदाहरण यथा—

'नृ' शब्द में स्त्रीत्व की विवक्षा में शाङ्गरवादिगणान्तगत नृनरयोर्बृद्विश्च इम गणमूत्र से डीन् प्रत्यय तथा 'नृ' के इक्-ऋकार को वृद्धि (आर्) हो कर विभक्तिवाचक करन में 'नारी' (स्त्री) प्रयोग मिथ्य हा जाता है ।

क्या है ? यह शब्दा प्रबुद्ध जिज्ञासुओं के मन में बार बार उठा करती है । इस का प्रयोजन समझने के लिये 'शूरसेनी' उदाहरण को समझना होगा । शूरसेनस्यापत्य स्त्री शूरसेनी (शूरसेन की मन्तान लडकी) । यहा शूरसेन से अपत्य अर्थ में जनपद-शब्दात् क्षत्रियादन् (१०२८) सूत्र में अन् प्रत्यय हो कर अतरश्च (४११७५) सूत्र में उम का लुक् हो जाता है—शूरसेन । अब स्त्रीत्व की विवक्षा में इम में परे प्रत्यय करना है । यदि प्रकृतसूत्र का मोधा मरन शाङ्गरवादिगण तथा अन्-प्रत्ययान्त जातिवाचको में डीन् हो' इस प्रकार का अर्थ करते है तो यहा भी प्रत्ययलक्षणद्वारा जन्त मान सेन से डीन् प्रत्यय की प्राप्ति होने लगती है जो अनिष्ट है । परन्तु उपर्युक्त अर्थ करने में 'अन् का जो अकार तदन्त जानिवाचक में डीन् हो' इस प्रकार अन् के अकार के न रहन में यहा डीन् नहीं होता । अकार को प्रत्ययलक्षण में भी नहीं माना जा सकता—वर्णाश्रये नास्ति प्रत्ययलक्षणम् । अब जातेरस्त्रीविषयावयोपघात (१२६६) सूत्र में डीप् हो कर 'शूरसेनी' प्रयोग मिथ्य हो जाता है । ध्यान रहे कि यदि डीन् किया गया होना तो 'शूरसेनी' में आद्युदात्त स्वर होना जो अब डीपन्त होने में अन्तोदात्तस्वर होना है ।

१ यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता ।

यत्रंतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफला क्रिया ॥ (मनु० ३५६)

नाना नारीं निष्फला लोकयात्रा (गणरत्न०) विना स्त्री के लोकयात्रा निष्फल है ।

इतिप्रकार 'नर्' प्रातिपदिक में स्त्रीत्व की विवक्षा में नूनरयोर्बुद्धिश्च इत्यनुसूत्र में ईन् प्रत्यय हो कर—नर् + ई । अब उसी अनुसूत्र में अनोरन्परिभाषाद्वारा 'नर्' के अल्प अकार को वृद्धि (आ) प्राप्त होती है और इत्यस्येति च (२३६) सूत्रद्वारा उन अकार का लोप प्राप्त होता है । वार्णाश्रयण बर्णोप (वर्णसम्बन्धी कर्म) में अङ्गनम्बन्धी कार्य बलवान् होता है । इस परिभाषा के अनुसार अङ्गनम्बन्धी कार्य अर्थात् भस्मज्ज अकार का लोप हो जाता है—नर्—ई । अब यहाँ लौकिकप्रयोग के अनुरोध से अथवा आन्तरिक से नर् के त्कारोत्तर जकार का ही वृद्धि (आ) हो कर विभक्तिकार्य करते में नारी (मनुष्यजाति की स्त्री) प्रयोग निष्ठ हो जाता है ।

'नारो' प्रयोग 'नू' शब्द में ही निष्ठ हो जाता है पुनरपि नर शब्द में प्रातिपदिक लक्षण डीप् हो कर कही 'नरी' न इन जाये इतिपर नरशब्द में ही नारी बनाया गया है । यहाँ जातिक्षण डीप् न प्रयोग म पुरोगाशाख्यायान (१०६१) में ही डीप् होता ही—नरस्य स्त्री नरी (पत्नी) । नृशब्द में पुमान् न डीप् नहीं होता कारण कि वह अदन्त नहीं ।^१

अब 'नि' प्रत्यय का विधान करना है—

[लघु०] विधि-नूनम्—(१२७६) यूनस्मि । ४।१।७७॥

युवन्शब्दान स्त्रिया नि प्रत्यय स्यात् । युवति ॥

अथ—युवन्शब्द म स्त्रीत्व की विवक्षा म नि प्रत्यय है ।

१ ऋट् वंशकपा का कथन है कि इस वार्तिक में ही लृप्-अकार नरशब्द (नर्) के नकारोत्तर अकार का ही वृद्धि करन का स्पष्ट उल्लेख है । वे लोप वार्तिक 'नूनरया' पद की व्याख्या इन प्रकार करते हैं—

नरशब्द का पष्ठ्येकवचन बनगा—नर (नरशब्द का) ।

नर अ = नर पष्ठीनसुरप अथ होगा—नर् का अ ।

नृशब्द का प्रथमैकवचन 'ना' बनता है । ना च नर च—

नूनरौ नयो = नूनरया द्वन्द्वनमान । नृशब्द के स्थान पर गया नर् शब्द के

अकार के स्थान पर वृद्धि हो—इस प्रकार वार्तिक का अर्थ हो आया । नृशब्द

के स्थान पर होने वाली वृद्धि इको गुणवृद्धी (११३) परिभाषा के अनुसार

नृशब्द के ऋकार को ही होगी ।

२ गार्होत्वादिष यथा—

शाङ्गाव । वापटव । गौगुलव । शाल्य । गौतम । कामशनेय । वासुकृनेय ।

जानिचेय । जानिधेय । आशोक्य । वात्स्यायन । मौञ्जामन । वैवमय । शाल्य ।

पैव्य । एहि । पयोहि । आशमरथ्य । औदयान । जराद । चण्डाल । वनट ।

भोगवद्गौरिमनो भोजायाम्—भोगवती, गौरिमनी । नूनरयोर्बुद्धिश्च—नारो ।

इस गण का विवेचन कागिका, पदकोशुभ आदि में देखें ।

व्याख्या—यून १५।१। नि ११।१। स्त्रियाम्, तद्धिता, प्रत्यय, पररच—ये मव
पूवत अविहृतन है। जयं—(यून) युवन् प्रातिपदिक मे (मिनयान्) स्त्रीत्व की विवक्षा
मे (नि) नि (प्रत्यय) प्रत्यय हाता है और वर (तद्धित) तद्धितमज्ञक होना है।

उदाहरण यथा—

युवन् (जवान) प्रातिपदिक म स्त्रीत्व की विवक्षा म प्रकृत यूनस्ति (१२७६)
मून मे तद्धितमज्ञक नि प्रत्यय हो कर—युवन् + नि' हुआ। अब स्वादिश्वमर्वनाम-
स्थाने (१६४) म निप्रत्यय के पर रहने युवन् की पदमज्ञा हो न लोप प्रातिपदिकान्मस्य
(१८०) मे उम के अन्य नका का लोप हा जाता है—युवति। तद्धितान्त होने के
कारण कृतद्धितममामाश्च (११७) द्वारा प्रातिपदिकमज्ञा हो कर अब 'युवति' मे
स्वादिया की उत्पत्ति हाती है। प्रथमा क एकवचन की विवक्षा मे 'म्' प्रत्यय ना कर
मकार को मँव जोर रेफ का विमग आदेग करन म 'युवति' (जवान स्त्री) प्रयोग
मिद्ध हो जाता है^१।

प्रकृतसूत्र अनुपमज्जनान् (४११६) के अङ्गिकार म पडा गया है अत बहुव्रीहि-
ममाम म जब युवन्गद उपमर्जन हाता है तब इस मून की प्रवृत्ति नहीं होगी—बहुवा
युवानो यन्था मा बहुयुवा नगरी^२।

१ उपात्तप्रातिपदिकान् (११६) इन अङ्गिकार क कारण सु आदिना की उत्पत्ति डा
और जाप् मे तो हा सकती है पर निप्रत्ययान्त मे नहीं इमलिय प्रकृत न नि
प्रत्यय की तद्धितमज्ञा की गई है रिम मे तद्धितान्त की कृतद्धितममामाश्च (११७)
से प्रातिपदिकमज्ञा हो कर उम से स्वादिश्व की उत्पत्ति हा मके। परन्तु यह
प्रयोजन लिङ्गविशिष्टपङ्क्तिभाषा मे भी मिद्ध हो सकना है जैसाकि ऊट्प्रत्ययान्तो म
प्रातिपदिकमज्ञा हो कर स्वादिश्व की उत्पत्ति हुआ करती है। जन महा 'नि'
की तद्धितमज्ञा करना निष्प्रयोजन मा प्रतीत होना है। तद्धितमज्ञा का उपयोग
अष्टाध्यायी मे आग किया जाना उचित है। शायद इमो विचार मे प्रेरित हा कर
तपुमिद्वान्तोमुदीकार ब्रह्मराज न महा वृत्ति (सूचायं) म निप्रत्यय की तद्धितमज्ञा
का कोई उल्लेख नहीं किया।

२ युवतिजनक्यामूकभाव परेषाम् । (नीनिगनक २६)

यान्तेव गृहिणीपद युवनयो वामा कूलम्याधय । (शाकुलम ४१८)

३ 'ति' मे मुक्त हात पर श्रुत्नेम्यो डीर् (२३२) मे डीर् प्राप्त हाता है। उम का
अनो बहुव्रीहे (४११२) मे नियेय हो जाता है। पुन डाबुनाम्यामपरस्याम्
(४११३) सूत्रद्वारा विकल्प मे डान् प्रत्यय हो जाता है। डान्मज्ञ मे डित्व के
कारण टि का लोप हो जाता है। पक्षान्तर मे राजनूशब्दवन् प्रक्रिया हाती है।
प्रथमैकवचन मे रूप दोनो पक्षा का एक रूना बनना है—बहुयुवा (नारी)।

कहीं कहीं साहित्य में 'युवती' ऐसा दोषघटित प्रयोग भी दृष्टिगोचर होता है।^१ वहाँ 'युवति' शब्द से सर्वतोऽक्तिन्निर्घादित्येके (गणमूत्र) में टोप् प्रत्यय वर भमञ्जक इकार का यत्येति च (२३६) से लोप करने पर युवती शब्द की मिद्धि ममपती चाहिये। जयवा—यु मिथ्यणाऽमिथ्यणयो (अदा० प०) धातु के अन्त युवन्त् रूप में उगितश्च (१२५०) द्वारा डोप् कर विभक्ति लान में युवती' प्रयोग निष्पन्न हो जाना है। यौति = मिथीकरोति आत्मानं पत्यति युवती।

स्त्रीप्रत्ययप्रवरण के कुछ अन्य उपयोगी मूत्र एव वार्तिक व्युत्पन्न विद्याधिया की ज्ञानवृद्धि के लिये यहाँ मक्षेप में मादाहर्ण प्रम्नुन क्रिय आ रह है—

(१) वनो र च ।४।१।७॥

अर्थ — वन्प्रत्ययान्त प्रातिपदिक में परे स्त्रीत्व की निवृत्ति में टोप् प्रत्यय तथा इम के साथ वन् के नकार को रफ आदेश भी हो जाना है।

डोप् तो ऋन्नेभ्यो डोप् (२३२) में प्राप्त था ही, वन् व नकार का रफ आदेश विधान करने के लिये ही यह मूत्र बनाया गया है। उदाहरण यथा—

पारदृश्वन्—पारदृश्वरी (जा पार का दख चुकी है पारगता)।^२

शास्त्रदृश्वन्—शास्त्रदृश्वरी (शास्त्रा की ज्ञाना स्त्री)।

राजकृत्वन्—राजकृत्वरी (राजा की बनान वाली स्त्री)।^३

महकृत्वन्—महकृत्वरी (माघ कर चुकी स्त्री)।^४

प्रातरित्वन्—प्रातरित्वरी (प्रातःकाल जान वाली स्त्री)।^५

पीवन्—पीवरी (भ्यूला स्त्री रक्षा करने वाली)।

१ न सोऽस्ति पुरुषो लोके यो न कामयते श्रियम्।

परम्य युवती रम्या सादर नैक्षतेऽत्र च ॥ (हिताप० ० १३१)

२ पार दृष्टवतीति पारदृश्वरी। शास्त्र दृष्टवतीति शास्त्रदृश्वरी। वृशो क्वनिप् (८०८) मूत्रद्वारा इन में क्वनिप् प्रत्यय किया गया है। सम्पूर्ण मिद्धि इसी मूत्र (८०८) पर लिख चुके हैं वहाँ देखें।

३ राजान कृतवनीति राजकृत्वरी। राजनि युधि-कृज (८०६) मूत्रद्वारा कृ' धातु में क्वनिप् प्रत्यय हो कर तुक् का जागम (७७७) हो जाना है।

४ मह कृतवनीति महकृत्वरी। सहे च (८१०) मूत्र में क्वनिप् प्रत्यय हो जाना है। तुक् का जागम पूर्ववत् समझना चाहिये।

५ प्रातर एति (गच्छति) इति प्रातरित्वरी। प्रातरपूर्वक इण् गतो (अदा० परस्मै०) धातु में अत्येभ्योऽपि दृश्यन्ते (७६६) मूत्र में क्वनिप् प्रत्यय हो कर तुक् का जागम हो जाना है।

६ प्यड् वृद्धो (भ्या० आत्मन०)। घ्याप्यो सम्प्रसारण च (उणा० ४ ११६) इति क्वनिपि सम्प्रसारणम्, हत (८१६) इति दीर्घः।

धीवन्—जीवरी (ध्यान करने वाली) ।^१

मुत्वन्—सुत्वरी (निचोड़ने वाली) ।^२

इस सूत्र की प्रवृत्ति वन्नन्तान्त में भी होती है ।

यथा—धीवानम् अतिक्रान्ता—अनिधीवरी । अनिपीवरी ।

(२) वा०—वनो न ह्य इति वक्तव्यम् ॥

अर्थ—यदि ह्यन्त धातु से वन्प्रत्यय विधान किया गया हो तो उस वन्नन्त प्रातिपदिक में स्त्रीत्व की विवक्षा में डीप् + रत्व नहीं होता । उदाहरण यथा—

राजयुध्वन्—राजयुध्वा, राजयुध्वानी, राजयुध्वान ।^३

महयुध्वन्—महयुध्वा, महयुध्वानी सहयुध्वान ।^४

अवावन्—अवावा ब्राह्मणी (चुरान वाली ब्राह्मणी) ।^५

(३) पादोऽन्यतरस्याम् ।४।१।८॥

अर्थ—'पाद' शब्द जिस के अन्त में हा ऐम प्रातिपदिक में पर स्त्रीत्व की विवक्षा में विकल्प से डीप् हो ।

अप्राप्ति में डीप् का विधान किया गया है । उदाहरण यथा—

१ ध्य चिंतायाम् (श्वा० परस्मै०) । पूववत् क्वनिंपि मम्प्रमारेण हल (८१६) इति दीर्घत्वम् ।

२ धुञ् अभिवधे (म्त्रा० उभय०) । मुप्रजोडवनिंप (३२१०३) इति ड्वनिंपि तुंगागम (७७७) ।

३ राजान योधिषतीनि राजयुध्वा । राजनि युधिकृञ् (८०६) सूत्र पर इस की सिद्धि देखें ।

४ मह युद्धवतीति सहयुध्वा । सहे च (८१०) सूत्र पर इस की सिद्धि देखें ।

५ ओण् अपनयने (श्वा० परस्मै०) धातु से अन्येभ्योऽपि वृश्यन्ते (७६६) सूत्रद्वारा वनिंप् प्रत्यय कर विड्वनोरनुनासिकस्यात् (८०१) से णकार का आकार तथा एचोऽपबायाव (२२) से ओकार को अव् आदेश करने पर 'अवावन्' शब्द निष्पन्न होता है । यहा प्रकृतवार्तिकद्वारा डीप् + रत्व का निषेध हा कर स्त्रीलिङ्ग में भी पुलिङ्गवत् 'अवावा' प्रयोग बनता है । परन्तु न्यामकार प्रकृतवार्तिक का क्वाचिन् मान कर यहा पर भी डीप् + रत्व का विधान मानते हैं—अवावरी । साहित्य में ऐसे प्रयोग देखे भी जाते हैं—

अवावरी धीतिमिरस्य पोवरीं

ससारसिन्धो परमार्यदुश्वरोम् ।

सुधीवरी सत्पुरुषार्यसम्पदा

नमामि भक्त्या परया सरस्वतीम् ॥

(लौगा० गृ० सूत्र की टीकारम्भ)

मु (शोभनी) पादो यस्या मा सुपदी सुपाद् वा (मुन्दर पैरो वाली) ।

द्वी पादो यस्या मा द्विपदी द्विपाद् वा (दो पैरो वाली) ।

त्रय पादा यस्या मा त्रिपदी त्रिपाद् वा (तीन पैरो वाली) ।

चत्वार पादा यस्या मा चतुष्पदी चतुष्पाद् वा (चार पैरो वाली) ।

बहुव्रीहिसमाम मे सख्यासुपूर्वस्य (६७५) सूत्र से पादशब्द के अन्त्य अकार का समासान्त लोप हो जाता है । तब प्रकृतसूत्र से वैकल्पिक डीप् करने पर डीष्पक्ष में भमज्ञा हो कर पाद पत् (३३३) सूत्र में भसज्ञक 'पाद्' को 'पद्' आदेश हो जाता है । डीप् के अभाव में भमज्ञा न होने से पद् आदेश नहीं होता—सुपाद् । इन रूपों की मिद्धि समासप्रकरण में (६७५) सूत्र पर देखें ।

(४) मन १४११११॥

अर्थ—'मन्' जिस के अन्त में हा उम प्रातिपदिक से पर स्त्रीत्व की विवक्षा में डीप् प्रत्यय नहीं होता ।

'मन्' चाहे साधक हो या निरथक दोनों का यहा ग्रहण हो जाता है ।^१

उदाहरण यथा—

दामन् (रस्मी)—दामा, दामानी, दामान ।

पामन् (खुजली)—पामा, पामानी, पामान ।

सीमन् (सीमा-हृद्)—सीमा, सीमानी, सीमान ।

अतिमहिमन्^२—अतिमहिमा, अतिमहिमानी, अतिमहिमान ।

(५) अनो बहुव्रीहे १४१११२॥

अर्थ—'अन्' जिस के अन्त में हा उम बहुव्रीहि स स्त्रीत्व की विवक्षा में डीप् प्रत्यय नहीं होता । उदाहरण यथा—

शोभन चम यस्या सा सुचर्मा मृगी । सुचर्माणी, सुचर्माण ।

शाभनानि पर्वाणि यस्या सा सुपर्वा यष्टि । सुपर्वाणी, सुपर्वाण ।

बहवो यज्वानो यस्या सा बहुयज्वा नगरी । बहुयज्वानी, बहुयज्वान ।

(६) डाब्रुभाभ्यामन्यतरस्याम् १४१११३॥

अर्थ—पूर्वोक्त मन्नन्तो तथा जन्नन्तबहुव्रीहि स स्त्रीत्व की विवक्षा में एक पक्ष में डाप् प्रत्यय भी हो जाता है ।

डाप् (आ) करने पर टे (२४२) सूत्र से भसज्ञक टि का लोप हो जाता है ।

डाप् के अभाव में पूर्वोक्त निषेधों के कारण नान्त रूप ही रहेंगे । उदाहरण यथा—
(मन्नन्तो से)

१ अनिनस्मन्ग्रहणान्यर्थवता चाऽनर्थकेन च तदन्तर्वाध प्रयोजयन्ति (५०) । इस परिभाषा की व्याख्या (२८७) सूत्र पर देखें ।

२ महिमानम् अतिश्रान्ता—अतिमहिमा देवी । अत्यादय क्राताद्यर्थे द्वितीयया (वा० ५६) इति समास । 'महिमन्'शब्द इमनिच्प्रत्ययान्त पुलिङ्ग ।

दामन् + डाप् = दामन् + आ = दाम् + आ = दामा, दामे, दामा ।

पामन् + डाप् = पामन् + आ = पाम् + आ = पामा, पामे, पामा ।

सोमन् + डाप् = भीमन् + आ = सोम + आ = सोमा, सोमे, सोमा ।

अतिमहिमन् + डाप् = अतिमहिमन् + आ = अतिमहिम् + आ = अतिमहिमा,
अतिमहिमे, अतिमहिमा ।

अन्त बहुव्रीहि य भी—

मुचमन् + डाप् = मुचमन् + आ = मुचम् + आ = मुचर्मा मुचर्मे मुचर्मा ।

सुपवन् + डाप् = सुपवन् + आ = सुपव् + आ = सुपवा, सुपवे सुपर्वा ।

बहुयज्वन् + डाप् = बहुयज्वन् + आ = बहुयज्व + आ = बहुयज्वा, बहुयज्व,
बहुयज्वा ।

(७) अत उपधालोपिनोऽन्यतरस्याम् । ४।१।२८॥

अर्थ—जिस की उपधा का लोप होता हो ऐसे अन्त बहुव्रीहि में स्त्रीत्व की
विवक्षा में डीप् प्रत्यय विकल्प में होता है । पक्ष म डाप् तथा ङीप्-निषेध प्रवृत्त हागे ।

उदाहरण यथा—

‘बहुवो राजानो यस्या सा’ इस बहुव्रीहिसमास में मुपा का लुक् हा कर ‘बहु-
राजन्’ इस अवस्था में स्त्रीत्व के विवक्षित होने पर प्रकृतसूत्र म वैकल्पिक डीप हा
जाता है ।

डीपपक्ष में—बहुराजन् + डीप् = बहुराजन् + ई । जब यच्चि मम् (१६५) स
भसजा हो कर अल्लोपोऽन (०६७) में जन् के अकार का लोप हा जाता है—बहुराजन्
+ ई । स्तो श्चुना श्चु (६२) द्वारा श्चुत्व म नकार को अकार कर विभक्ति लाने
में ‘बहुराज्ञी’ प्रयाग सिद्ध हो जाता है । बहुराज्ञी, बहुराज्ञी, बहुराज्ञ्य । नदीवत्
रूपमाला चलेगी ।

पक्ष म डाबुभाभ्यामन्यतरस्याम् (४११३) स डाप् प्रत्यय हा जाता है—
बहुराजन् + डाप् = बहुराजन् + आ । टें (२६२) सूत्र स भसजक टि का लोप हा कर
—बहुराज् + आ = ‘बहुराजा’ यह आवत शब्द सिद्ध हो जाता है । बहुराजा, बहुराजे,
बहुराजा । रमावन् रूपमाला चलेगी ।

डाप् के अभावपक्ष में अतो बहुव्रीहे (६११२) स ङीप् का निषेध रहेगा ।
तब ‘बहुराजन्’ नकारान्त रहेगा, रूपमाला स्त्रीलिङ्ग में भी राजन्शब्द की तरह होगी
—बहुराजा बहुराजानी, बहुराजान ।

(८) दाम-हायनान्ताच्च । ४।१।२७॥

अर्थ—मख्यावाचक जिम के आदि म हा तथा दामन् या हायन् शब्द जिस के
अन्त म हो ऐसे समस्त प्रानिपदिक में स्त्रीत्व की विवक्षा में डीप् प्रत्यय हो जाता है ।

उदाहरण यथा—

द्वे दाम्नी यस्या सा द्विदाम्नी वडवा (दो रस्मिया वाली घोड़ी) । त्रीणि दामानि

यस्या सा त्रिदाम्नी वडवा (तीन रस्सिया वाली घोड़ी) । डीप् के पर रहते भसक्तक अन् के अकार का अल्लोपोऽन (२४७) में लोप हो जाता है ।

द्वे हायने यस्या मा द्विहायनी बाला (दो वर्ष की लडकी) । त्रिहायणी । चतुर्हायणी । आयुवाचक 'हायन' शब्द ही का यहा ग्रहण अभीष्ट है । त्रिहायणी, चतुर्हायणी—इन में णत्व भी वयावाच्य होने पर ही इष्ट है । वयोवाच्य न होने पर डीप् और णत्व दोनों नहीं होते । यथा—त्रिहायना शाला चतुर्हायना शाला । टाप् ही होता है ।

(६) केवल-मामक-भागधेय-पापाऽपर-समानाऽऽयकृत-मुमङ्गल-भेषजाच्च ॥

॥४१॥३०॥

अथ —केवल, मामक, भागधेय, पाप, अपर, समान, आयकृत, मुमङ्गल और भेषज—इन नौ शब्दों में स्त्रीत्व की विवक्षा में नित्य डीप् प्रत्यय हा जाता है सजा या वेद में । अन्यत्र टाप् होगा ।

| शब्द | वेद या सजा में | अन्यत्र लोक में |
|-----------|-----------------------|---------------------|
| १ केवल | केवली | केवला |
| २ मामक | मामकी | मामिका ^१ |
| ३ भागधेय | भागधेयी | भागधेया |
| ४ पाप | पापी | पापा |
| ५ अपर | अपरी | अपरा ^२ |
| ६ समान | समानी ^३ | समाना |
| ७ आयकृत | आयकृती | आयकृता |
| ८ मुमङ्गल | मुमङ्गली ^४ | मुमङ्गला |
| ९ भेषज | भेषजी | भेषजा |

(१०) वा०--पाणिगृहीतो भार्यायाम् ॥

अर्थ —यदि विधिवत् पाणिग्रहण किया गया हो तो उम स्त्री का पाणिगृहीतो (डीप्प्रत्ययान्त) कहना चाहिये अन्यथा पाणिगृहीता (टाप्प्रत्ययान्त) ।^१

१ कि तथा क्रियते लक्ष्म्या या वधूरिव केवला । (पञ्च० २ १३८)

२ सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृति यान्ति मामिकाम् । (गीता० ६ ७)

३ स्त्रोऽस्तसुष्टिरपरा प्रतिभ्राति सा मे । (शाकुन्तल २ १०)

४ समानो मन्त्र समिति समानी समान मन सह वित्तभेषाम् ।

समान मन्त्रमभि मन्त्रये व समानेन वो हविषा जुहोमि ॥

(ऋग्वेद १० १६१ ३)

५ मुमङ्गलीरिय वधूरिमा समेत पश्यत । (ऋग्वेद १० ८५ ३३)

६ पाणिगृहीतो यस्या (विधिवत्) सा पाणिगृहीती भार्या । यस्यास्तु कर्थाञ्चित् पाणिगृह्यते सा पाणिगृहीता ।

(११) सख्यशिश्वीति भाषायाम् । ४।१।६२॥

अर्थ—सखी और अशिश्वी ये दो ङीप्प्रत्यय प्रयोग स्त्रीलिङ्ग की विवक्षा में लौकिकमस्कृत में प्रयुक्त होते हैं ।

सखि (मित्र) शब्द में स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीप् प्रत्यय कर भमज्ञक इकार का लोप करने पर 'सखी' शब्द निष्पन्न होता है । सहेली को सखी कहते हैं । आलि सखी वयस्या च—इत्यमर ।

अविद्यमान शिशुयेंस्या मा अशिश्वी (अनपया मन्निरहिता स्त्री) । यहाँ बहुव्रीहिसमान में 'अशिशु' में ङीप् प्रत्यय कर इको यणचि (१५) में उकार का वकार आदेश करने में 'अशिश्वी' निष्पन्न होता है । अशिश्वी शिशुना बिना—इत्यमर ।

(१२) अन्तर्वन्तपतिवतोर्नुक् । ४।१।३२॥

अर्थ—अन्तर्वन्त तथा पतिवत् प्रातिपदिका की स्त्रीत्व की विवक्षा में नुक् का आगम हो जाता है । आद्यन्तौ टङ्कितौ (८५) परिभाषा के अनुसार यह जागम अन्त-वन्त होता है । नव शब्दों के नान्त ह्रा जाने में ऋन्नेभ्यो ङीप् (२३२) में ङीप् हो जाता है ।

उदाहरण यथा—

अन्तर्वन्त नुक् + ङीप् = अन्तर्वन्ती (मगर्भा स्त्री) ।

पतिवत् नक् + ङीप् = पतिवन्ती (जीविन पतिवाली स्त्री) ।

(१३) पत्युर्नो यज्ञस्योगे । ४।१।३३॥

अर्थ—स्त्रीत्व की विवक्षा में पतिशब्द के इकार को नकार आदेश हो जाता है

१ गृहिणो सचिव मखी मिय प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ ।

करणाविमुखेन मृत्युना हरता त्वा वद कि न मे हृतम् ॥

(-घृ० ८ ६७)

२ अन् + मत्तुप् = अन्तर्वन्त । यहाँ अन्तरुशब्द अविकरण-शक्तिप्रधान अव्यय है अतः प्रथमान्त न होने से इस में मत्तुप् की प्राप्ति नहीं । उम का यहाँ निपातन ममज्ञता चाहिये । मत्तुप् के मकार को वत्व मादुपधायाश्च मनोवैशेष्यादिभ्य (१०६५) में हो जाता है ।

पति + मत्तुप् = पतिवत् । यहाँ मत्तुप् तो प्राप्त है परन्तु वत्व नहीं उम का इस सूत्र में निपातन ममज्ञता चाहिये ।

ध्यान रहे कि अर्थविशेष में ही इस सूत्र की प्रवृत्ति होती है । मगर्भा जय में 'अन्तर्वन्ती' का तथा जीविनभर्तृका के अर्थ में 'पतिवन्ती' शब्द का प्रयोग होता है । अन्तरस्त्यस्या गभं इत्यन्तर्वन्ती गभवन्ती । आपन्नसत्त्वा म्याद् गुबिष्यन्तर्वन्ती च गर्भिणी—इत्यमर ।

पतिरस्त्यस्या इति पतिवन्ती जीवन्पति । पतिवन्ती सभर्तृका—इत्यमर ।

यज्ञ के साथ मयोग गम्यमान हो तो । नकारादेश हो कर प्रातिपदिक नकारान्त हो जाता है तब ऋन्नेभ्यो डीप् (२३२) से डीप् प्रत्यय हो जाता है ।

पत्नी पति के साथ मिल कर यज्ञ की अधिकारिणी होती है और इस तरह यज्ञ के फल की भी भोक्त्री होती है ।

उदाहरण यथा—

यज्ञमानस्य पत्नी । वसिष्ठस्य पत्नी अक्षमाला । याज्ञवल्क्यपत्नी मैत्रेयी ।

यज्ञसयोग गम्य न होने पर नहीं होता । यथा—ग्रामस्य पतिरिय ब्राह्मणी (यह ब्राह्मणी ग्राम की स्वामिनी है) ।

पत्नीव पत्नी—ऐसा औपचारिक प्रयोग भी होता है । यथा—वृषलस्य पत्नी । शूद्रस्य पत्नी ।^१

(१४) विभाषा सपूर्वस्य ।४।१।३४॥

अर्थ—पूर्वपद से युक्त पतिशब्दान्त प्रातिपदिक को स्त्रीत्व की विवक्षा में विकल्प से नकारादेश होता है । जहाँ नकार आदेश होगा वहाँ ऋन्नेभ्यो डीप् (२३२) से डीप् होगा । नकार के अभाव में वैसे का वैसा रूप रहेगा ।

उदाहरण यथा—

गृहस्य पति —गृहपत्नी गृहपतिर्वा ।

सभाया पति —सभापत्नी सभापतिर्वा ।

बहुव्रीहिसमाम मे भी इस सूत्र की प्रवृत्ति हो जाती है—

वृद्ध पतिर्यस्या सा वृद्धपत्नी वृद्धपतिर्वा । जीवतीति जीव पचाद्यच् । जीव पतिरस्या इति जीवपत्नी जीवपतिर्वा ।

(१५) नित्य सप्तयादिषु ।४।१।३५॥

अर्थ—सपत्नी आदि शब्दा की सिद्धि के लिये इनकार के स्थान पर पूर्वोक्त नकार आदेश नित्य हो जाता है । पूर्वसूत्र में विकल्प के प्राप्त होने पर इस सूत्र में नित्य विधान कर रहे हैं ।

उदाहरण यथा—

समान पतिरस्या इति सपत्नी^२ (समान पति वाली, सौत) । त्रिपातन म समान' को 'स' आदेश हो जाता है ।

इमीप्रकार—एक पतिरस्या इति एकपत्नी । वीरपत्नी ।

(१६) नासिकोदरोष्ठ-जङ्घा-दन्त-कर्ण-शृङ्गाच्च ।४।१।३५॥

अर्थ—नासिका, उदर, ओष्ठ, जङ्घा, दन्त, कर्ण और शृङ्गा—ये जो स्वाङ्ग-

१ पत्नीमूल गृह पुसा यदि छन्दोऽनुवर्तिनी ।

गृहाश्रमसम नास्ति यदि भार्या वशानुगा ॥ (आष्टकोप से उद्धृत)

२ कृष प्रियसशोर्वृत्ति सपत्नीजने—(शानुत्तल ४ १७) ।

वाचक उपसर्जन शब्द, तदन्त प्रातिपदिको सं स्त्रीत्व की विवक्षा में विकल्प में डीप् हो जाना है । पक्ष में अदन्तलक्षण टाप् होता है ।

उदाहरण यथा—

तुङ्गनासिकी, तुङ्गनामिका ।

कृशोदरी, कृशोदरा ।

बिम्बोष्ठी, बिम्बोष्ठा ।^१

मुजङ्घी, मुजङ्घा ।

ममदन्ती, ममदन्ता ।

चारकर्णा, चारकर्णा ।

तीक्ष्णशृङ्गी, तीक्ष्णशृङ्गा ।

जोष्ठ, जङ्घा, दन्त, कण और शृङ्ग—ये पाञ्च शब्द स्वाङ्गवाचक होते हुए भी स्यागोपध हैं, स्वाङ्गान्चोपसर्जनाद्ययोगोपधात् (१२६५) सूत्रद्वारा इन से वैकल्पिक डीप् प्राप्त न था अत इन में विधान किया गया है । नामिका और उदर ये दो अनेकाच् स्वाङ्गवाची हैं इन में स्वाङ्गाच्चोप० (१२६५) द्वारा प्राप्त वैकल्पिक डीप् का न ऋडादिवह्वच (१२६६) द्वारा निषेध होना था अत इस सूत्र में इन का पुनर्विधान किया गया है ।

प्रकृतसून में 'च' के ग्रहण के कारण कुछ अप्र मयोगोपधो स भी वैकल्पिक डीप् की प्रवृत्ति हो जाती है । यथा—मृदङ्गी-मृदङ्गा, मुगात्री-मुगात्रा, रक्तकण्ठी-रक्तकण्ठा, कल्याणपुच्छी-कल्याणपुच्छा । अत एव वार्तिककार ने कहा है—अङ्ग-गात्र-कण्ठेभ्य इति वक्तव्यम् (वा०) पुच्छाच्चैति वक्तव्यम् (वा०) ।

कुण्डोष्ठी, ष्ठी आदि शब्द बहुत दूध देने वाली गाय के लिय प्रसिद्ध हैं । कुण्डमिव ऊग्र^३ (गार्गानम) यस्या मा कुण्डोष्ठी (कुण्ड का तरह बड़े = हवाने वाली गाय) । 'कुण्ड मु - ऊग्रम् सु' इम अलौकिकविग्रह में अनेकमन्यपदार्थों (६६६) सूत्र में बहुव्रीहिममाम हा मुब्लुक करने में—कुण्डोग्रम् । जब ऊपसोर्जेड् (५४११)^४ सूत्र

१ तुङ्गे नासिके यस्या मा तुङ्गनामिकी तुङ्गनामिका वा । यहा नामिका को बहुव्रीहि-ममाम स उपसर्जनह्रस्व हुआ है तथा 'तुङ्गा' पद को पुबङ्गाव । इसीप्रकार सुन्दरी जङ्घे यस्या मा मुजङ्घी मुजङ्घा वा' में उपसर्जनह्रस्व समझना चाहिये ।

२ बिम्बमिव (बिम्बफलमिव) जोष्ठी यस्या मा बिम्बोष्ठी बिम्बोष्ठा वा । ओत्वोष्ठयो समासे वा (वा०) इम वार्तिकद्वारा यहा वैकल्पिक पररूप हाता है । पक्ष में वृद्धि भी हो जाती है—बिम्बोष्ठी, बिम्बोष्ठा वा ।

३ ऊघस्तु क्चीवमापीनम् इत्यमर ।

४ अर्थ —ऊग्रमशब्दान्त बहुव्रीहिममाम म ऊग्रम् के सकार को अर्नड् आदेश हो जाना है स्त्रीत्व की विवक्षा में ।

में ऊधम् के अन्त्य अल् मकार को समामान्त अर्नेट् आदेश हो जाता है—कृण्डोघ अर्नेट् = कृण्डोघ अन् = कृण्डोघन् (अतो गुणे मे पररूप) । अब यद्वा अग्रिममूत्र प्रवृत्त होता है—

(१७) बहुव्रीहेरूधसो डीष् । ४।१।२५॥

अर्थ—ऊधम् (हवाना, चड्डा) शब्द जिस के अन्त में हो ऐमे बहुव्रीहिसमाम में स्त्रीत्व की विवक्षा में डीष् प्रत्यय हो जाता है ।

‘कृण्डोघन्’ के अन्त में एकदेशविकृतमनग्यवत् के अनुमार ऊधस् शब्द विद्यमान है और यह बहुव्रीहिसमास भी है अतः प्रकृतमूत्र से डीष् प्रत्यय हो कर अल्लोपोऽन (२४७) से भसव्जक अन् के अकार का लोप कर विभक्ति साने से ‘कृण्डोघनी’ प्रयोग सिद्ध हो जाता है । इसीप्रकार—घट इव ऊधो यस्या सा घटोघनी^३ गौ ।

— ० —

अभ्यास [२]

(१) निम्नलिखित गणसूत्रो तथा वार्तिको की सोदाहरण व्याख्या करे—

१ शूद्रा चाऽमहत्पूर्वा जाति । २ श्वशुरस्योकाराकारलोपश्च । ३ नृनरयोर्वृद्धिश्च । ४ योषघप्रतिषेधे ह्य-गवय० । ५ मत्स्यस्य ड्याम् । ६ पाणिगृहीती भार्यायाम् । ७ वनो न ह्य इति वक्नव्यम् ।

(२) निम्नस्थ सूत्रो की सोदाहरण व्याख्या करे—

१ जातेरन्वीविषयाद्० । २ स्वाङ्गाच्चोप० । ३ ऊरुतरपदादोपम्ये । ४ सहितशफलक्षणवामादेश्च । ५ न त्रोटोदिवह्वश्च । ६ युनस्ति । ७ ऊटुत । ८ इतो मनुष्यजाते । ९ शाङ्ग रवाद्यजो डीन् । १० पन्युर्नो यज्ञमयोगे । ११ वनो र च । १२ अन उपधालोपिनोऽन्यतरस्याम् । १३ सद्यशिश्वीति भाषायाम् । १४ अन्यतो डीप् । १५ नित्य मपत्यादिपु । १६ दामहापनान्ताच्च । १७ मन । १८ अन्ववत्स्वि-वनोर्नुक् । १९ नामिवोदरोष्ठ० । २० पूर्वपदात्मजायामग । २१ नद्यमुखात्सजायाम् । २२ पादोऽन्यतरस्याम् । २३ बहुव्रीहेरूधसो डीष् । २४ केवलमामक० ।

(३) निम्नलिखित युगलो में अर्थ का अन्तर स्पष्ट करे—

१ शूद्री—शूद्रा । २ सुमुखी—सुमुखा । ३ शर्पणया—शर्पणायी ।

१ भुव कोष्णेन कृण्डोघनी मेघ्येनावभुधादपि ।

प्रस्नवेनाभिवर्षन्ती वत्सालोऽर्वात्तिना ॥ (रघु० १ ८४)

२ अयंकपेनोरपराघचण्डाद् गुरो कृशानुप्रतिमाद् बिर्भेपि ।

शक्योऽस्य मयुर्भवंता विनेतु गा कोटिश स्पर्शयता घटोघनी ॥ (रघु० २ ४६)

४ युवति—युवती । ५ पाणिगृहीती—पाणिगृहीता । ६ केवरी—
केवला । ७ ममानी—ममाना । ८ त्रिहायता—त्रिहायती ९ नारी—
नरी । १० त्रिपदी—त्रिपादी ।

(४) व्याख्या करें—

[क] अमजोपगान् किम् ? मुगुत्ता ।

[ख] उपमर्जनात् किम् ? शिखा ।

[ग] जाते किम् ? मुग्धा ।

[घ] जयोपगान् किम् ? जयवृत्रांशुगी ।

[ङ] जरोपगान् किम् ? क्षत्रिणा ।

[च] मजाया किम् ? ताम्रनुषी कन्या ।

[छ] अम्त्रीत्रिपदात् किम् ? वराका ।

(५) डीप् डीप्, डीन्—इन में अनुवचनेद के कारण स्फमिद्धि पर क्या प्रभाव पड़ता है ?

(६) निम्नलिखित प्रातिपदिकों के स्त्रीविद्ध रूप मूल्य सिद्ध करें—

१ चतुष्पाद । २ कामलाङ्ग । ३ पद्मदुग्धन् । ४ बह्वचन । ५ न

६ मीमन् । ७ कुण्डोष्णम् । ८ वामलाचन । ९ न । १० नृप ।

११ नट । १२ मञ्जि । १३ पतिमन् । १४ भामक । १५ गन्ध ।

१६ मघवन^३ । १७ सुवक्त्र । १८ आम्ब । १९ मनापति ।

१ ममापमिति भामक । युक्तदन्तदोरयनरत्न्या गज्ज (१०७६) सुवक्त्रा म्भम्
में अण्, तद्वकममकावेकवचने (१०८१) में जन्मद की 'ममक' मवादिज आदिवृद्धि
तथा भमजक उकार का लोप कर विभक्ति लाने में भामक प्रयोग निश्चय
होना है । स्त्रीत्व की विज्ञा में 'मामक' में टोप् कर भामकनरकयोत्पमभ्यानम
वार्तिक में ककार ने पूर अकार का इन्द्र का विभक्ति लाने में—मामिका ।
ममेपम्—मामिका ।

२ स्त्रीत्व की विज्ञा में श्वन म पिदगौरादिभ्यश्च (१०५५) द्वारा टोप प्रत्यय
श्वपुवमघोनामतद्धिते (२६०) में ककार का उकार सम्प्रसारण तथा पूर्वस्व
(२५८) कर विभक्ति लाने में 'शुनी' प्रयोग सिद्ध हो जाता है ।

३ मघोन् स्त्री—मघोनी । मघवन इन्द्र म स्त्रीत्व में ऋन्नेभ्यो डीन् (२३२) में
टीप्, श्वपुवमघोनामतद्धिते (२६०) में ककार को सम्प्रसारण उकार पूर्वस्व तथा
आह् गुण (२७) में गुण च्च विभक्ति लाने में—मघानी (इन्द्र की पत्नी) ।
मघवा बहुवन् (२८८) द्वारा तूत्ववक्ष में उगिनश्च (१२५०) द्वारा टोप् करन
में 'मघवनी' भी बनता ।

(७) अव्योनिदिष्ट रूपा की समूह सिद्धि करे—

- १ पङ्गू । २ कुरू । ३ दाक्षी । ४ वामोत् । ५ ब्राह्मणी । ६ नारी । ७ मत्सी । ८ ह्यी । ९ श्वश्रू । १० करभोत् । ११ शाङ्गरेवी । १२ युवति । १३ वैदी । १४ अतिवेशी-अतिवेशा । १५ शृणखा । १६ वट्वृची । १७ कत्याणक्रोडा । १८ कुण्डोघ्नी । १९ जवावा (जवावरी) । २० क्षत्रिया । २१ अशिष्वी । २२ अन्नवल्नी । २३ सपत्नी । २४ मुपदी । २५ विम्बोष्ठी-विम्बोष्ठा ।

(८) निम्नस्थ दा कारिकाओ की मोदाहरण व्याख्या करे—

- (क) अद्रव मूर्तिमस्वाङ्ग प्राणिस्यमविकारजम् ।
अतस्थ तत्र दृष्ट च तेन चेत्तथायुतम् ॥
- (ख) आकृतिग्रहणा जाति लिङ्गाना च न सबभक्तः ।
सकृदात्पातनिर्घाहा गोत्र च चरणं सह ॥

(९) निम्नस्थ प्रश्नो का सहेतुक उत्तर दीजिये—

- [क] 'सुम्बेदा' म स्वाङ्गलक्षण टोप् क्यो नहीं होना ?
[ख] किन किन योपधा में जानिलक्षण टोप् अनुमत है ?
[ग] वैदी में अजन्तत्वात् टिड्ढाणञ्० में टोप् क्यो नहीं होना ?
[घ] 'हस्तिस्वाम्यूर' में ऊङ् की प्रवृत्ति क्या नहीं होती ?
[ङ] मजा होते हुए भी 'रघुनाथ' म पूर्वपदात्० म पत्व क्या नहीं ?
[च] बहुवो युवानो यस्या सा बहुयुवा । यूनस्ति द्वारा 'ति' प्रत्यय क्या नहीं हुआ ?
[छ] यूनस्ति सूत्र को तद्धिता के अधिकार म क्यो पढा गया है ?
[ज] पूर्वपदात्सनायामग म 'अग' क्यो कहा गया है ?
[झ] यज्ञयोग के बिना 'शूद्रस्य पत्नी' कैसे उपपन्न होना है ?
[ञ] ऊङ् तो में स्वाद्युत्पत्ति कैसे हो जाती है ?
[ट] पीवरोत्, करभोपमोत् — इन में ऊट का प्रयोग शुद्ध है या अशुद्ध ?
[ठ] जब 'नृ' में 'नारी' बन गया तो 'नर' से पुन क्यो बनाते हैं ?
[ड] 'मुमुखा शाला' यहा स्वाङ्गलक्षण टोप् क्यो नहीं होना ?
[ढ] 'आखु' में ऊङुत्त द्वारा ऊङ् क्यो नहीं होना ?
[ण] पिपीलिका, मक्षिका आदियों में जानिलक्षण टोप् क्यो नहीं हुआ ?

(१०) 'मुजघना' में जानिलक्षण टोप् नहीं होता परन्तु 'कृशोदरी' में हो जाता है—इस वैषम्य का क्या कारण है ?

(११) मामक् शब्द अणप्रत्ययान्त है । स्त्रीत्व में टिड्ढाणञ्० (१२५१) द्वारा टोप् हो कर 'मामकी' क्यो नहीं बनता ? 'मामिका' क्यो बन जाता है ?^१

१ 'मामकी' प्रयोग वेद में या मजा म होना है । परन्तु लोक में केवलमामक० (४१३०) इस नियम के कारण टोप् न होकर टाप् होता है ।

[लघु०] इति स्त्रीप्रत्ययप्रकरणम् ॥

यहा पर स्त्रीप्रत्यया का प्रकरण समाप्त हुना है ।

[लघु०] शास्त्रान्तरे प्रविष्टानां बालानां चोपकारिका ।

कृता वरदराजेन लघु-सिद्धान्त-कौमुदी ॥

अन्वय — शास्त्रान्तरे प्रविष्टानाम् अप्रविष्टानां च बालानाम् उपकारिका (इत्) लघुसिद्धान्तकौमुदी वरदराजेन कृता (वेदिनव्या) ।

अर्थ — चाहे हमारे शास्त्रों में प्रवेश हुआ हो या न हुआ हो बालकों को व्याकरण का बोझ कराने में उपकारक यह लघुसिद्धान्तकौमुदी वरदराज (राजाय) ने बनाई है ।

व्याख्या — 'शास्त्रान्तरे प्रविष्टानाम्' का दूसरा छेद 'शास्त्रान्तरे + अप्रविष्टानाम्' भी यहा 'च' के चल में अभीष्ट है । 'बालानाम्' में अभिप्राय यहा दृष्ट-धीने या अव्योम बालकों में नहीं, अपितु व्याकरण में अनभिज्ञ छात्रों में है । ऐसे छात्र दो प्रकार के हो सकते हैं । (१) अन्यशास्त्रों में प्रविष्ट अर्थात् अन्य शास्त्रों का ज्ञान रखने वाले तथा (२) त्र्यशास्त्रों में अप्रविष्ट अर्थात् अन्य शास्त्रों का ज्ञान न रखने वाले । दोनों प्रकार के व्याकरणानभिज्ञ छात्रों को लघु-सिद्धान्त-कौमुदी के माध्यम से व्याकरण-ज्ञानरूप लाभ पहुँचाना — ऐसी वरदराजों की मान्यता है ।

[लघु०]

इति श्रीवरदराजकृता

लघु-सिद्धान्त-कौमुदी

समाप्ता ॥

इति सूक्तपूर्वाखण्डभारताखण्डगत-सिन्धुसप्तवर्षि-डेराइस्माईल-

खानास्थानगरवास्तव्य-भाटियावशावतस-श्रीमद्रामचन्द्र-

वर्मसूनुना एम ए साहित्यरत्नेत्याद्यनेकोपाधिभूता

वद्येन भीममेनशास्त्रिणा विरचिताया

लघुसिद्धान्तकौमुद्या भूमौव्याख्याया

स्त्रीप्रत्ययप्रकरणात्मक षष्ठी

भाग पूर्वसमाप्ता ॥

१ अयम् शास्त्रम्—शास्त्रान्तरम् । मयूख्यनकादिकान् समाम् । इन्मिन् = शास्त्रान्तरे ।

अथ परिशिष्टानि

- [१] शुद्धाऽशुद्धबोधक-शतकम्
- [२] स्त्रीप्रत्ययप्रकरणगताष्टाध्यायीसूत्र-
तालिका
- [३] स्त्रीप्रत्ययप्रकरणान्तर्गतवार्तिकादि-
तालिका
- [४] उदाहरण-तालिका
- [५] स्त्रीप्रत्ययप्रकरणोपयोगि अष्टाध्यायी-
सूत्रपाठ
- [६] विशेष-द्रष्टव्य-स्थल-तालिका
- [७] विशेष-स्मरणीय-पद्यमाला
- [८] स्त्रीप्रत्ययविधायकमुख्यसूत्राणि
- [९] सक्षिप्त पाणिनीयं लिङ्गानुशासनम्

[१] परिशिष्टे—शुद्धाऽशुद्धबोधकशतकम्

[इस परिशिष्ट में विद्यार्थियों को स्त्रीप्रत्ययों के विषय में सावधान एवं चौकना रखने के लिये शुद्धाऽशुद्धमिश्रित प्रायः स्वनिर्मित एक सौ पद्यखण्डों का समायोजन किया गया है। इन में स्त्रीप्रत्ययविषयक विवेच्य पदों को सूक्ष्म टाइप में दर्शाया गया है। प्रत्येक पद्यखण्ड के नीचे विवेच्य पदों का साधुत्व वा असाधुत्व सहेतुक सरल भाषा में खोल कर समझाया गया है। विद्यार्थियों को इस परिशिष्ट के अभ्यास से अग्र भी अशुद्धियों के पकड़ने में महती निपुणता प्राप्त होगी।]



(१) प्राणानामांपवरी मे त्व जीवताच्छरद शतम् ॥

विवेचन—ईशु घातु से स्थेश-भास-पिस कसो वरच् (३२ १७५) मूत्रद्वारा वरच् प्रत्यय करने पर 'ईश्वर' शब्द निष्पन्न होता है। स्त्रीत्व में अदन्तलक्षण टाप् करने में 'ईश्वरी' होना चाहिये। यदि यहा औणादिक वरट् (उणा० ५ ५७) प्रत्यय मानें तो टिट्ढाणञ्० (१२५१) से टित्वलक्षण डीप् हो कर उपयुक्त प्रयोग भी युद्ध कहा जा सकता है।

(२) नश्वरा सम्पद प्राप्य को धयो भुवि मानव ॥

विवेचन—नश्घातु से इण्-नश् जि-सत्तिभ्य क्वरप् (३२ १६३) मूत्रद्वारा ताच्छौलिक क्वरप् प्रत्यय करने पर 'नश्वर' शब्द निष्पन्न होता है। स्त्रीत्व में टिट्ढाणञ्० (१२५१) मूत्रद्वारा डीप् प्रत्यय करने में 'नश्वरी' प्रयोग बनेगा। अतः यहा 'नश्वराम्' के स्थान पर 'नश्वरीम्' होना चाहिये।

(३) इय शैलिर्महाक्लिष्टा शब्दजालसमन्विता ॥

विवेचन—शैले भवा शैली, शैलादागता वा शैली। शैलशब्द से जणु प्रत्यय हो कर स्त्रीत्व की विवक्षा में टिट्ढाणञ्० (१२५१) मूत्र में डीप् करने पर शैली प्रयोग होना चाहिये।

(४) भक्तिरस्तु समानी मे देवयोहभयोरपि ॥

विवेचन—केवल-सामक-भागधेय-पापाऽपर-समानाऽऽर्य-वृत सुमङ्गल-भेदजाच्च (४ १ ३०) इस मूत्र में मज्ञा या वेद में ही डीप् का विधान किया गया है, अतः लोक में अग्र टाप् ही होता है। इस प्रकार यहा 'समाना' होना चाहिये, 'समानी' नहीं।

(५) समदृष्टेर्भवत्येव सर्वा सुखमया दिशा ॥

विवेचन—सुखमयशब्द मयट्प्रत्ययान्त है अतः टिट्ढाणञ्० (१२५१) में टित्वलक्षण डीप् हो कर 'सुखमयी' शब्द का प्रथमावटुवचन 'सुखमय्य' प्रयोग होना

चाहिये । दिशब्द में भागुरिमत के अनुसार' आप् (आ) हो कर 'दिशा' शुद्ध प्रयोग है ।

(६) दशामेतादृशा प्राप्य नि स्वो याति यमालयम् ॥

विवेचन—'एतादृश' शब्द त्यदादियु दृशोऽनालोचने कञ्च (३४७) सूत्रद्वारा कञ्प्रत्ययान्त निष्पन्न हुआ है । अतः स्त्रीत्व में टिडढाणञ्० (१२५१) द्वारा डीप हो कर 'एतादृशीम्' होना चाहिये ।

(७) मूर्तिभयङ्करी तस्य प्रत्यह समजायत ॥

विवेचन—'भयङ्कर' शब्द मेघातिभयेषु कृञ् (३२४३) द्वारा खचप्रत्ययान्त निष्पन्न हुआ है, अतः डीप् की अप्राप्ति में अदन्तलक्षण टाप् हो कर 'भयङ्करा' प्रयोग होना चाहिये ।

(८) इय श्रुपनखी कन्याःश्वेति श्रुपणखामपि ॥

विवेचन—श्रुप इव नखा यस्या' इस यौगिक अर्थ में स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसयोगोपधात् (१२६५) सूत्रद्वारा विकल्प से डीप् हो (पक्ष म टाप्) कर 'श्रुपनखी' या 'श्रुपनखा' दो रूप मिश्र होत हैं । परन्तु जब यह मज्ञा हो तब नखमुखात्मज्ञायाम् (१२६७) में डीष् का निषेध हो कर अदन्तलक्षण टाप् ही हाता है । किञ्च पूर्वपदात्सज्ञायामग (१२६८) से नकार को णकार भी मज्ञा-अवस्था में हो जाता है—श्रुपणखा (गवण की बहन का नाम) ।

(९) तावकीय मतिस्तात विपरीता तु मामकी ॥

विवेचन—तावाय तावक, ममाय मामक । एकवचनान्त युष्मद् और अस्मद्

१ जैमाकि कहा है—

वष्टि भागुरिरल्लोपमवाप्योरुपसर्गयो ।

आप चंच हलन्ताना यथा वाचा निशा दिशा ॥

भागुरि आचाय कुद्धेक हलन्तरनीलिङ्गो में भी आप् (आ) प्रत्यय की उत्पत्ति मानते हैं । यथा—

वाच् (वाणी) भागुरिमते—वाच् + आ (आप्) = वाचा ।

निश् (रात्रि) भागुरिमते—निश् + आ (आप्) = निशा ।

दिश् (दिशा) भागुरिमते—दिश् + आ (आप्) = दिशा ।

इमीप्रकार—क्षुध्—क्षुधा, गिर्—गिरा, तृप्—तृपा, रज्—रजा, मुद्—मुदा, प्रनिपद्—प्रनिपदा, वीरध्—वीरधा, दृग्—दृशा, शुच्—शुचा, रप—रपा, विपद—विपदा, आपद्—आपदा, रच्—रचा, मृद्—मृदा, त्वच्—त्वचा, ऋच्—ऋचा, त्विप्—त्विपा, इत्यादि ।

इस मत का विवेचन इस व्याख्या के प्रथमभागस्थ अवयवप्रकरण के अन्त में किया जा चुका है वही देखें ।

शब्दों में शैथिल्य ज्यों में अणु प्रत्यय हो कर तद्वक्त्रममकावेकवचने (१०८१) से उन का क्रमशः तवक् और ममक् आदेश कर जादिवृद्धि आदि काय करने में 'तावक्, मामक्' प्रयोग भिन्न होने हैं। स्त्रीत्व की विवक्षा में अणुप्रत्ययान्त होने के कारण तावक् में टौप् हो 'तावकी' रूप भिन्न हो जाता है। मामक् शब्द भी यद्यपि अणुप्रत्ययान्त है तथापि क्वेचन-मामक् भागधेय० (४१३०) टम सूत्रद्वारा मजा और वेद में हा शीघ्र विग्रह के निग्रह के कारण अन्यत्र टौप् न हो कर अदन्तत्वज्ञ टाप् ही होता है। तत्र मामक्तरक्थोरूप-महयानम् इम वार्तिक में ककार में पूव अच् का दकार आदेश हो 'मामिका' प्रयोग भिन्न होता है। जन यहा 'मामकी' के स्थान पर मामिका हाना चाहिये। 'तावकी' प्रयोग शुद्ध है।

(१०) शूद्रा-शूद्रा-महाशूद्रा-शब्दतत्त्व निरूपण ॥

विवेचन—'शूद्र' शब्द जातिवाचक है अतः इस में स्त्रीत्व की विवक्षा में जातेरस्त्रीविषयाद्० (१२६६) में टौप् प्राण्य हाना है। परन्तु जडादिगण में पठित शूद्रा चाञ्चमहत्पूर्वा जाति इस गणमूत्र के कारण उन का बाध हो कर टाप् हा जाता है—शूद्रा (शूद्रजाति की औरत)। गणमूत्र में 'महत्पूर्वा' कहा गया है जन महत्त्वपूर्व में होगा तो टाप् न हो कर जातिगण टौप् ही होगा—महाशूद्रा (अश्रीजाति की औरत)। परन्तु पुयोग में तो पुयोगवाक्यायाम (१२६१) में टौप् होगा ही—शूद्रम्य भार्या शूद्रा (शूद्र की पत्नी)।

(११) तरुणा रूपवन्ती चेत्सादर बोधयतेऽखिलं ॥

विवेचन—तरुणशब्द में स्त्रीत्व की विवक्षा में तदन्तस्त्रीकृत्युस्तरुण० (वा० १०१) वार्तिक में टौप् हो कर तरुणी प्रयोग भिन्न होता है। 'रूपवती' शब्द मनुष्यप्रत्ययान्त होने से उगित् ह जत् उगितश्च (१२५०) द्वारा टौप् हा कर रूपवती प्रयोग बनना है, नुंम् का जागम किमो नगृह प्राप्त नहीं।

(१२) युवानो बहवो यस्या ज्ञेया बहूयुवा पुरी ।

विवेचन—यूनस्ति (१२७६) सूत्र अनुपसर्जनात् (४११४) के अधिकार में पडा गया है जन यहा बहुव्रीहिममाम में युवने शब्द के उपसर्जन होने के कारण स्त्रीत्व में 'नि' प्रत्यय नहीं हुआ।

(१३) शाकनीवया तथा देव्या रिपुसय पराजितम् ॥

विवेचन—शाकनीवया के स्थान पर 'शाकनीव्या' हाना चाहिये। अस्मिन् प्रहणमस्या 'इम अर्थ में अस्मिन् शब्द में शक्तिपठपोरीकक् (४४५६) सूत्रद्वारा ईकक् प्रत्यय हो कर 'शाकनीक' शब्द निष्पन्न हाना है। इस में स्त्रीत्व की विवक्षा में तदन्तस्त्रीकृत्यु (वा० १०१) वार्तिक में टौप् करने पर शाकनीकी प्रयोग बनता है।

(१४) पाण्डुपत्रसमाच्छन्ता पाण्डवी भूमिरजायत ॥

विवेचन—'पाण्डवी' जशुद्ध है पाण्डु होता चाहिये। पाण्डुशब्द उदन्त गुण-वाचक है। स्त्रीत्व की विवक्षा में घोटो गुणवचनान् (१०५६) में प्राप्त टौप् का

खत्मयोगोपधान्त (वा०) वार्तिक मे निषेध हो जाता है । अदन्त न होने से टाप् भी नहीं होता ।

(१५) भूपालिन्या तथा वत्त भूत्याय विपुल धनम् ॥

विवेचन—‘भूपालिन्या’ के स्थान पर ‘भूपालिकया’ हाना चाहिये । भूपानक-शब्द मे स्त्रीत्व म पुषोभादाख्यायाम् (१२६१) मूनद्वारा प्राप्त डीप् का पालकान्तात् (वा० १०२) वार्तिकद्वारा निषेध हा जाता है । तब अदन्तलक्षण टाप् हो कर प्रथम-स्थान् कात्पूर्वस्यात्० (१२६२) सूत्र से इत्त्व वरन पर भूपालिका’ शब्द उपपन्न होता है । भूपालकस्य स्त्री भूपालिका, तथा = भूपालिकया ।

(१६) सम्मान्या विदुषा नारी धर्माधर्मं विजानती ॥

विवेचन—यदि यहा नारी का वैदुष्य विवक्षित हो तो वमुप्रत्ययान्त विद्वम-शब्द मे स्त्रीत्व मे उगितश्च (१२५०) द्वारा डीप् प्रत्यय कर सम्प्रसारण आदि करने मे ‘विदुषी’ बनना चाहिये । परन्तु पुरुष के वैदुष्य के विवक्षित होने पर यथोक्त प्रयोग तृतीयात्तया ठीक ही मानना चाहिये ।

(१७) हयया यात्यय दूतो बहुदूरतर धनम् ॥

विवेचन—‘हय’ शब्द गौरादिगण मे पढा गया है अन पिद्गौरादिभ्यश्च (१२५५) मून म डीप् हो कर ‘हयो’ शब्द बन कर तृतीया के एकवचन म ‘हय्या’ बनेगा । अथवा—योपधप्रतिषेधे हय-गवय मुख्य-मनुष्याणामप्रतिषेध (वा० १११) इम वार्तिक की म्हायना से जातेरस्त्रीविषयादयोपधात् (१२६६) मून से जातिलक्षण डीप् हो कर ‘हयो’ बनना चाहिये । तृतीयैकवचन म ‘हय्या’ बनेगा ।

(१८) तादृशी सम्पद प्राप्य मानव को न गवित ?

विवेचन—यहा ‘तादृशीम्’ के स्थान पर ‘तादृशाम्’ होना चाहिये । तादृश-शब्द दूशे वसश्च वक्तव्य (वा०) वार्तिकद्वारा वसप्रत्ययात् निष्पन्न होता है, इस वउप्रत्ययान्त ममज्ञता भूल है । अत यहा टिड्ढाणम्० (१२५१) द्वारा डीप् न हा कर अदन्तलक्षण टाप् ही होता है ।

(१९) कोकिलीकूजित श्रुत्वा हृष्यति सर्वमानवा ॥

विवेचन—कोकिल’ शब्द अजादिगण मे पढा गया है अन जानिलभण डीप् का बाध हा कर अजाद्यतष्टाप् (१२४६) से टाप् हो जायेगा—कोकिलाकूजितम् ।

(२०) नयत्प्रशिशुर्गप्येषा काल शार्तेन चेतसा ॥

विवेचन—अविद्यमान शिशुरस्या’ इम बहुव्रीहिसमास मे ‘अशिशु’ बन कर स्त्रीत्व की विवक्षा मे सशिशुश्चोति भाषायाम् (४१६२) म डीपन्त ‘अशिश्वी’ तिपातन किय जाना है । अत यहा ‘अशिशु’ के स्थान पर अशिशवा प्रयुक्त करना चाहिये । शिशुश्चोति = मन्तनिहीना स्त्री ।

(२१) भार्या पाणिगृहीत्येव शस्यते सर्वंभुभि ।

सर्व पाणिगृहीता चेल्लोके भवति निन्दिता ॥

विवेचन—पाणिगृहीतो-म्या (यदाविधि) इति बहुव्रीहि । पाणिगृहीतो भार्या याम् (वा०) इस वाक्यिक स ङीप्त्वं 'पाणिगृहीतो' शब्द निपातित किया जाता है । जिम का विधिवत् पाणिग्रहण नहीं हुआ होना वह 'पाणिगृहीता' कहानी है ।

(२२) घत्ते चन्द्राननी गर्भं राजवशविवृद्धये ॥

विवेचन—'चन्द्राननी' के स्थान पर 'चन्द्रानना' होना चाहिये । स्वाङ्गाच्चो-पसर्जनादसपोपोपधात् (१२६५) में प्राप्त स्वाङ्गलक्षण ङीप् का न ऋडादिवृद्ध (१२६६) में निपे-ऽ हो जाता है । तब अदन्तलक्षण टाप् हा कर 'चन्द्रानना' प्रयोग उपपन्न होना है ।

(२३) जाह्नवी गृहाद्बहिरकार्या ग्रन्थागाराद्विरोदत ॥

विवेचन—आधु (चूहा) शब्द उदत होना हुआ भी गुणवचन नहीं अन म्ब्रीम्ब की त्रिवधा म बोतो गुणवचनात् (१२५६) द्वारा ङीप् प्राप्त नहीं होना । इसलिये यहा स्त्रीलिङ्ग में भी आधु ही रहेगा ।

(२४) सर्वा-ऽवश्यकना ज्ञाप्या त्यक्तलङ्गेन श्रीमता ॥

विवेचन—अवश्यम्भाव —आवश्यकम् । द्वन्द्वमनोज्ञादिन्पश्च (५११३०) मूत्रद्वारा मनोज्ञान्तगत हान के कारण 'अवश्यम्' अव्यय से भाव म बुज् प्रत्यय, आदिवृद्धि बु को ङक आदेश तथा अव्ययाना भमात्रे टिलोप (वा०) से टि का नाप कर 'आवश्यकम्' प्रयोग उपपन्न होता है । बुज् द्वारा भाव के उक्त होन पर दुवाग त्वन्तल का प्रयोग अनुचित है । आवश्यकम् अस्त्यग्यति आवश्यकम्, यहा मन्वथ में अर्शजादिभ्योऽच् (११६५) द्वारा अच् प्रत्यय हुआ है । आवश्यकम् = अवश्य हाने वाला कार्य, वस्तु जादि । यही यहा विवक्षित है । अत यहा 'सर्वमावश्यक ज्ञाप्यम्' ऐसा लिखना उचित है ।

(२५) विम्बोष्ठी चारुकर्णा या समदन्ती कृशोदरी ।

मुजङ्घी चापि चेन्ल्लोके नून रूपवती हि ,सा ॥

विवेचन—नासिकोदरीप्लजङ्घावन्तकणशृङ्गाच्च (४१५५) मूत्र म वैकल्पिक ङीप् का विज्ञान जाना है, पर म अदन्तलक्षण टाप् भी होगा । यथा—तुङ्गनामिका-तुङ्गनामिका कृशोदरी-कृशादरी, विम्बोष्ठी विम्बोष्ठा मुजङ्घी-मुजङ्घा, समदन्ती-समदन्ता चारुकर्णी-चारुकर्णा, नीक्षणशृङ्गी-नीक्षणशृङ्गा । मूत्रगत चकार म कुछ जय स्थानो पर भी—मृङ्ङी-मृङ्ङा मुगानी-मुगाना रक्तकण्ठी रक्तकण्ठा । अन उपर्युक्त प्रयोग गृह्य हैं ।

(२६) मुङ्ङी शस्यते धेनुन्नीक्षणशृङ्गा तु निर्दिता ॥

विवेचन—पूर्वोक्तमूत्र म शृङ्गा शब्द का भी पाठ है जन ङीप् का वैकल्पिक विज्ञान होना है, पक्ष में टाप् भी होगा । मुङ्ङी मुङ्ङा नीक्षणशृङ्गी-नीक्षणशृङ्गा ।

(२७) पित्त तुल्यनमी म्पे मदशी न गुणोद्वियम् ॥

विवेचन—'मद' शब्द त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ्च (३६७) मूत्रस्य समा-

नाऽप्योश्चेति वाच्यम् (वा) वार्तिकद्वारा वज्रप्रत्ययान्त मिड क्रिया जाता है। वृद्धशब्दतुप् (६३८८) द्वारा 'ममान' को 'म' आदेश हो जाता है—ममान पश्यतीति मद्ग, कमकलरि प्रयोग। समानत्वेन ज्ञानविषयो भवतीत्यथ। स्त्रीत्व में टिड्ढाणञ० (१०५१) द्वारा डीप् हो कर 'मद्गी' रूप बनता है। परन्तु 'तुल्यनम' शब्द तमप्प्रत्ययान्त है इस में किसी तरह डीप् प्राप्त नहीं, टाप् हो कर 'तुल्यनमा' बनेगा।

(२८) उत्सवे च विवाहादी नारी कार्यो पुर मग ॥

विवेचन—'पुर मर' शब्द पुरोऽप्रोऽप्रेषु सत्ते (३२१८) मूनद्वारा टप्रत्ययान्त मिड होता है। अतः स्त्रीत्व की विवक्षा में टित्व के कारण डीप् हो कर 'पुरमगे' बनना चाहिये।

(२९) न्ये । चिगयुपी भूया मुल च प्राप्नुया सदा ॥

विवेचन—'न्ये' शब्द से व्यसि प्रथमे (१०५६) द्वारा स्त्रीत्व में डीप् प्राप्त होता है परन्तु 'क्याया' कर्त्तृत्व च (१०२१) इस ज्ञापक के जोशर पर टाप् हो जाता है। 'चिगयुप्' शब्द जदन्त नहीं हलन्त है। इस में कोई स्त्रीप्रत्यय प्राप्त नहीं होता अतः यहाँ 'चिगयु' होना चाहिये।

(३०) मुन्दरय कथा सर्वेभार वार निषीयताम् ॥

विवेचन—'मुन्दर' शब्द गौरादिगण में पटा गया है अतः स्त्रीत्व की विवक्षा में विद्गौरादिभ्यश्च (१२५५) में डीप् प्रत्यय हो कर 'मुन्दरी' प्रयोग होना चाहिये।

(३१) शीलया सर्वतोविषया पुनश्चे नृणा वर ॥

विवेचन—शीलादागता शीले भवा वा श्रुती। शीलशब्द में जण्प्रत्यय हो कर स्त्रीत्व की विवक्षा में टिड्ढाणञ० (१०५१) द्वारा डीप् करन में 'शीनी' शब्द निष्पन्न होता है। अतः यहाँ तृतीयैकवचन में 'शील्या' बनना चाहिये।

(३२) इय त्रिशतमा नौरा पार याता महोदधे ॥

विवेचन—'त्रिशत' शब्द में डट (११७५) प्रत्यय हो कर तमट (५२५६) का जागम करन में 'त्रिशतम्' शब्द बनता है। अतः टित्व के कारण स्त्रीत्व में डीप् प्रत्यय हो कर 'त्रिशतमी' बनना चाहिये।

(३३) नैजा शक्ति समालोच्य कार्यारम्भपरो भवेत् ॥

विवेचन—'नैज' शब्द से स्वाद्यं में जण् प्रत्यय करन पर 'नैज' शब्द निष्पन्न होता है। अतः स्त्रीत्व में टिड्ढाणञ० (१२५१) मूनद्वारा डीप् प्रत्यय करन पर 'नैजी' बनना है। द्वितीया के एकवचन में यहाँ 'नैजीम्' प्रयोग होना चाहिये।

(३४) नूतनीय प्रया मित्र । स्वमूत्र पीयते दुर्घ ॥

विवेचन—'नवस्य नू' आदेश, लृत्-लृत्तर-व्याश्च प्रत्यया वचनव्या (वा०) इत वार्तिक में नून, नूतन और नवीन ये तीन शब्द निष्पन्न होते हैं। स्त्रीत्व में इन में डीप्-डीप्-डीन् कोई प्रत्यय प्राप्त नहीं, अतः जदन्त रूप टाप् हो कर यहाँ 'नूतनयम्' प्रयोग होना चाहिये।

(३५) मुखाय सम्पदा दवी विपदानं मताऽऽसुरी ॥

विवेचन—सम्पद् और विपद दोनों हलन्त स्त्रीलिङ्ग हैं। आप चंद्र हलन्तानाम्० इम भागुरिमनानुमार इन में आप् (आ) प्रत्यय हो कर 'सम्पदा, विपदा' शब्द बनते हैं। कुछ लोग ऐस प्रयोगों को भाष्यानुकूल होने के कारण अपमाण मानते हैं।

(३६) जाण्ये विमला वाणी सर्वभूतहिते रता ॥

विवेचन—ऋषीणामियम जाणीं। तस्यैवम् (११०६) के अर्थ में ऋषिशब्द न औन्मगिक जप् प्रत्यय हो कर जादिवृद्धि एवं स्यान्व में टिड्ढाणञ० (१२५१) में टोप् करने में 'आणीं' प्रयोग सिद्ध होता है। 'आपा जगुद्ध है।

(३७) कामुकी-कामुका-मध्ये को भेद प्रतिपाद्यताम् ॥

विवेचन—जानपद-कुण्ड-गोण० (८१८२) सूत्र में मधुनच्छावनी स्त्री की वाच्यता में 'कामुकी' तथा अन्यत्र (केवल अभिलाषा करन वाली) 'कामुका' का प्रयोग होता है। कामुकीशब्द डीपन्त तथा कामुकाशब्द टाबन्त होता है।

(३८) तहि वध्या विजानाति गुर्वी प्रसववेदनाम् ॥

विवेचन—गुरुशब्द उदन्त गुणवाचक है अत स्त्रीत्व की विवक्षा में बोधो गुण-वचनान् (१२५६) में वैकल्पिक टोप् हा कर यप् करने में 'गुर्वी' बन कर द्वितीया के एकवचन में 'गुर्वीम्' निष्पन्न होता है। पक्ष में 'गुरुम्' भी होता है।

(३९) पद्धनी स्वा परित्यज्य पथाशास्त्र समाश्रय ॥

विवेचन—पद्धति' शब्द बह्वादिगण में पटा गया है अत स्त्रीत्व की विवक्षा में बह्वादिभ्यश्च (१२६०) में वैकल्पिक डीप् हो कर 'पद्धनी-पद्धति' दो रूप बनते हैं।

(४०) क्षीरपीणा मुरापीभिर्मत्रो प्रायोऽस्ति दुर्लभा ॥

विवेचन—'क्षीरप' शब्द आतोऽनुपसर्गे क (७६१) द्वारा कप्रत्ययान्त निष्पन्न हुआ है अत अदन्तलक्षण टाप् हो कर स्त्रीत्व में 'क्षीरपाणाम' होता चाहिये। 'मुराप शब्द गापोष्टक् (३२८) तथा मुरासीध्वोरिति वक्तव्यम् (बा०) द्वारा टक्प्रत्ययान्त निष्पन्न हुआ है अत टित्व के कारण टिड्ढाणञ० (१२५१) में टोप् हो कर स्त्रीत्व में 'मुरापोभि' का प्रयोग युक्त है। 'दुर्लभ' शब्द ईपदङ् मुष् कृच्छ्राकृच्छ्राद्येषु सन् (८७६) सूत्र में खलुप्रत्ययान्त निष्पन्न हुआ है अत टोप्-डोप्-आन् किमी का विषय न होने के कारण अदन्तलक्षण टाप् हो कर 'दुर्लभा' बाना चाहिये।

(४१) अपोदानोतना नापा सप्राह्या भूतिमिच्छता ॥

विवेचन—'इदानीम्' अव्यय में सायच्चिरप्राहणंप्रगेऽव्ययेभ्यष्टच् टचुलो तुद् च (१०८६) सूत्रद्वारा टचुल प्रत्यय तथा तुद् का जागम करने पर 'इदानीन्त' शब्द निष्पन्न होता है। स्त्रीत्व की विवक्षा में टित्व के कारण टिड्ढाणञ० (१२५१) द्वारा टोप् करन पर द्वितीया के बहुवचन में 'इदानीन्तनी' बाना चाहिये।

(४२) कलाभिलाषा परिहाय निह्य क्वीन कर्माणि गृहे स्थितोऽपि ॥

विवेचन—'अभिलाषा' शब्द घञन्त है। घञन्त इम निङ्गानुशासनोपमून क

अनुमार घञल पुलिङ्ग वृत्ता करते हैं । जन' यहा 'फलाभिलाषम्' होता चाहिये ।

(४३) सद्यो वनहरी नारी सद्यो बलहर पय ॥

विवेचन—बल हरतीति बलहरा नारी । हरतेरनुद्यमनेञ्च् (३२६) सूत्र मे जञ्च्प्रत्ययान्त बलहर शब्द मे स्त्रीत्व मे जदन्तलक्षण टाप् हो कर 'बलहरा' बनना चाहिये ।

(४४) त्रिमूर्तीय वृद्धा रञ्जु सर्वभारसहा मता ॥

विवेचन—तीणि मूर्ताणि यस्या' सा त्रिमूर्ता । बहुव्रीहिनमास म ङीप् ङीप्-
ङीन की अप्राप्ति मे अदन्तलक्षण टाप् हो जायेगा ।

(४५) वेदान्तस्य समष्ट्येया चतु मूर्त्ता प्रपन्नत ॥

विवेचन—चतुर्णां मूर्त्ताणां समाहारश्चतु मूर्त्ता । द्विगुणमास मे अकारातोत्तर-
पदो द्विगु म्त्रियामिष्ट (वा०) इम वचन मे स्त्रीत्व की विवक्षा मे द्विगो (१०४७)
न ङीप् हो जाता है ।

(४६) रद्राणां रद्रन्तर्वेति प्रक्रिया व्याकृते क्यम् ?

विवेचन—रद्रस्य भार्या रद्राणी । इन्द्रवर्णभवशाव० (१२६३) सूत्र मे 'म्द्र'
को जानुक् का जागम तथा ङीप् प्रत्यय करने मे 'म्द्राणी' प्रयोग सिद्ध होता है ।

(४७) अगस्त्यस्त्री जगन्तीति व्याकृत्या प्रतिपाद्यताम् ॥

विवेचन—अगस्त्यस्य भार्या जगन्ती । अगस्त्यशब्द म पृथोगादाह्यायाम्
(१०६१) द्वारा स्त्रीत्व मे ङीप् प्रत्यय हो कर भमञ्जक अकार का लोप तथा सूर्या-
स्तस्ययोश्छे च डनाञ्च (वा० १०४) इम वान्त्वि स अकार का भी लाप करन
पर 'जगन्ती' प्रयोग सिद्ध हो जाता है ।

(४८) दर्वी रात्री तमी श्रोणी खनी भूमी तथाऽवनी ।

व्याकृतेर्वचसा केन ङीपता वा स्मृता अमी ॥

विवेचन—वह्नादिन्दरश्च (१२६०) सूत्रस्य वह्नादिर्णान्त्सुत एवतो रित् नदन्-
दिपेके इम गणसूत्र म वैकल्पिक ङीप् कर भमञ्जक इकार का लाप करन मे उपर्युक्त
प्रयोग सिद्ध होने हैं । पक्ष मे—दर्वि' रात्रि, तमि, श्रोणि, खनि, भूमि, अरनि—
येभ्य भी वर्तेगे ।

(४९) लोके लावणिका योषिन्तिदनीया मना परम् ॥

विवेचन—लवण पप्पमत्या' इम अर्थ मे लवणाट्टञ्ज (४०५०) सूत्र मे टञ्ज,
आदिवृद्धि तथा टकार को इक आदेश हो कर 'लावणिक' बना । जब स्त्रीत्व की विवक्षा
मे टिट्ठाणञ्० (१०५१) मे ङीप् प्रत्यय करने पर 'लावणिकी' प्रयोग बनना चाहिये ।

(५०) जष्टाध्यायी जान्माताऽमरकोषो जापिता ।

भट्टिकाज्य गणेशश्च त्रयीय मुपदाञ्जु व ॥

विवेचन—जष्टाणाम् अध्यायानां समाहार —अष्टाध्यायी । अकारातोत्तरपदो
द्विगु म्त्रियामिष्ट (वा०) इम वान्त्वि मे स्त्रीत्व की विवक्षा मे द्विगो (१२४७) सूत्र

में डीप् हो कर 'अष्टाध्यायी' प्रयोग मिट्ट होना है। वसोऽववा जन्वा मा वसो (पट्कि) । 'त्रि' शब्द में सहाया अवयवे तयप् (११७२) में तयप् प्रत्यय हा क् द्वित्रिन्या तयस्यायज्वा (११७३) द्वारा उसे जयञ्च मवदिग करने में 'त्रय' शब्द निष्पन्न होता है। स्यातिवद्भावा द्वारा इसे भी तयप्प्रत्ययान्त मान लेने में स्त्रीत्व में टिट्टाण्त् (१२५१) में डीप् प्रत्यय हो कर 'वयी' प्रयोग मिट्ट हो जाता है।

(५१) निययाचनशोलेप वृत्तिर्ननुनगी तृणान् ॥

विवेचन—'लघुनर' शब्द ताप्रत्ययान्त है अतः स्त्रीत्व में इस में पर डीन्-डीप्-डीन् कोई प्राप्ति नहीं होता। अदन्तलक्षण टाप् करने में 'ननुना' होना चाहिये।

(५२) पङ्गु कुञ्जापि वामोन्धया सा चेत्पनिप्रिया ॥

विवेचन—स्त्रीत्व में पङ्गुशब्द में पङ्गोरश्च (१२७२) सूत्रद्वारा ऊट प्रत्यय कर सक्तीर्ण करने में पङ्गु बनना चाहिये। इसीप्रकार महिन-शफ-लभा-वानादेश्च (१२७४) द्वारा 'वामाश्' में स्त्रीत्व में ऊट् हो 'वामोन्' बनना। कुञ्जशब्द गुणवचन होना हुआ भी उदन्त नहीं अतः इस में वानो गुणवचनात् (१२५६) द्वारा डीप् नहीं होना अदन्तलक्षण टाप् ही होता है—कुञ्जा।

(५३) भगानिकन तथा शक्या हनोऽमो पुरयानम ॥

विवेचन—'भगानिकन' जगुद्ध है इस में स्यात् पर नयानकन' होना चाहिये। 'भी धातु में आनक' शीनिष' (उणा० ३ ८२) सूत्रद्वारा औणादिक जानकप्रत्यय करन पर भगानर शब्द निष्पन्न होता है। स्त्रीत्व की विवक्षा में इस में अदन्तलक्षण टाप् हो प्रथमस्यात् (१२६२) द्वारा प्राप्ति दन्व का शिपकादीना च (वा०) वानिक में निषेध हो जाता है।

(५४) ननी-नारी-नृयोमघ्ये भेदो व्याम्विने वचम् ?

विवेचन—तरन्व स्त्री नगी। 'न' शब्द में पुनान में यहा डीप् हुआ है। जानिवाच्य हो ना नूनरयोर्बुद्धिश्च (गणमूत्र) द्वारा डीन् + वृद्धि करन से 'नारी' बनेगा।

(५५) दृष्टित्री पुत्रवपाल्या शिञ्जोपा तयंच च ॥

विवेचन—'दृष्टित्री' के स्यात् पर 'दृष्टिना' होना चाहिये। दृष्टिदृष्ट स्वका-दियो में पठित है अतः अदन्तलक्षण डीप् का न पटन्ववादिभ्य (२३३) से निषेध हा जाता है।

(५६) मूपिकी परिहर्तया धान्यागाराद् विपरिचन ॥

विवेचन—मूपिकशब्द उजाडिण में पटा न्वा है अतः जानिनथन डीप् (१२६६) का बाध कर अजाडतप्यान् (१२४६) में टाप् करने पर 'मूपिका' बनना चाहिये।

(५७) कया स्त्रीणा त्यजेन्तिच दह्यचर्मणने न्यिन ॥

विवेचन—स्त्रीशब्द में स्त्रीनुत्तान्या नञ्जन्त्री भवनात् (१००३) सूत्रद्वारा नञ्

प्रत्यय करने पर 'स्त्रेण' शब्द निष्पन्न होता है। स्त्रीत्व की विवक्षा में नञ्स्त्रीकृ-
शुस्तहणनलुनातामपसहयानम् (वा० १०१) वार्तिकद्वारा टीप् प्रत्यय करने पर 'स्त्रेणी'
प्रयोग बनता है। अतः यहाँ 'स्त्रेणाम्' के स्थान पर 'स्त्रेणीम्' होना चाहिये।

(५८) रम्पेय मुमुञ्जी मूर्त्तीं राजने गिगिसिधिता ॥

विवेचन—'मुञ्ज' शब्द ऋडादिबह्वच में पटा गया है अतः स्वाङ्गलक्षण टीप्
(१२६५) का न ऋडादिबह्वच (१२६६) से निषेध हो कर टाप् करन में 'मुमुञ्जा'
बनना चाहिये।

(५९) ऐन्द्राया नाय आदित्य उदेति प्रत्यह दिवि ॥

विवेचन—'इन्द्रो देवनाय्या इति ऐन्द्री (पूर्वा दिक्)। साऽस्य देवता (१०८१)
के अर्थ में इन्द्रशब्द में तद्धित जण प्रत्यय करने में 'ऐन्द्र' शब्द निष्पन्न होता है।
स्त्रीत्व की विवक्षा में इस से टिड्ढाणन्० (१२५१) सूत्रद्वारा टीप् प्रत्यय करने पर
'ऐन्द्री' बनता है। अतः यहाँ 'ऐन्द्रया' प्रयोग होना चाहिये।

(६०) भार्या चेद् भनू देवी स्यात् प्राप्त पत्या न कि नृवि ?

विवेचन—'भर्ता देवो यस्या' इस प्रकार बहुव्रीहिममाम की विवक्षा में पचा-
दिया में टित् पड़े गये भी देवशब्द में टिड्ढाणन्० (१२५१) द्वारा टीप् नहीं हाना
कारण कि टित् यहाँ उपसजन है। उस सूत्र में अनुपसर्जनात् (४११८) का अनुवर्तन
होना है। इसलिये यहाँ अदन्तलक्षण टाप् कर 'भनू देवा' प्रयोग होना चाहिये।

(६१) आचक्षते नृपो वाच नमस्कारपुर मराम ॥

विवेचन—'पुर मर' शब्द पुरोऽप्रतोऽग्रेषु सत्ते (३२१८) सूत्रद्वारा टप्रत्ययान्त
निष्पन्न होता है। 'नमस्कार पुर मरो यस्या' इस बहुव्रीहिममाम में टप्रत्ययान्त पुर मर-
शब्द के उपसजन होने के कारण टित्त्वलक्षण टीप् नहीं हो सकता, अदन्तलक्षण टाप्
हो कर 'नमस्कारपुर मराम्' प्रयोग होगा।

(६२) सप्तर्षे वामलोचनास्तपी हन्ति मुनेरपि ॥

विवेचन—वामे (मुन्दरे) लोचने यस्या मा वामलाचया। यहाँ बहुव्रीहिममाम
में स्वाङ्गलक्षण वैकल्पिक टीप् प्राप्त होता था परन्तु न ऋडादिबह्वच (१२६६) में
उम का निषेध हो कर अदन्तलक्षण टाप् हो जाता है—वामलोचना। अतः 'वामलाच-
न्या' के स्थान पर 'वामलोचनाया' होना चाहिये।

(६३) हेयाज्जावश्यकी चित्ता नृपे शासति धार्मिके ॥

विवेचन—अवश्यम्भाव—आवश्यकम्। इन्द्रमनोनादिम्यरच (५११३२)
सूत्रद्वारा मनोज्ञान्तर्गत होने के कारण 'जवश्यम्' अव्यय में भाव में वुञ् प्रत्यय, आदि-
वृद्धि, वु को जक् जादेग तथा अव्ययाना भमात्रे टितोप (वा०) से टि का लोप कर
'जावश्यकम्' प्रयोग उत्पन्न होता है। जावश्यकम् अस्त्यम्येति जावश्यकम्, यहाँ मन्वर्ध
में अर्शादिभ्योऽव् (११६५) द्वारा अव प्रत्यय विद्या गया है। इस में स्त्रीत्व की

विवक्षा में जदन्तलक्षण टाप् हा क् प्रत्ययम्यात् काव० (१२६०) द्वारा ककार म पूर्व अकार का इकार आदेश करने पर 'जावण्यिका' बनना चाहिये। कुछ वैनाकरण गौगदिगण का आकृतिगण मान कर यहाँ डीप् प्रत्यय विधान कर 'जावण्यकी' रूप का भी शुद्ध मानने ह। (मनोज्ञादिभूते स्पष्टञ्चेद बृहच्छन्ददुोत्रर)।

(६४) नायहीना विनङ्क्षति सर्वास्तेजुचरा स्त्रिय ॥

विवेचन—अनुचरानि अनुचरी। पचादिना म चर्त् उन निर्देश क कारण 'अनुचर' म स्त्रीत्व म टिक्त्वलक्षण टाप् के कारण अनुचरी बनना। अत यहाँ अनुचर' हाना चाहिये।

(६५) तदमन्दरमन्यदनुन्दरय नियोजनाम् ।

श्रोत्रशुक्तिपुटे स्पष्टा माङ्गराजनरङ्गिणी ॥ (राजतरङ्गिणी १०४)

विवेचन—मुन्दर' शब्द का गौगदिना म पठ जाया है अत यिद्गौगदिम्परव (१२५५) मून म डीप् हा क् मुदरी हाना चाहिये।

(६६) वीराश्वेन पतयो यामा ता वीग्यतया मया ॥

विवेचन—'वीग पतया यामाम्' इम बहुव्रीहिममान म निय मरन्थादियु (५१३५) मूनद्वारा पनि क इकार को नकार आदेश तथा डीप् प्रत्यय करने पर वीगपनी बनना है। अत यहाँ वीग्यतय' होना चाहिये।

(६७) कि म्यान् म्याश्वया मूर्गी मूर्पपल्या विविच्यताम् ॥

विवेचन—मूयाद् देवताया चाश्वाय्य (वा० १०३) इम वानिक म मून का दवता भार्या वाच्य हान पर 'मूया' बनना है। मून की मानुषी भाषा अभिप्रत हा ता पुषोमादाहषायाम् (१०६१) में डीप् प्रत्यय हा क् 'मूर्गी' बनना। कुन्ती का मून की मानुषी भाषा स्वीकार किया जाता है।

(६८) पिता रत्नाकरो घम्य सक्षमोर्यस्य महोदरी ।

शङ्खो रोदिनि भिन्नार्थो फल नाम्यानुमारत ॥

विवेचन—'महोदरी' के म्यान पर 'महोदरा' हाना चाहिये। तथाहि—'मह (ममानम) उदर यस्या' इम बहुव्रीहिममान में बोपमर्जनस्य (६३८१)' द्वारा 'सह' के स्थान पर विकल्प में 'म' आदेश हाकर 'सादर' या सहोदर' बनना है। अब स्त्रीत्व की विवक्षा म प्राण हुए स्वाङ्गतक्षण वैकल्पिक डीप् का न जोडादिवह्व (१२६६) में निषेध हा जाना है। पुन नासिक्होदरीष्ठजघ्दादन्तकर्णगुङ्गाच्च (४१५५) म उम की प्राणि हानी है, इम का भी सहनर्विद्यमानपूर्वाच्च (४१५३) में निषेध

१ बोपमर्जनस्य (६३८१)। अर्थ—उपमवन अर्थात् बहुव्रीहि के अवयव 'सह' के स्थान पर विकल्प में 'म' आदेश हो जाना है। मपुत्र, महपुत्र ।

२ सहनर्विद्यमानपूर्वाच्च (४१५७)। अर्थ—जिम के पूर में मह, नत्र और विद्यमान शब्द हो तथा अन्त में उपमजन स्वाङ्गवाची शब्द हातो ऐम प्राणिपदिक से स्त्रीत्व में डीप् प्रत्यय नहीं होता। यथा—सदेशा अवेगा, विद्यमाननामिका।

हो जाता है। अब अजाद्यतष्टाप् (१२४६) में अदननक्षण टाप् करने पर 'सोदरा' जीर 'सहोदरा' दो रूप सिद्ध हो जाते हैं।

(६६) समरुपाऽपि सोदर्यो शौलभिन्ना भवेद्विह ॥

विवेचन—'सोदर्यो' के स्थान पर 'सोदर्या' या 'समानोदर्या' होना चाहिये। तथाहि—यकारादि तद्धित प्रत्ययो की विवक्षामान में 'समानञ्च तद् उदरम्' इम कर्मधारयसमास में विभाषोदरे (६३८७) सूत्र से समानशब्द के स्थान पर वैकल्पिक 'स' आदेश हो कर 'सोदर' जीर 'समानोदर' ये दो रूप निष्पन्न होते हैं। अब 'समानादर' शब्द में समानोदरे शयित ओ चोदात्त (४४१०८)^३ सूत्र से यत्प्रत्यय तथा दमरे 'सोदर' शब्द से सोदराद् य (४४१०६)^३ सूत्र से यत्प्रत्यय हो कर 'समानोदर्य' तथा 'सोदर्य' ये दो प्रातिपदिक निष्पन्न होते हैं। इन दोनों का अर्थ है—समान उदर में सोने वाला अर्थात् सगा भाई। अब स्त्रीत्व की विवक्षा में इन दोनों से टोप् जादियों की अप्राप्ति में अदननक्षण टाप् होकर 'समानोदर्या' और 'सोदर्या' ये दो प्रयोग सिद्ध हो जाते हैं।

(७०) स्वयमध्यायिका या स्त्री सोपाध्याया स्मृता बुधे ॥

विवेचन—'उपाध्यायस्य स्त्री' इम पुयोग में मातुचोपाध्याययोरानुग् वा (वा० १०८) वार्तिक से टोप् तो नित्य पर आनुक् आगम का विकल्प हो कर 'उपाध्यायानी' तथा 'उपाध्यायी' ये दो प्रयोग सिद्ध होते हैं। परन्तु जब कोई स्त्री स्वयम् अध्यापन करती है तब वहाँ टोप् का विकल्प भाष्य में विधान किया गया है—उपाध्यायी, उपाध्याया। यहाँ आनुक् नहीं होता।

(७१) गिरिशस्य भवेद् भार्या गिरिशा गिरिशीति वा ?

विवेचन—गिरिशस्य भार्या गिरिशी। पुयोग में पुयोगादाह्यायाम् (१२६१) से टोप् होगा। टाप् की प्राप्ति का टोप् बाधक है।

(७२) स च भवति दरिद्रो यस्य लुण्णा विशाला ।

मनसि च परितुष्टे कोऽयवान् को दरिद्र ॥

विवेचन—'विशाल' शब्द बहुादिगण में पढ़ा गया है अतः स्त्रीत्व की विवक्षा

१ विभाषोदरे (६३८७) अथ —यकारादिप्रत्यय की विवक्षा में उदरशब्द के परे रहने समानशब्द के स्थान पर विकल्प से 'म' आदेश हो जाता है। यथा—सोदय, समानोदर्य।

२ समानोदरे शयित ओ चोदात्त (४४१०८)। अर्थ—सप्तम्यन्त समर्थ समानोदरशब्द से शयित (शयन किया हुआ) अर्थ में यन् प्रत्यय होता है तथा समानोदरशब्द का ओकार भी उदात्त हो जाता है। यथा—समाने उदरे शयित समानोदर्य।

३ सोदराद् य (४४१०६)। अथ—सप्तम्यन्त समर्थ सोदरशब्द में शयित (शयन किया हुआ) अर्थ में 'य' प्रत्यय होना है। यथा—सोदरे शयित सोदय।

में बह्वादिभ्यश्च (१२६०) सूत्रद्वारा डीप् का विकल्प होगा पक्ष में अदन्तलक्षण टाप् होगा—विशाली, विशाला । परन्तु साहित्य में डीपल प्रयोग अवेष्ट्य है ।

(७३) विवटी स्थितिमासाद्य नरो भाग्यानि निन्दति ॥

विवेचन—विकटशब्द भी बह्वादिगण में पढ़ा गया है जन पूर्ववत् डीप् का विकल्प हो कर 'विवटी, विकटा' बनेंगे । इन के डीपल प्रयोग भी अवेष्ट्य हैं ।

(७४) घ्रात पश्य तदागोर्ऽस्मिन् द्वे मीने क्रीडतो मिय ॥

विवेचन—मीनशब्द जानिवाचक होना हुआ भी साहित्य में स्त्रीलिङ्ग में दृष्टिगोचर नहीं होगा । मन्मथशब्द का स्त्रीलिङ्ग 'ममी' रूप ही प्रायः प्रयुक्त देखा जाता है । अतः यहाँ 'द्वे मन्मथौ' कहना उचित होगा ।

(७५) सुकुमारो लता नाति पवनेरितपल्लवै ॥

विवेचन—स्त्रीप्रत्ययों में तदन्तविधि अनुमत्त है । जन कुमारशब्द की तरह सुकुमारशब्द में भी चयसि प्रथमे (१२५६) द्वारा डीप् हानर सुकुमारी बनया । सुकुमारशब्द में प्रादिममाम है अतः कुमारशब्द की अनुपमजंजना अधुष्ण है, इस में अनुपसजनात् (४११४) इस अप्रिकार के साथ विरोध नहीं पटना । वयोवाचक कुमारशब्द कोमल अर्थ में उपचरित होना है ।

(७६) भोगप्रवृत्तिं खलु मानवानां स्वाभाविकेति प्रवदन्ति सत ॥

विवेचन—स्वभावाद् आगता स्वाभाविकी । स्वाभाविक शब्द ठक्प्रत्ययान्त है जन टिड्ढाणञ्० (१२५१) सूत्र में डीप होगा टाप् नहीं ।

(७७) गिर क्षोभकरा श्रुत्वा वस्य नो द्रव्यते मन ॥

विवेचन—'क्षोभकर' शब्द कृजो हेतु-ताच्छील्याऽनुलोम्येषु (७६१) द्वारा टप्रत्ययान्त निष्पन्न हुआ है । जत स्त्रीत्व की विवक्षा में टिड्ढाणञ्० (१२५१) में डीप हो कर 'क्षोभकरी' बनेगा । द्वितीया के बहुवचन में 'क्षोभकरी' प्रयोग होना चाहिये ।

(७८) नानारूपधरी भाषा वस्य नो मोहकारिणी ॥

विवेचन—धरतीनि धर, पचाद्यच् । स्त्रीत्व की विवक्षा में डीप्, डीप् डीन् कोई प्राप्त नहीं, जन अदन्तलक्षण टाप् हो कर 'नानारूपधरा' होना चाहिये ।

(७९) प्राजा-प्राज्ञीद्वयोर्मध्ये भेदाख्यान निरूपय ॥

विवेचन—प्रजा (बुद्धि) अस्त्रय्या इति प्राजा । प्रजाशब्द में मन्वय में प्रजाशब्दाचार्यो ण (४२१०१) द्वारा ण (अ) प्रत्यय करने पर जादिवृद्धि न स्त्रीत्व में टाप् करने में 'प्राजा' (बुद्धिमती) प्रयोग भिन्न होता है । प्रपूर्वक ज्ञा धातु में जातश्चोपमाँ (७८८) द्वारा कप्रत्यय करने पर 'प्रज्ञ' बना । प्रज्ञ एव प्राजा, स्नाथ में जप् । इन 'प्राजा' में स्त्रीत्व की विवक्षा में टिड्ढाणञ्० (१२५१) द्वारा डीप् करने

पर 'प्राज्ञी' प्रयोग मिद्ध होता है। अत एव अमरकोप में कहा है—प्राज्ञा तु प्राज्ञी, प्राज्ञा तु धीमती।

(८०) कण्डूतिर्बाधते नित्य दुष्टरक्त नर सदा ॥

विवेचन—'कण्डूति' प्रयोग का माधुत्व चित्य है, यहा क्लिन् प्राप्त नहीं। कण्डूतिर्बाधते यच् (७३०) से यक्प्रत्ययान्त 'कण्डूय' धातु में अ प्रत्ययात् (८६७) द्वाग 'अ' प्रत्यय हो कर यक् के अकार का अतो लोप (४७०) से लोप कर टाप् लान से 'कण्डूया' बनता। सम्पदादियो म पाठ के कारण क्विप् प्रत्यय कर अकार एव यकार का लोप करन में 'कण्डू' भी बनता है।^१

(८१) पावनय सरिद गङ्गा निर्मली तापहारिणी ॥

विवेचन—पावनशब्द त्युङन्त है अत टिक्व के कारण टिड्ढाणञ० (१२५१) स डीप् हो कर 'पावनी' रूप बनता चाहिये। 'निर्मली' जशुद्ध है, डीप्-टीप्-डीन् कोई प्राप्त नहीं, अदानलक्षण टाप् हो कर 'निर्मला' बनता। 'तापहारिणी' ठीक है, यहा नानलक्षण डीप् हुआ है।

(८२) आत्मबुद्धि प्रमाणा चेद वृथा शास्त्रानुशीलनम् ॥

विवेचन—प्रमाणशब्द नपुनक के एकवचन में गदा नियत है। अत वेदा प्रमाणम् की तरह यहा भी 'प्रमाणम्' कहना चाहिये।

(८३) परित्रमा विधातव्या गिरिराजस्य सबत ॥

विवेचन—परित्रमशब्द घञत्त है अत पुलिङ्ग में नियत है। इमलिये यहा परित्रमो विधातव्य 'कहना चाहिये।

(८४) चिरन्तना इमा रम्या मूलयो मृमया अपि ॥

विवेचन—यहा पर 'चिरन्तन्य' तथा 'मृमय्य' प्रयोग करना चाहिये। चिरम् अव्यय से टधुल् प्रत्यय तथा तुट का आगम करने से 'चिरन्तन' शब्द उपपन्न होता है। स्त्रीत्व की विवक्षा म टिक्व के कारण इम से डीप् प्रत्यय हो कर चिरन्तनी बनता है। 'मृमय' शब्द मयट्प्रत्ययात् है अत स्त्रीत्व में यहा भी टित्वात् डीप् होगा।

१ परतु 'कण्डूति' का प्रयोग कई जगह देखा जाता है। यथा—

सुभग । त्वत्कयाऽऽरम्भे कर्णे कण्डूतिलालसा ।

उज्जुम्भवदनाम्भोजा भिनत्यङ्गानि साङ्गना ॥

(साहित्यदर्पण तृतीयपरिच्छेद)

आचार्य हेमचन्द्र ने अभिधानचिन्तामणि की स्वोपज्ञव्याख्या में कण्डूयाशब्द की व्याख्या करते हुए 'कण्डूतिरपि' लिखा है।

२ 'मृद + मय' में प्रत्यये भाषायाम् नित्यम् (वा० ११) वार्तिक से द्वार को नित्य अनुनासिक हो कर 'मृमय' बनता है। ऋवर्णान्तर्य णत्व वाच्यम् (वा० २१) से प्राप्त णत्व का पदान्त में पदान्तस्य (१३६) द्वारा निषेध हो जाता है। अत 'मृमय' लिखना अशुद्ध है।

(८५) पुरी निर्यादवी जाता देवदेवे दिव गते ॥

विवेचन—‘यादव’ शब्द यद्यपि अणप्रत्ययान्त है तथापि टिड्डाणज० (१२५१) द्वारा यहा डीप् नहीं होता, क्योंकि अनुपमर्जनात् का अङ्कार जा रहा है। बहु-व्रीहिसमाम के कारण ‘यादव’ यहा उपमर्जन है अनुपमर्जन नहीं। अतः टाप् हो कर ‘निर्यादवा’ होना चाहिये।

(८६) प्रिया कनिपया लोके महाभाष्यस्य सूक्तय ॥

विवेचन—कनिजब्द में अयच् प्रत्यय तथा पुक् का आगम करने पर ‘कतिपय’ शब्द बनता है। स्त्रीत्व की विवक्षा में डीप्-डीप्-डीन् की प्राप्ति न होने में टाप् हो जाता है। परन्तु जनपयब्राह्मण में ‘कतिपयोर्गा दवाति’ ऐसा प्रयोग देखा जाता है, तो इस प्रयोग के कारण अयट् प्रत्यय की कल्पना करनी भी उचित प्रतीत होती है।

(८७) मा ते महचरा भूयाद् दुशीलोत्तरदायिका ॥

विवेचन—यहा ‘महचरा’ के स्थान पर ‘महचरी’ होना चाहिये। पचादियों में अचप्रत्ययान्त चरशब्द ‘चरट्’ इस तरह टिट् पडा गया है जो टित्वात् डीप् हो कर चरतीति चरी बनेगा। पुनः इस का ‘मह’ के साथ मुष्पुपाममाम हो कर ‘महचरी’ निष्पन्न हो जायेगा। अथवा—मह चरतीति महचरी, भिक्षासेनादायेषु च (३२१७) सूत्र में चकार के बल से महशब्द के उपपद रहते भी ‘चर्’ धातु में टप्रत्यय करने से ‘महचरी’ बन जायेगा। दोनों अवस्थाओं में टित्वात् डीप् होगा। इसी तरह ‘अनुचरी’ के विषय में भी समझना चाहिये।

(८८) पापीय नापिनी बृद्धा दुष्टा कर्णजपी सदा ॥

विवेचन—‘पापी’ अशुद्ध है, इस के स्थान पर ‘पापा’ होना चाहिये। केवलमामकभाग्येषपापापरसमानार्थकृतमुमङ्गलभेषजाच्च (४१३०) सूत्रद्वारा सजा और वेद में ही डीप् का विधान कहा गया है। नापिनम्य स्त्री नापिनी, यहा पुयोग में डीप् ठीक ही है। ‘कर्णजप’ शब्द स्तम्बकणयोरभिजपो (३२१३) सूत्रद्वारा अचप्रत्ययान्त भिद्ध हुआ है अतः यहा स्त्रीत्व में टाप् हो कर ‘कर्णजपा’ होना चाहिये।

(८९) अहो त्रिहायना वाला गीर्वाणीभाषणे रता ॥

विवेचन—‘त्रिहायना’ के स्थान पर ‘त्रिहायणी’ होना चाहिये। यहा दामहायनात्तच्च (४१२७) सूत्रद्वारा दय अथ से हायनान्त शब्द से स्त्रीत्व में डीप् तथा त्रिचतुर्भ्यां हायनस्य णत्व वाच्यम् (वा०) वार्तिक से णत्व करने पर ‘त्रिहायणी’ निष्पन्न होता है। इसीप्रकार ‘धतुर्हायणी कन्या’ के विषय में समझना चाहिये।

(९०) त्रिहायणीषु शालामु मोदन्ते धनिका जना ॥

विवेचन—‘त्रिहायणीषु’ के स्थान पर ‘त्रिहायनामु’ होना चाहिये, क्योंकि पूर्वोक्त दामहायनात्तच्च (४१२७) द्वारा विधीयमान डीप् और वार्तिकोक्त णत्व

दोनो वयोवाच्य होने पर ही हुआ करते हैं। यहा वय की कोई वान ही नहीं, 'शालामु' को विशेषित किया जा रहा है अतः डीप्-+णत्व न हो कर टाप् ही होगा।

(६१) छात्राणां छात्रवृन्देन सङ्गोऽन्यकरो महान् ॥

विवेचन—छादन छत्रम्, छत्र शीलमभ्येति छात्र । छत्रशब्द से 'छत्रादिभ्यो ण (४४६२) द्वारा तद्धित 'ण' प्रत्यय करने पर 'छात्र' शब्द निष्पन्न होना है। अब स्त्रीत्व की विवक्षा में ताच्छीलिके षेर्जाप अण्कार्यं भवति (ज्ञापक) इम के आश्रय से अग्निमित्तक टिड्ढाणञ् (१२५१) द्वारा डीप् प्राप्त होता है। परन्तु ज्ञापकसिद्ध न सर्वत्र के अनुसार यहा डीप् न हो कर टाप् ही होता है—छात्रा। इसीलिये तो मुनि ने छात्रादिभ्योऽण् सूत्र न बना कर छात्रादिभ्यो ण (४४६२) बनाया है। इस प्रकार छात्राणाम् के स्थान पर छात्राणाम् ऐमा स्त्रीलिङ्ग प्रयोग होना चाहिये। [दृश्यता छात्रादिभ्यो ण (४४६२) इत्यत्रत्य शब्देन्दुशेखर ।]

(६२) आकृतिग्रहणा जातिलिङ्गानां च न सवभाक् ॥

विवेचन—गृह्यते = ज्ञायतेऽनेनेति ग्रहणम्, करणे त्नुट्, सामान्ये नपुमकम् । आकृति (अवयवसन्निवेश) ग्रहणम् = ज्ञानमाधन यस्या सा आकृतिग्रहणा । यहा बहुव्रीहिसमाम में 'ग्रहण' शब्द उपमजन है अतः ल्युटन्त होने हुए भी टित्व के कारण डीप् नहीं होता। अदन्तलक्षण टाप् ही होता है।

(६३) जीवपत्नी तु या नारी पतिवतीति भण्यते ॥

विवेचन—जीवतीति जीव, पचाद्यच् । जीव पतियस्या सा जीवपत्नी जीवपतिर्वा । बहुव्रीहिसमाम में स्त्रीत्व की विवक्षा में विभाषा सपूर्वस्य (४१३४) से पतिशब्द के इकार को विकल्प में नकार आदेश हो जाता है। नकारादेश वाले पक्ष में नान्तलक्षण डीप् होकर 'जीवपत्नी' तथा अन्यत्र 'जीवपति' बनता है। इसी अर्थ में अन्तर्वत्-पतिवतीर्नुक् (४१३२) सूत्र से पतिवत् की नुक् का आगम हो कर ऋन्नेभ्यो डीप् (२३२) से नान्तलक्षण डीप् करने से 'पतिवती' प्रयोग सिद्ध हो जाता है।^१

(६४) गर्भं धत्ते तु या नारी सान्तवती स्मृता बुधे ॥

विवेचन—गर्भिणी स्त्री के वाच्य होने पर अन्तर्वत्पतिवतीर्नुक् (४१३२) सूत्रद्वारा 'अन्तर्वत्' शब्द को नुक् का आगम हो कर नान्तलक्षण डीप् करने से 'अन्तर्वती' प्रयोग सिद्ध हो जाता है। जैमाकि जमरकोष में कहा गया है—भापन्नसखा स्याद् बुधियन्तर्वती च गर्भिणी ।

(६५) द्रष्टारो वेदमन्त्राणाम् आसन् कतिपया स्त्रिय ॥

विवेचन—'द्रष्टृ' शब्द से स्त्रीत्व की विवक्षा में ऋन्नेभ्यो डीप् (२३२)

१ मन्वये पतिमच्छन्दे स्त्रिया चत्व निपात्यते ।

नुगागमे ततो डीपि पतिवतीति सिध्यति ॥

मूनद्वारा टीप् प्रत्यय हो कर 'द्रष्ट्री' शब्द बनना है। जन यहा प्रथमा के बहुवचन मे 'द्रष्टृन्' प्रयोग करना चाहिये।

(६६) वृद्धहस्तगता यूनी भौदते न कदाचन ॥

विवेचन—'यूनी' यह अपशब्द है। यूनस्ति (१२७६) द्वारा युवन्शब्द मे 'नि' प्रत्यय करने मे 'युवनि' प्रयोग बनना है।

(६७) नदीय जानुदध्नापि वेगेन दुन्तरी मता ॥

विवेचन—'जानुदध्ना' यह अपशब्द है। टिड्ढाणञ्० (१२५१) मूनद्वारा टीप् हो कर 'जानुदध्नी' होना चाहिये। 'दुन्तर' शब्द खलुप्रत्ययान्त है। स्त्रीत्व मे इस से टीप्-टीप्-टीन् किमी की प्राप्ति नहीं। जदन्तलजण टाप् हो कर दुन्तरी बनेगा।

(६८) विशदा विमला मेघा विद्याता पारदृश्वनी ।

वीयता मे सदा देव किञ्चिदप्यन्त कामये ॥

विवेचन—'पारदृश्वनी' के स्थान पर 'पारदृश्वरी' जाना चाहिये। पार दृष्टवतीति पारदृश्वरी। 'पार' कम के उपपद रहन दृशधातु मे क्वनिप् प्रत्यय बनन पर 'पारदृश्वन्' शब्द बनना है। स्त्रीत्व की विवक्षा मे वनो र च (४१७) मून मे टीप् प्रत्यय तथा वन् के नकार को रेफ आदेश करन से पारदृश्वनी प्रयोग सिद्ध हो जाता है।

(६९) सा हि तस्य धनक्रीता प्राणेश्योऽपि गरीयसी ॥ (काशिका)

विवेचन—गतिकारकोपपदाना कृद्धि सह समासवचन प्राक्सुबुत्पत्ते (५०) इस परिभाषा के अनुसार सुबुत्पत्ति मे पूर्व ही 'क्रीत' इस कृदन्त के माध 'धन टा' का ममाम हो कर क्रीतात् करणपूर्वात् (१२६४) मे स्त्रीत्व की विवक्षा मे टीप् हो कर 'धनक्रीती' बनना चाहिये जो यहा नहीं हुआ। परन्तु इस का ममाधान इस प्रकार करते हैं कि पूर्वोक्त परिभाषा अनित्य या प्रायिक है, कभी कभी इस की प्रवृत्ति नहीं भी होती। जन यहा भी इस की अप्रवृत्ति मान लेने मे, पहले क्रीत शब्द मे विभक्त्युत्पत्ति करन ममय टाप् हो कर 'क्रीता' बन जायेगा। तब 'धन टा + क्रीता न्' का तृतीयात् पुरुषममाम हा कर 'धनक्रीता' बन जायेगा। गरीयम् शब्द ईयम्-प्रत्ययान्त है जन उगितश्च (१०५०) द्वारा टीप् हो जाता है।

(१००) परस्य युवनी श्या सादर नेशतेऽत्र क ?

विवेचन—युवन्शब्द मे स्त्रीत्व की विवक्षा मे यूनस्ति (१२७६) मूनद्वारा तद्धित 'नि' प्रत्यय हो कर 'युवनिम्' प्रयोग होना चाहिये। कुछ लोगो का कहना है कि 'युवनि' शब्द मे सर्वतोऽशितन्मर्यादित्येके (गणमूत्र) द्वारा टीप् प्रत्यय करन पर

‘युवती’ बनाया जा सकता है। अन्य लोग यु मिश्रणाऽमिश्रणयो (अदा० परम्०) धातु मे भतृप्रत्यय कर ‘युवत्’ शब्द बना उगितश्च (१०५०) द्वारा डीप् कर ‘युवती’ की मिडि किया करते हैं। परन्तु इस प्रकार प्रयोग की मिडि हो जाने पर भी वय का बोध नहीं होता जिम की यहा विवधा है।

[२] परिशिष्टे—स्त्रीप्रत्ययप्रकरणगताऽष्टाध्यायीसूत्रतालिका

[इस परिशिष्ट मे इस प्रकरण मे प्रयुक्त अष्टाध्यायीसूत्रों की अकारादिन्म से तालिका दी गई है। मूलोक्त सूत्र स्पूल टाइप मे तथा व्याख्योक्त भूष्म टाइप मे मुद्रित किये गये हैं। सूत्रों के आगे पृष्ठनख्या जाननी चाहिये।]

| | | | |
|--------------------------|-----------|---------------------------|----|
| अजाछनष्टाप् | ४ | द्विगो | ३० |
| अन उपधालोपिनो० | ६१ | न ऋडादिबह्वच | ६४ |
| अनुपमर्जनात् | ४, १२, ८७ | नक्वमुखात्सज्ञायाम् | ६६ |
| अनो बहुव्रीह | ६० | न पटम्बन्नादिभ्य | ७ |
| अन्ववत्पनिवतोर्नक् | ६३ | नामिकोदरोष्ठजड्घादन० | ६८ |
| अयता डोप् | ३६ | नित्य मपत्यादिषु | ६४ |
| इती मनुष्यजाते | ७६ | पङ्गोश्च | ७६ |
| इन्द्रवरणभवसार्ब० | ५२ | पयुतो यज्ञमयोगे | ६३ |
| उगितश्च | ८ | पादोऽन्यतरस्याम् | ८६ |
| ऊङुत | ७७ | पुयोगादाख्यापाम् | ४२ |
| ऊत्तरपदादीपभ्ये | ८० | पूर्वपदात्सज्ञायामग | ६८ |
| ऋन्नेभ्यो डीप् | ७ | प्रत्ययस्यत्काःपूर्वस्या० | ८५ |
| केवल-मामक्-भागधेय० | ६२ | प्राचा एफ तदित | ८३ |
| कीतात्करणपूर्वात् | ५६ | बहुव्रीहेरुधमो डीप् | ६६ |
| जातेरस्त्रीविषयादपोपधात् | ६६ | बह्वादिभ्यश्च | ८६ |
| टिड्ढाणञ्द्रयसज० | ११ | मन | ६० |
| टाबुभाभ्यामन्यतरस्याम्० | ६० | मनोजानावन्धतो पुक् च | ७५ |
| दामहायनान्नाच्च | ६१ | यज्ञश्च | २१ |

१ इस प्रकार स्त्रीकार करने मे एक दोष प्रसक्त होता है। तथाहि—जब नि' द्वारा एक बार स्त्रीत्व कह दिया गया तो पुन डीप् के द्वारा उसे व्यक्त करने की क्या जरूरत। कहा भी गया है—उक्तार्थानामप्रयोग। इस का परिहार इन तरह किया जाता है कि स्त्रीप्रत्ययो मे उक्तार्थानामप्रयोग वाता निदम नाहू ही नहीं होगा, तभी तो वृद्धिकारादक्षित्त म 'अक्षित्त' कहा गया है, जयथा किन्तुद्वारा स्त्रीत्व के उक्त हो जाने पर हमारे स्त्रीप्रत्यय के लान का प्रश्न ही नहीं उठता, उम के लिये 'अक्षित्त' निषेध की जरूरत ही क्या थी ?

| | | | |
|------------------------|----|-------------------------|----|
| यूनस्ति | ५६ | विद्गौरादिन्यश्च | २८ |
| वनो र च | ५८ | तत्त्वगिन्वीनि भाषायाम् | ६३ |
| वयसि प्रथमे | २८ | महितशफलक्षणवामादेश्च | ८० |
| वर्णादिनुदात्तासौपधान० | ३० | स्वाङ्गास्त्वोपसजनाद० | ६० |
| विभाषा मपूर्वम् | ६१ | स्त्रियाम् | ० |
| वोनो गुणवचनात् | ३६ | हन्तस्तिङ्मित्थ | २० |
| शाडर्गंरबाद्यनो डीन् | ३३ | | |

[३] परिशिष्टे—स्त्रीप्रत्ययप्रकरणान्तर्गतवार्त्तिकादितालिका

[इम परिशिष्ट मे वार्त्तिको, परिभाषात्रो, गणसूत्रो, न्यायो, किट्सूत्रो एव महत्त्वपूर्ण भाष्यवचन आदियो की अकारादिक्रम से सूची बी जा रही है। इन के आगे पृष्ठसंख्या बी गई है।]

| | | | |
|--|----|----------------------------------|----|
| अकारान्तोत्तरपदो डिगु० (वा०) | ३० | दिगुग्राप्तापन्नालम्बुव० (वा०) | ६१ |
| जङ्गात्रकण्ठेभ्य इति० (वा०) | २५ | नञ्ज्जङ्ग्व० (वा०) | १८ |
| जगादिभि स्त्रीन्वम्ब० (मि की) | ५ | निरनुब्रश्चग्रहणे न० (प०) | ६१ |
| अत्रव सूनिमन्वाङ्गम्० (महा०) | ६० | नूनररावृद्धिञ्च (गण०) | २५ |
| अर्त्तत्रियाभ्या वा स्वार्थे (वा०) | ५५ | पाणिगृहीती भासनाम् (वा०) | ६० |
| अत्रयत्रे हृन् लिङ्ग समुदायस्य० (न्याय) | २५ | पान्वाद्यन्वय न (वा०) | ३१ |
| अमिनपलितयान (वा०) | ३५ | पालकान्नाल (वा०) | १६ |
| जाहृतिग्रहणा ज्ञानिर (महा०) | ७० | पिप्यन्यादयन्त्र (गण०) | ३८ |
| आचार्यादिणत्वे च (वा०) | ५५ | पुन्दाच्चैनि वक्त्रव्यम (वा०) | ६६ |
| आमनदृष्ट स्त्रिया वा (गण०) | २७ | पन्वयग्रहणे नदन्ता ग्राह्या (प०) | १० |
| उक्तार्थानामप्रयोग (न्याय) | २५ | प्राणिना बालहृतावध्या० (कारिका) | ३८ |
| उगिद्वर्णग्रहणवर्जम् (वा०) | ६ | प्राणिपदिकग्रहणे लिङ्ग० (प०) | ७८ |
| एकानुब्रधग्रहणे १० (प०) | ५ | मन्वयन् हर्षाम् (वा०) | ७५ |
| वृद्धिकाराद्विनन (गण०) | ३६ | मातुलोपाध्यायदोर० (वा०) | ५६ |
| भिषकादीना च (वा०) | १८ | मामननरकयोप्य० (वा०) | ६८ |
| खरमयोगोपघान् (वा०) | २७ | दयैवामावकुवनी० (महा०) | ११ |
| गोत्र च चरणी मह (महा०) | २० | द्वनाल्लिप्याम्० (वा) | ५१ |
| चन्द्रभागान्घाम् (गण०) | ६० | दवाद् दोषे (वा०) | ५३ |
| आन्तरनेकाभिर्घादये० (कैट्ट) | ५१ | दा तु स्वयमेवाप्रानिना- (मि की) | ५५ |
| नापकमिद्ध न मवत्र (प०) | ११ | दोरप्रतिघेरे हृद० (वा०) | ७१ |
| ताच्छौलिके पेशिप० (मि की) | १६ | तथावन्ते द्वयोश्च० (किट्) | ३५ |
| त्यक्त्रश्च प्रतिघेरे (वा०) | ४८ | वनो न ह्य दनि० (वा०) | ३६ |
| | | वयन्चरमे (वा०) | २६ |

| | | | |
|----------------------------------|----|------------------------------|----|
| वर्षाना तणनिनिनान्नानाम् (फिट्०) | ३६ | सन्नियोगशिष्टाना मट्० (प०) | ३३ |
| वर्षार्धये नाम्नि प्रत्यय० | ८५ | समासप्रत्ययविधी० (वा०) | ४ |
| वर्षार्धादाट्ग वलीय (प०) | ८६ | सर्वतोऽज्जिन्नर्थाद्० (गण०) | ४० |
| शक्ति शस्त्रे (गण०) | ४१ | सूर्याज्जस्त्ययोग्ठे० (वा०) | ५० |
| शुद्धा चाऽमहत्पूर्वा० (गण०) | ५ | सूर्याद् देवताया चाव्० (वा०) | ८६ |
| श्वगुरस्योकाराकार० (वा०) | ७६ | हिमाज्जरण्योर्महत्त्वे (वा०) | ५३ |
| सत्त्व निविशतेऽपि० (महा०) | ३७ | | |

[४] परिशिष्टे—स्त्रीप्रत्ययप्रकरणगतोदाहरणतालिका

[भैमीव्याख्या के इस पृष्ठभाग के अन्तर्गत उदाहरणरूप से निर्दिष्ट प्रायः छ सौ रूपों की जकारादिक्रम से यहाँ अनुक्रमणो दी जा रही है। इन रूपों के आगे कोष्ठको में स्त्रीप्रत्यय दर्शाये गये हैं। (X) इस चिह्न से चिह्नित स्थानों पर किसी स्त्रीप्रत्यय के न होने की संकेतित किया गया है। कोष्ठको के आगे पृष्ठसख्या दी गई है। मूलोक्त उदाहरण स्थूल टाइप में तथा व्याख्योक्त उदाहरण सूक्ष्म टाइप में अङ्कित समझने चाहिये।]

[अ]

| | | | |
|------------------|----|--------------------|----|
| जहृनि (X) | ४१ | अन्नवंती (टीप्) | ६३ |
| अहृती (डीप्) | ४१ | जघङ्करणी (डीप्) | २० |
| अकरणि (X) | ४१ | अपरा (टाप्) | ६० |
| जाम्नी (डीप्) | ५१ | अपरी (टीप्) | ६० |
| अवननि (X) | ४१ | अरण्यानी (डीप्) | ५३ |
| अजा (टाप्) | ५ | अर्या (टाप्) | ५७ |
| अतिकेशा (टाप्) | ६० | अर्याणी (टीप्) | ५७ |
| अतिकेशी (डीप्) | ६० | अर्या (डीप्) | ५६ |
| जनिधीवरी (डीप्) | ८६ | अवदाता (टाप्) | ३५ |
| अन्पीवरी (डीप्) | ८६ | अवनि (X) | ४० |
| अनिमहिमा (X) | ६० | अवनी (डीप्) | ४० |
| अनिमहिमा (डाप्) | ६१ | अवन्ती (डीप्) | ७७ |
| अनभवनी (टीप्) | ६ | अवावरी (डीप्) | ८६ |
| अधियवा (टाप्) | ४८ | जवावा (X) | ८६ |
| अध्यापिका (टाप्) | ४६ | अशिश्वी (टीप्) | ६३ |
| जबर्बु (X) | ७८ | अश्वपातिका (टाप्) | ४५ |
| अनडुही (टीप्) | २७ | अशवा (टाप्) | ६ |
| जनड्वाहो (डीप्) | २७ | जष्टाध्यायी (टीप्) | ३१ |
| अनुचरी (डीप्) | १७ | अमिता (टाप्) | ३५ |
| | | अहि (X) | ८१ |
| | | अही (डीप्) | ८१ |

[आ]

| | |
|---------------------|--------|
| जाकृनिग्रहणा (टाप्) | ११६ |
| आक्षिप्ती (डीप्) | १६ |
| आखु (×) | ३७, ७४ |
| आचार्या (टाप्) | ५३ |
| आचार्यानी (डीप्) | ५३ |
| आढ्यङ्करणी (डीप्) | १६ |
| आयङ्गता (टाप्) | ६२ |
| आयङ्गती (डीप्) | ६२ |
| आर्या (डीप्) | १०७ |
| आवश्यकी (डीप्) | ११० |
| आवश्यकता (टाप्) | १११ |

[इ]

| | |
|-------------------|-----|
| इत्थरी (डीप्) | १७ |
| इदानीन्तनी (डीप्) | १०७ |
| इन्द्राणी (डीप्) | ५२ |
| इभ्या (टाप्) | ७४ |

[ई]

| | |
|---------------|---------|
| ईश्वरा (टाप्) | १७, १०१ |
| ईश्वरी (डीप्) | १७, १०१ |

[उ]

| | |
|--------------------|----|
| उत्तानशया (टाप्) | ३० |
| उपर्यकर (टाप्) | ६८ |
| उपाध्याया (टाप्) | ५५ |
| उपाध्यायानी (डीप्) | ५५ |
| उपाध्यायी (डीप्) | ५५ |

[ऊ]

| | |
|------------------|----|
| ऊरदक्षिणी (डीप्) | १५ |
| ऊरदक्षिणी (डीप्) | १५ |
| ऊरमात्री (डीप्) | १५ |

[ए]

| | |
|----------------|-----|
| एकपत्नी (डीप्) | ६६ |
| एडका (टाप्) | ६ |
| एता (टाप्) | ३६ |
| एनादृशा (डीप्) | १०७ |

| | |
|---------------|----|
| एधमाना (टाप्) | १७ |
| एनी (डीप्) | ३४ |

[ऐ]

| | |
|----------------|----|
| ऐन्द्री (डीप्) | १३ |
|----------------|----|

[ओ]

| | |
|--------------|----|
| जापधि (×) | ४० |
| जोषधी (डीप्) | ४० |

[औ]

| | |
|---------------|----|
| औत्सी (डीप्) | १६ |
| जौदमयी (डीप्) | ७७ |
| जोषधी (डीप्) | ७२ |

[क]

| | |
|------------|----|
| कटी (डीप्) | २६ |
|------------|----|

| | |
|---------------|----|
| कट्टका (टाप्) | ६७ |
|---------------|----|

| | |
|------------|----|
| कठौ (डीप्) | ७२ |
|------------|----|

| | |
|----------------|-----|
| कण्डूया (टाप्) | २१४ |
|----------------|-----|

| | |
|---------------|-----|
| कनिपया (टाप्) | ११५ |
|---------------|-----|

| | |
|---------------|-----|
| कनिपयी (डीप्) | ११५ |
|---------------|-----|

| | |
|-------------------|----|
| कदलीस्तम्भोर (ऊड) | ८१ |
|-------------------|----|

| | |
|---------------|----|
| कन्दका (टाप्) | ४८ |
|---------------|----|

| | |
|--------------|----|
| कन्या (टाप्) | २६ |
|--------------|----|

| | |
|--------------|----|
| कपिला (टाप्) | ३६ |
|--------------|----|

| | |
|-----------|----|
| कपि (×) | ४१ |
|-----------|----|

| | |
|------------|----|
| कपी (डीप्) | ४१ |
|------------|----|

| | |
|----------------|--------|
| करभोपमोर (×) | ८०, ८१ |
|----------------|--------|

| | |
|------------|----|
| करभोर (ऊड) | ८० |
|------------|----|

| | |
|----------------|-----|
| कर्णजपा (टाप्) | ११५ |
|----------------|-----|

| | |
|----------------|---|
| कर्त्री (डीप्) | ७ |
|----------------|---|

| | |
|----------------|----|
| कल्मापो (डीप्) | ३८ |
|----------------|----|

| | |
|---------------------|----|
| कल्याणत्रोडा (टाप्) | ६१ |
|---------------------|----|

| | |
|-------------------|----|
| कल्याणखुरा (टाप्) | ६५ |
|-------------------|----|

| | |
|-------------------|----|
| कल्याणगुदा (टाप्) | ६५ |
|-------------------|----|

| | |
|-------------------|----|
| कल्याणघोणा (टाप्) | ६५ |
|-------------------|----|

| | |
|---------------------|--------|
| कल्याणपुच्छा (टाप्) | ६२, ६५ |
|---------------------|--------|

| | |
|---------------------|--------|
| कल्याणपुच्छी (डीप्) | ६२, ६५ |
|---------------------|--------|

| | |
|---------------|-----|
| कामुका (टाप्) | १०७ |
|---------------|-----|

| | | | |
|-------------------|-----|----------------------|-------|
| चतुष्पाद् (X) | ६० | तमी (टीप्) | १० |
| चन्द्रभागा (टाप्) | ४२ | तरणी (टीप्) | ०० २६ |
| चन्द्रभागी (डीप्) | ४२ | तलुनी (टीप्) | ०० २६ |
| चन्द्रमुखा (टाप्) | ६१ | नादूधा (टाप्) | १०४ |
| चन्द्रमुखी (टीप्) | ६१ | तादूशी (टीप्) | १० |
| चन्द्रवदना (टाप्) | ६६ | ठापनी (टीप्) | १६ |
| चन्द्रानना (टाप्) | ११ | नापहारिणी (डीप्) | ११६ |
| चनिना (टाप्) | १३ | ताम्रमुखा (टाप्) | ६८ |
| चाद्रमनी (टीप्) | १४ | ताम्रमुखी (डीप्) | ६८ |
| चाक्कर्णा (टाप्) | ६५ | तारका (टाप्) | ६८ |
| चाक्कर्णी (डीप्) | ६५ | तारिका (टाप्) | ६६ |
| चिरण्टी (डीप्) | २६ | नावकी (डीप्) | १०२ |
| चिरन्नी (डीप्) | ११४ | तिनिरि (X) | ०४ |
| चिरायु (X) | १०६ | तीक्ष्णशृङ्गा (टाप्) | ६५ |
| चोरपत्नी (टीप्) | १० | तीक्ष्णशृङ्गी (डीप्) | ६५ |
| चोरी (डीप्) | १३ | तुङ्गनामिका (टाप्) | ६६ ६५ |
| चोरी (टीप्) | १४ | तुङ्गनामिकी (डीप्) | ६६ ६५ |
| | | तुदनी (टीप्) | १० |
| [छ] | | तुदनी (टीप्) | १० |
| छान्वा (टाप्) | १६ | तुल्यतमा (टाप्) | १०५ |
| | | त्रपा (टाप्) | २५ |
| [ज] | | त्रिशक्तमी (टीप्) | १०६ |
| जानुदधनी (डीप्) | १५ | त्रिदाम्नी (टीप्) | ६१ |
| जानुद्वयमी (डीप्) | १५ | त्रिपदी (टीप्) | ६० |
| जानुमात्री (डीप्) | १५ | त्रिपादी (टीप्) | ३१ |
| जिबरी (डीप्) | १७ | त्रिपाद् (X) | ६० |
| जीवपति (X) | ६४ | त्रिफला (टाप्) | ३१ |
| जीवपत्नी (डीप्) | ६४ | त्रिनोकी (टीप्) | ३० |
| | | त्रिवर्षा (टाप्) | ३० |
| [त] | | त्रिमूत्रा (टाप्) | १०८ |
| तदो (टीप्) | ७० | त्रिहायना (टाप्) | ६२ |
| तत्रभवती (डीप्) | ६ | त्रिहायणी (टीप्) | ६० |
| तनु (X) | ३७ | त्र्यनोका (टाप्) | ३१ |
| तनुगात्रा (टाप्) | ६२ | त्रेणो (टीप्) | ३३ |
| तनुगात्री (टीप्) | ६२ | न्वाङ्गी (टीप्) | १७ |
| तञ्जी (डीप्) | ३७ | | |
| तमि (X) | ४० | | |

[द]

| | |
|--------------------|-----|
| दण्डिका (टाप्) | १६ |
| दण्डिनी (टोप्) | ७ |
| दवि (×) | ८० |
| दर्वा (टोप्) | ८० |
| दशरथी (टोप्) | ३१ |
| दाक्षी (टोप्) | ७६ |
| दामा (×) | ६० |
| दामा (डाप्) | ६१ |
| दीव्यती (टोप्) | १० |
| दुष्क्रीता (टाप्) | ५८ |
| दुस्तरा (टाप्) | ११७ |
| दुलभा (टाप्) | १०७ |
| दुहिता (×) | १०८ |
| देवकी (टोप्) | ८८ |
| देवी (टोप्) | १३ |
| देव्या (टाप्) | २३ |
| दृष्टी (टोप्) | ११६ |
| द्वारपालिका (टाप्) | ६५ |
| द्विदाम्नी (टोप्) | ६१ |
| द्विपर्वा (टाप्) | ३० |
| द्विहायनी (टोप्) | ६१ |
| द्वैप्या (टाप्) | २३ |

[ध]

| | |
|-----------------|----|
| धनश्रीता (टाप्) | ५७ |
| धनिका (टाप्) | १० |
| धमनि (×) | ४० |
| धमनी (टोप्) | ८० |
| धरणि (×) | ८० |
| धरणी (टोप्) | ४० |
| धारिका (टाप्) | ८६ |
| धावरी (टोप्) | ८६ |
| ध्रुवका (टाप्) | ८८ |

[न]

| | |
|----------------|----|
| नगरकारी (टोप्) | १६ |
|----------------|----|

| | |
|-----------------------|-----|
| नगरपालिका (टाप्) | ४५ |
| नग्नद्वारणी (टोप्) | २० |
| नटी (टोप्) | २४ |
| नदी (टोप्) | १३ |
| नमन्नी (टोप्) | १० |
| नमस्कारपुर मरा (टाप्) | ११० |
| नरिका (टाप्) | ४६ |
| नरी (टोप्) | ८६ |
| नरुंकी (टोप्) | २५ |
| नखरी (टोप्) | १७ |
| नानारूपधरा (टाप्) | ११३ |
| नापिनी (डोप्) | ११५ |
| नायिका (टाप्) | ६६ |
| नारी (टोन्) | ८५ |
| नारी (टोन्) | ८६ |
| निमला (टाप्) | ११६ |
| निर्यादवा (टाप्) | ११५ |
| नीति (×) | ४० |
| नूतना (टाप्) | १०६ |
| नैजी (टोप्) | १०६ |
| नौका (टाप) | ४७ |

[प]

| | |
|-----------------|----|
| पङ्गू (ऊट्) | ८६ |
| पञ्चती (टोप्) | १० |
| पञ्चमाना (टाप्) | १७ |
| पञ्चतयो (टोप्) | ११ |
| पञ्चपूली (टोप्) | ३१ |
| पञ्चवटी (टोप्) | २१ |
| पञ्चाजी (टोप्) | ६ |
| पटु (×) | ३७ |
| पट्वी (टोप्) | ३७ |
| पठिता (टाप्) | १३ |
| पतन्नी (टोप्) | १० |
| पतिना (टाप) | १३ |
| पतिवन्ती (टोप्) | ६२ |

परिगण्टानि

| | | | |
|----------------------|-----|----------------------|---------|
| पनी (डीप्) | ६४ | पृच्छनी (डीप्) | १० |
| पद्धति (×) | ४१ | पृथु (×) | ३३ |
| पद्धती (डीप्) | ४१ | पृथुजघना (टाप्) | ६६ |
| पद्मवदना (टाप्) | ६६ | पृथ्वी (डीप्) | ३३ |
| परमायद्ग्वरी (डीप्) | ८६ | पेम्बरा (टाप्) | १३ |
| परिव्राजका (टाप्) | ४६ | पौम्नी (डीप्) | १६ |
| पलितङ्करणी (डोप्) | २० | प्राज्ञा (टाप्) | १४, ११३ |
| पलिना (टाप्) | ३५ | प्राज्ञी (डीप्) | ११३ |
| पशुपालिका (टाप्) | ४५ | प्रातग्निवरी (डोप्) | ८८ |
| पाणिगृहीता (टाप्) | ६२ | प्रास्थिकी (डीप्) | १६ |
| पाणिगृहीती (डीप्) | ६२ | प्रियङ्करणी (डीप्) | २० |
| पाण्डु (×) | ३७ | प्लामी (डीप्) | ७६ |
| पानी (डीप्) | १० | | [ब] |
| पादापिनेक्षणा (टाप्) | ६६ | वलहृग (टाप्) | १०८ |
| पान्ती (डीप्) | १० | बनाका (टाप्) | ७३ |
| पापा (टाप्) | ६२ | बहु (×) | ३६ |
| पापी (डीप्) | ६२ | बहुकुम्भग (टाप्) | १२ |
| पामा (×) | ६० | बहुपरिव्राजका (टाप्) | ६३ |
| पामा (डोप्) | ६१ | बहुयज्वा (×) | ६० |
| पारदृश्वरी (डीप्) | ८८ | बहुयज्वा (डोप्) | ६१ |
| पावनी (डीप्) | ११५ | बहुयुवा (×) | ८३ |
| पितामही (डीप्) | २६ | बहुयुवा (टाप्) | ८३ |
| पिपीलिका (टाप्) | ७३ | बहुराजा (×) | ६१ |
| पिप्पली (डीप्) | २६ | बहुराजा (टाप्) | ६१ |
| पीतस्तना (टाप्) | ६३ | बहुराज्ञी (डीप्) | ६१ |
| पीनम्ननी (डीप्) | ६३ | बह्वी (डीप्) | ३६ |
| पीवरी (डीप्) | ८८ | बह्वृची (डीप्) | ७३ |
| पीवरोर (×) | ८१ | बाला (टाप्) | ६, २६ |
| पुत्रकाम्या (टाप्) | ४७ | बिम्बोष्ठा (टाप्) | ६५ |
| पुरपरी (डीप्) | १०६ | बिम्बोष्ठी (डीप्) | ६५ |
| पुराणा (टाप्) | ४२ | बिम्बोष्ठा (टाप्) | ६५ |
| पुराणी (डोप्) | ४२ | बिम्बोष्ठी (डीप्) | ६५ |
| पूजिता (टाप्) | १३ | बदी (डोप्) | ८६ |
| पृच्छनी (डीप्) | १० | ब्राह्मणी (डीप्) | ७१, ८४ |

[भ]

| | | | |
|-------------------|---------|------------------|--------|
| भयङ्करा (टाप्) | १०२ | मुक्थो (डीप्) | ७४ |
| भयानका (टाप्) | १०६ | मुण्डा (टाप्) | ७३ |
| भर्तृदेवा (टाप्) | ११० | मुनि (×) | ४० |
| भवनी (डीप्) | ६ | मुनी (डीप्) | ४२ |
| भवती (डीप्) | १० | मूथिका (टाप्) | ७ |
| भवानी (डीप्) | ५२ | मृडानी (डीप्) | ५० |
| भविष्यन्ता (डीप्) | १० | मृदु (×) | २७ |
| भविष्यन्ती (डीप्) | १० | मृन्मथी (डीप्) | ११६ |
| भाग्येया (टाप्) | ६० | मृदङ्गा (टाप्) | ६२, ६५ |
| भाग्येयी (डीप्) | ६२ | मृदङ्गी (डीप्) | ६२, ६३ |
| भाम्बरा (टाप्) | १७ | मृद्वी (डीप्) | ३७ |
| भूपालिका (टाप्) | ४५ | मेघा (टाप्) | ६ |
| भूमि (×) | ८० | | |
| भूमी (डीप्) | ४० | [य] | |
| भूपिका (टाप्) | १३ | यनमाना (टाप्) | १७ |
| भेषजा (टाप्) | ६२ | यमी (डीप्) | ४६ |
| भेषजी (डीप्) | ६२ | यवनानी (डीप्) | ५४ |
| | | यवनी (डीप्) | ५६ |
| [म] | | यवानी (डीप्) | ५६ |
| मक्षिका (टाप्) | ७३ | यष्टि (×) | ६२ |
| मति (×) | ६० | यष्टी (डीप्) | ६२ |
| मन्सी (डीप्) | ७५ | याती (डीप्) | १० |
| मनुषी (डीप्) | ७४ | यादृशी (डीप्) | १७ |
| मन्दा (टाप्) | ६ | यान्ती (डीप्) | १० |
| महापानी (डीप्) | ६३ | यावनी (डीप्) | ५६ |
| महाललाटा (टाप्) | ६६ | घुवति (ति) | ६७ |
| महाशूद्री (डीप्) | ७१, १०३ | युवती (डीप्) | ६८ |
| मानामही (डीप्) | २६ | युवती (डीप्) | ६८ |
| मातुलानी (डीप्) | ५६ | यका (टाप्) | ७३ |
| मातुली (डीप्) | ५४ | यागिनी (डीप्) | ७ |
| मादृशी (डीप्) | १७ | | |
| मानुषी (डीप्) | ७५ | [र] | |
| मामनी (डीप्) | ६२ | रक्तकण्ठा (टाप्) | ६५ |
| मामिका (टाप्) | ६२ | रक्तकण्ठी (डीप्) | ६५ |
| | | रजनी (डीप्) | २६ |
| | | रजति (×) | ४० |
| | | रजनी (डीप्) | ४० |

| | | | |
|-----------------|---------|-------------------|-----|
| शुक्ला (टाप्) | ७१ | सहसुध्वा (×) | ८६ |
| शुनी (डोप्) | २६ | सहिष्णु (×) | ८३ |
| शूद्रा (टाप्) | ८१, १०३ | सहोदरा (टाप्) | १११ |
| शूद्री (डोप्) | ७१ १०३ | सहितोरु (ऊट) | ८२ |
| शूरमेनी (टोप्) | ८५ | साधु (×) | ३७ |
| शूर्पणखा (टाप्) | ६७ | साध्वी (डोप्) | ३७ |
| शूर्पनखा (टाप्) | ६७ | सायतनी (डोप्) | १३ |
| शूर्पनखी (डोप्) | ६७ | मारङ्गी (डोप्) | ३६ |
| शैली (टोप्) | १०१ | सीमा (×) | ६० |
| श्याली (टोप्) | ४८ | सीमा (टाप्) | ६१ |
| श्येता (टाप्) | ३५ | सुकफा (टाप्) | ६२ |
| श्येनी (डोप्) | ३५ | सुकुमारी (डोप्) | ११३ |
| श्रेणि (×) | ४० | सुक्रीना (टाप्) | ५८ |
| श्रेणी (टोप्) | ४० | सुखमयी (टोप्) | १०१ |
| श्राणि (×) | ४० | सुगला (टाप्) | ६५ |
| श्रोणी (डोप्) | ४० | सुगात्रा (टाप्) | ६५ |
| श्वश्रू (ऊट) | ८० | सुगानी (डोप्) | ६५ |
| श्वेता (टाप्) | ३५ | सुगुल्फा (टाप्) | ६१ |
| | | सुचर्मा (×) | ६० |
| | | सुचर्मा (डाप्) | ६१ |
| | | सुजघना (टाप्) | ६६ |
| | | सुजङ्घा (टाप्) | ६५ |
| | | सुजङ्घी (टोप्) | ६५ |
| | | सुज्ञाना (टाप्) | ६३ |
| | | सुत्वरौ (डोप्) | १७ |
| | | सुधीवरौ (डोप्) | ८६ |
| | | सुनयना (टाप्) | ६६ |
| | | सुन्दरौ (डोप्) | २६ |
| | | सुन्दरोग (×) | ८१ |
| | | सुपदौ (टोप्) | ६० |
| | | सुपर्वा (×) | ६० |
| | | सुपर्वा (डाप्) | ६१ |
| | | सुपाद् (×) | ६० |
| | | सुपाश्र्वा (टाप्) | ६२ |

[स]

| | | | |
|-------------------|-----|---------------------|-------|
| सुभगङ्करणी (डीप्) | २० | मोरी (टीप्) | ५०,५१ |
| सुभगा (टाप्) | ६५ | मनघयी (टीप्) | १३ |
| सुभुजा (टाप्) | ११० | स्तुति (X) | ४० |
| सुभङ्गला (टाप्) | ६२ | स्त्रीणी (टीप्) | १८ |
| सुभङ्गली (डीप्) | ६२ | स्यावरा (टाप्) | १७ |
| सुमुखा (टाप्) | ६३ | स्यूलङ्करणी (टीप्) | २० |
| सुरापी (डीप्) | १०७ | स्निग्धकण्ठा (टाप्) | ६० |
| सुवक्त्रा (टाप्) | ६२ | स्निग्धकण्ठी (टीप्) | ६० |
| सुवदना (टाप्) | ६६ | स्वक्रीता (टाप्) | ५८ |
| सुशिक्षा (टाप्) | ६२ | स्वधरा (टाप्) | ६२ |
| सुशोभा (टाप्) | ६३ | म्बभावजा (टाप्) | ३ |
| सृस्वेदा (टाप्) | ६३ | स्वाभाविकी (टीप्) | ११३ |
| सृहम्ना (टाप्) | ६२ | | [ह] |
| सूकरी (टीप्) | ३० | हयी (टीप्) | ३४ |
| सूरी (टीप्) | ५० | हरिणी (टीप्) | ३१ |
| सूर्या (चाप) | ४६ | हरिता (टाप्) | ३१ |
| सूबरी (टीप्) | १३ | हर्षी (टीप्) | ३ |
| सौदरा (टाप्) | १११ | हारिका (टाप्) | ४६ |
| सादया (टाप्) | ११२ | हिमानो (टीप्) | ५३ |
| सौपर्णयो (टीप्) | १३ | होडा (टाप्) | ६ |

[५] परिशिष्टे—स्त्रीप्रत्ययप्रकरणोपयोगि अष्टाध्यायीसूत्रपाठ

[इस परिशिष्ट मे सम्पूर्ण स्त्रीप्रत्ययप्रकरण अष्टाध्यायीरुमानुसार दिया जा रहा है। विद्यार्थी यदि इसे कण्ठस्य कर लें तो इस प्रकरण मे ऐसा नुण्य प्राप्त हो सकता है जो कौमुदीक्रम मे दुर्लभ है। इन सूत्रो मे जो सूत्र लघुसिद्धान्तकौमुदी के मूल मे पड़े गये हैं उन्हें स्यूल टाइप मे तथा अन्यो को दारोक टाइप मे दिया गया है।]

अष्टाध्यायीसूत्रपाठे—

चतुर्थोऽध्याय

प्रथम पाद

(१) डचाप्रातिपदिकात् ।

(२) श्चौत्रसप्तौऽष्टाभ्याम्भिन्दस्ते-

भ्याम्भ्यस्तेडमिभ्याम्भ्य-

स्तेसोसाडचोस्मुप् ।

(३) त्त्रियाम् ।

(४) अजाद्यतष्टाप् ।

(१) ऋन्नेभ्यो डीप् ।

(६) उगितश्च ।

(७) वनो र च ।

(८) पादाज्यतरम्याम् ।

(९) टाड्चि ।

(१०) न पदस्वत्वादिभ्य ।

(११) मन ।

(१२) जनो बहुव्रीहे ।

(१३) तावुभाभ्यामयतरम्याम्

- (१४) अनुपसजनात् ।
 (१५) टिडडाणञ्चयसञ्चधन-
 ञ्मात्रत्तयष्टवठञ्-
 कञ्चवरप ।
 (१६) यत्रश्च ।
 (१७) प्राचा ष्फ तद्धित ।
 (१८) सर्वत्र लोहिनादिकतन्तेभ्य ।
 (१९) कौरव्यमाण्डकाभ्या च ।
 (२०) वयसि प्रथमे ।
 (२१) द्विगो ।
 (२२) अपरिमाणविम्नाचिन-
 कम्बत्वेभ्यो न तद्धितलुकि ।
 (२३) नाण्डान्नान् भेत्रे ।
 (२४) पुण्यात् प्रमाणेऽन्यतरस्याम् ।
 (२५) बहुव्रीह्युभो डीप् ।
 (२६) सडष्ट्याऽव्ययादडोप् ।
 (२७) दामहायनान्नाच्च ।
 (२८) अन उपधालोपिनो-
 यतरस्याम् ।
 (२९) नितर सञ्ज्ञाच्छदसो ।
 (३०) केवल-भामक भागधेय-
 पापाऽपर-ममानाऽयंकृत-
 मुमङ्गत भेपजाच्च
 (३१) रात्रेश्चाजसो ।
 (३२) अन्नवत्पनिवतोर्नुक् ।
 (३३) पत्युर्नो यज्ञसयोग ।
 (३४) विभाषा सपूर्वस्य ।
 (३५) नित्य सप्-यादिषु ।
 (३६) पूतनोरै च ।
 (३७) वृषत्कप्यग्निङ्कुमित्त-
 कुमीदानामुदात्त ।
 (३८) मनोरो वा ।
 (३९) वर्षादिनुदात्तात्तोपधातो न ।
 (४०) अन्यतो डीप् ।
 (४१) पिङ्गोरादिभ्यश्च ।

- (४२) जानपद-कुण्ड-गोण-स्थल-
 भाज-नाग-काल-नील-कुश-
 कामुक-कवराद् वृत्त्यमना-
 वपनादृत्त्रिमाश्राणास्थौल्य-
 वर्णानाच्छादनायोविनार-
 मंथुनेच्छाकेशवेशेषु ।
 (४३) शोणात् प्राचाम् ।
 (४४) वोतो गुणवचनात् ।
 (४५) बहुादिभ्यश्च ।
 (४६) नित्य छदसि ।
 (४७) भुवञ्च ।
 (४८) पुयोगादारयायाम् ।
 (४९) इन्द्र-वरुण-भव-शत्र-
 रद्र-मूड हिमाऽरण्य-यव-
 यवत-मातुलाचार्याणा
 मानुक् ।
 (५०) क्रीतात्करणपूर्वात् ।
 (५१) क्नादल्पाट्यायाम् ।
 (५२) बहुव्रीहेश्चान्तादात्तात् ।
 (५३) अस्वाङ्गपूर्वपदाद्वा ।
 (५४) स्वाङ्गाच्चोपसर्जनाद-
 सयोगोपधात् ।
 (५५) नामिकोदरोष्ठजडभा-
 दन्तकर्णशृङ्गाच्च ।
 (५६) न कोडादिवह्वच्च ।
 (५७) सट्ठन्ञ्विद्यमानपूर्वाच्च
 (५८) नखमुखात्सज्ञायाम् ।
 (५९) दीर्घजिह्वी च छदसि ।
 (६०) द्विकपूर्वपदा डीप् ।
 (६१) वट् ।
 (६२) सङ्घशिश्वीति भाषायाम् ।
 (६३) जातेरस्त्रीविषयादयो-
 पधात् ।
 (६४) पाक-कण-भ्रणं पुष्प-
 पत्त-भूल वातोत्तरपदाच्च ।

| | |
|--------------------------------|----------------------------|
| (६५) इतो मनुष्यजाते । | (७२) सञ्जायाम् । |
| (६६) ऊङुत् । | (७३) शाङ्गंरवाद्ययो डीन् । |
| (६७) वाङ्मनान सजायाम् । | (७४) यङ्ग्याप । |
| (६८) पङ्गोश्च । | (७५) आवट्याच्च । |
| (६९) उत्तरपदादौपम्ये । | (७६) तद्धिता । |
| (७०) सहितशफलक्षणवामादेश्च । | (७७) घूर्ति । |
| (७१) कट्ट-कमण्डन्वोऽङ्गुलिम् । | |

[६] परिशिष्टे—विशेषद्रष्टव्य-स्थल-तालिका

[इस तालिका में इस व्याख्या के कतिपय द्रष्टव्यमूलो का निर्देश किया गया है। आगे पृष्ठमह्यता दी गई है।]

| | | | |
|-------------------------------------|------|--|------|
| स्त्रीन्व का विवेचन | (३) | 'पुयोग' का विवेचन | (१३) |
| अजादिगण—अनेक उदाहरण | (६) | 'गोपालिका' की व्याकरणप्रक्रिया | (१४) |
| अजादियों में अदन्त शब्द | (७) | प्रत्ययम्य ककार की स्थिति | (१६) |
| 'भूपिक' पर विशेष टिप्पण | (६) | प्रत्ययस्थात्० के कुछ जपवाद | (६८) |
| 'पञ्च' में टाप्निषेध कैसे ? | (८) | सूर्यागम्ययो० का विवेचन | (१०) |
| शरन्तो म नुम्-विवेचन | (१०) | अनुक् न वर जानुक् क्यो ? | (५३) |
| टिड्ढाणञ० पर सुभाषित | (११) | 'यवानो' में यव का क्या दाप ? | (५४) |
| आगम का टित्व टोप्प्रयोजक नहीं | (१३) | यवतानी-यावनी-यवनी में भेद | (५५) |
| 'ण' में भी जष्वत् कार्य | (१४) | स्वयम् उपात्र्याय होने पर स्त्रीलिङ्ग | (५५) |
| लौटादेश शानच् में डीप् नहीं | (१७) | उपात्र्याय और आचाय का लक्षण | (५५) |
| हलस्नाद्धिनम्य में 'उपात्र्याय' | (२२) | क्रोनात्करण० सूत्र की वृत्ति निर्दुष्ट | (५६) |
| हलस्नाद्धिनस्य पर विशेष वक्तव्य | (२३) | क्रोनात्करण० सूत्र की क्वाचित्कता | (५७) |
| गाग्यायणी में दा स्त्रीप्रत्यय | (२५) | 'स्वाङ्ग' का विम्बुत विवेचन | (६२) |
| गौरादिगण—अनेक उदाहरण | (२६) | 'मुग्धिवा' पाठ दापपूर्ण | (६२) |
| वयसि प्रथमे या वयस्यचरमे | (२६) | त्रोडादियों का सप्रहस्रलोक | (६६) |
| वयसि प्रथमे पर पाणिनीयमन्वय | (३०) | शूरंणया का नक्षिप्त इतिहास | (६८) |
| द्विगुममास में स्त्रीत्वविवेचन | (३१) | पूर्वपदान्० से 'रघुनाय' में णम्ब नहीं | (६९) |
| वर्णादनुदात्तात्तो० का अपूर्वं अर्थ | (३३) | 'जानि' का विवेचन | (७०) |
| अवदाता में डीप् क्या नहीं ? | (३५) | मनुषी और मानुषी—निष्पत्ति | (७५) |
| वोतो गुणवचनात् पर भाष्यमन | (३६) | पाणिनि की माता—दाक्षी | (७६) |
| 'गुण' का सादाहरण विवेचन | (३७) | ऊङन्तो में स्वाद्युत्पत्ति | (७८) |
| बहुशब्द गुणवचन नहीं | (३८) | कानिदान के कुछ ऊङन्त | (८१) |
| कृदिकारादिक्रिय के १४ उदाहरण | (४०) | नृनरयोवृद्धिश्च का अर्थविवेचन | (८६) |
| संबन्तोऽक्रियन्नर्या० के १५ उदाहरण | (४२) | | |

| | |
|-------------------------------------|--|
| 'युवती' मे डीप् वा डीप् कंमे ? (८८) | उदाहरणो की वर्णानुक्रमणी (१२०) |
| मूलातिरिक्त कुछ अन्य सूत्र (८८) | अष्टाध्यायी का स्त्रीप्रत्ययप्रकरण (१२६) |
| शुद्धाशुद्धबोधकशतकम् (१०१) | विशेष स्मरणीय कुछ पद्य (१३२) |

[७] परिशिष्टे—विशेष-स्मरणीय-पद्यमाला

[भंमोव्याख्या-पठभागस्य दर्जनो पद्यो मे से व्याकरणसम्बन्धी कुछ विशेष स्मरणीय पद्य यहा सकलित किये गये हैं ।]

- (१) टाप्-डाप् चापस्त्रयोज्येने डीप्-डीप्-टीन्प्रत्ययै सह ।
ऊङ्निष्ठा मिलिताश्चापि सन्त्यष्टी प्रत्यया स्त्रियाम् ॥ (पृष्ठ २)
- (२) स्तनकेशवती स्त्री म्यान्लोमज्ञ पुरुष स्मृत ।
उभयोरन्तर यच्च तदभाव नपुसकम् ॥ (पृष्ठ ३)
- (३) स्वसा तिस्रश्चतस्रश्च ननान्दा दुहिता तथा ।
याता मानेति सप्तैने स्वयादय उदाहृता ॥ (पृष्ठ ८)
- (४) टिट्शान्द्वयमच्चुट्टुट्टिसिङ्नास्तिप्तस्त्रिसिष्यस्थमिद्व-
वस्मस्नाह्शिचष्टुनाष्टुरत इञ्शश्छोष्टचोञ्ज्यादि टि ।
लोपोव्योर्बलिवृद्धिरोचियचिभ दाधाध्वदाप्तेचट-
रित्यश्चानखितानयन्ति कतिचिच्छब्दान् पठन्त वटून् ॥ (पृष्ठ ११)
- (५) स्मृत्याऽजादिगणे युक्ता टाब्रुत्पत्तिद्विगोरपि ।
त्र्यनीकेति गणे कीत्य स्यादाकृतिगणो हि स ॥ (पृष्ठ ३१)
- (६) त्रीणि यस्यावदातानि विशा योनिश्च कम च ।
एनच्छिवे ! विजानीहि ब्राह्मणाग्रचस्य लक्षणम् ॥ (पृष्ठ ३५)
- (७) सत्त्वे निविशतेऽपैति पृथग्जातिषु दृश्यते ।
आघेयश्चाक्रिप्राजश्च सोऽनत्वप्रकृतिर्गुण ॥ (पृष्ठ ३७)
- (८) क्वचित्पुत्र्यामपि हर पुयागे डीपमिच्छति ।
वेकयी केकयमुता देवकी देवकात्मजा ॥ (पृष्ठ ४३)
- (९) एकदेश तु वेदस्य वेदाङ्गान्यपि वा पुन ।
योऽध्यापयति वृत्यर्थमुपाध्याय स उच्यते ॥ (पृष्ठ ५५)
- (१०) उपनीय तु य शिष्य वेदमध्यापयेद् द्विज ।
सकल्प सरहस्य च तमाचार्यं प्रचक्षते ॥ (पृष्ठ ५५)
- (११) अयाणी स्वयमर्या स्यात् क्षत्रिया क्षत्रियाण्यपि ।
उपाध्यायाऽप्युपाध्यायी म्यादाचार्यापि च स्वन ॥
आचार्यानी तु पुयागे स्यादर्या क्षत्रियो तथा ।
उपाध्यायाऽप्युपाध्यायी ॥ (पृष्ठ ५६)

- (१२) सा हि तस्य घननीता प्राणेष्वोऽपि गरीयसी ॥ (पृष्ठ ५७)
- (१३) अद्रव मूर्त्तिभत् स्वाद्ग प्राणिस्यमविकारजम् ।
अनस्य तत्र दृष्ट च तेन चेतत्तथायुतम् ॥ (पृष्ठ ६०)
- (१४) क्रोड-बाल-गला भाल-भगोत्रा खुग्मयुता ।
शफो भुजो गुद घाणाकरी क्रोडादिनामनि ॥ (पृष्ठ ६६)
- (१५) अविकारोऽद्रव मूर्त्तं प्राणिस्य स्वाङ्गमुच्यते ।
च्युतं च प्राणिनस्तत्तद् निभं च प्रतिमादिषु ॥ (पृष्ठ ६४)
- (१६) जाहृतिग्रहणा जानि, लिङ्गानां च न सर्वभाक् ।
महृदाद्यातनिर्ग्राह्या, गोत्रं च चरणं सह ॥ (पृष्ठ ७०)
- (१७) गुणे शुक्तादयः पुमि गुणिलिङ्गास्तु तद्वनि ॥ (पृष्ठ ७१)
- (१८) शूद्री शूद्रस्य भार्या म्याच्छूद्रा तज्जानिरेव च ।
आभीरी तु महाशूद्री जानिपुयोगया ममा ॥ (पृष्ठ ७१)
- (१९) पुरा कल्प तु नारीणां मौञ्जीबन्धनमिष्यत ।
अध्यापनं च वदानां सावित्रीवचनं तथा ॥ (पृष्ठ ७३)
- (२०) सर्वे सर्वपदादेशा दाक्षीपुत्रस्य पाणिनः ॥ (पृष्ठ ७६)
- (२१) अवावरी धीनिमिगस्य पीवरी
ममारमिधो परमायदृश्वरीम् ।
मुद्रीवरी मत्पुत्रपायसम्पदा
तमामि भक्त्या परया सरस्वतीम् ॥ (पृष्ठ ८६)

[८] परिशिष्टे—स्त्रीप्रत्ययविधायकमुत्पत्सूत्राणि

[स्त्रीप्रत्ययो के विधायकसूत्रों में विचार्यों प्रायः डोर डोष् डीर् आदि में अशुद्धि कर जाते हैं । अतः यहाँ उन के मौकर्म के लिये तत् प्रत्ययो के विधायकसूत्र पूयक् पूयक् दर्शाए जा रहे हैं ।]

[१] टाप्-विधायक—

१ अजाद्यतष्टाप् (१२४६)

[२] डाप्-विधायक—

१ डाबुभाष्यामन्थतरस्याम्
(८११३)

[३] चाप्-विधायक—

१ सूरद्विवनाया चाव्वाच्य (वा०)

[४] डीप्-विधायक—

१ ऋन्नेभ्यो डीप् (२८२)
२ उगितश्च (१०५०)
३ यजश्च (१२५२)

४ टिट्ठान्त् (१०५२)

५ नञ्जनीक्त् (वा०)

६ वयमि प्रथमे (१२५६)

७ द्विगो (१२५७)

८ वषादिनुदात्तानाप् (१०५८)

९ वनो र च (४१८)

१० पादोऽन्यतरस्याम् (४१८)

११ जन उपप्राप्तोपिना० (४१२८)

१२ दामहायनान्ताच्च (८१०३)

१३ केवलमामकभागप्रथ० (४१३०)

[५] डीष्-विधायक—

- १ पिद्गौरादिभ्यश्च (१२५५)
- २ आमनदुह् मित्रया वा (गण०)
- ३ जन्यतो डीष् (११४०)
- ४ वोनो गुणवचनात् (१२५६)
- ५ बह्नादिभ्यश्च (१२६०)
- ६ कृदिकारादक्रिनन (गण०)
- ७ सवतोऽक्रिननथाद् (गण०)
- ८ पृथोगादार्यायाम् (१२६१)
- ९ इन्द्रवरुणभवशवं० (१२६३)
- १० मातुलोपाध्याययोरानुंवा (वा०)
- ११ जाचार्यादणव च (वा०)
- १२ अयक्षत्रिमाभ्या वा स्वायें (वा०)
- १३ त्रीतात्वरणपूर्वात् (१२६८)
- १४ स्वाङ्गाच्चापसजनाद० (१२६६)
- १५ जातेरस्त्राविषयाद० (१२६६)
- १६ यापघप्रतिषेधे ह्यगवय० (वा०)
- १७ इतो मनुष्यजाते (१२७०)
- १८ तामिकोदरोष्ठ० (४१३०)

१६ अङ्गावकण्ठेभ्य० (वा०)

- २० पुच्छाच्चेति वक्त्रव्यम् (वा०)
- २१ बहुव्रीहृद्यसो डीष् (११२५)
- २२ पाणिगृहीतो भार्यायाम् (वा०)
- २३ मध्यशिखीति भाषायाम्
(४१६२)

[६] डीन् विधायक—

- १ शार्ङ्गेरवाद्यो डीन् (१२७५)
- २ नूनरयोवृद्धिश्च (गण०)

[७] ऊङ्-विधायक—

- १ ऊङुत् (१२७१)
- २ पङ्गोश्च (१२७२)
- ३ श्वशुरस्याकाराकारनोपश्च (वा०)
- ४ ऊङ्तरपदादीपम्ये (१२७३)
- ५ महितघाफलक्षणवामादेश्च
(१२७४)

[८] ति-विधायक—

- १ मूनस्ति (१२७६)

[६] परिशिष्टे—सक्षिप्त पाणिनीय लिङ्गानुशासनम् (सध्याख्यम्)

[संस्कृत में शब्दों के लिङ्गों का ज्ञान जय भाषाशा की ज्येष्ठा अधिक जटिल, ध्यानव्य एव चिन्तनीय है। यहा विशेष्य के लिङ्ग के अनुमार ही प्राय विशेषण का लिङ्ग होता है। सर्वनामों से भी विशेष्यानुमार लिङ्गव्यवस्था मानी जाती है। उन लिङ्गज्ञान इस में अत्यावश्यक होता है। लिङ्गविषयक अशुद्धि में मारा वाक्य ही गड़बड़ा सकता है। प्राचीनकाल में जब संस्कृत लोकभाषा थी तब लाकव्यवहार में ही लिङ्गों का ज्ञान हो जाता था, अनएव भाष्यकार न कहा है—लिङ्गमसिष्य लोकाध्यस्तबाल्लिङ्गस्य (महाभाष्य)। परन्तु अब जबकि संस्कृत लाकभाषा नहीं रही, ग्रन्थों तक ही सीमित तथा विद्वत्समाज की ही व्यवहार्य वस्तु रह गई है तो लिङ्गज्ञान की आवश्यकता पूर्वापार्या और भी अधिक बढ़ गई है। अद्यम्बे मुधीजन भी लिङ्ग के विषय में ध्यामूट हो कर बहुधा स्थलन करते देखे जाते हैं। उन एव लिङ्गज्ञान का अत्यावश्यक समझने हुए संस्कृत कोषकार प्रत्येक शब्द के लिङ्ग का दमान म मयत्न देने जाते हैं।]

पाणिनीय लिङ्गानुशासन में पूरी तरह ता नहीं पर हा कुछ सीमा तक लिङ्गज्ञान की आवश्यकता पूरी हो जाती है और इस में विद्यार्थी लिङ्गज्ञान के प्रति

जागरुक एव प्रबुद्ध हो जाते हैं। वम यही शोचकर यहा कानोपपागी मक्षिप्त पाणिनीय-लिङ्गानुशासन की व्याख्या प्रस्तुत कर रहे हैं। जाणा है छात्रवृद्ध इस में लाभार्थक हो सकेगा।

पुलिङ्ग आदि शब्दों में पुम् आदि शब्द भावप्रधान निदिष्ट किये गये हैं। पुस्त्व लिङ्गम् अस्मेति पुलिङ्गोऽर्थः। म्नात्वं लिङ्गमस्मिन् स्त्रीलिङ्गम्। तपुमस्मिन् लिङ्गमस्मेति नपुमस्त्वलिङ्गम्। वैयाकरण लिङ्ग को अय-निष्ठ मानते हैं पर शब्द जो अर्थ के अभेदोपचार के कारण शब्दों में भी पुलिङ्ग आदि का व्यवहार किया जाता है।

✽ अथ सक्षिप्त पाणिनीय लिङ्गानुशासनम् ✽

[१] लिङ्गम् ॥

यह अधिकारम्बुन है। यहा न जागे शब्दों के लिङ्गों का अनुशासन किया जायेगा।

[२] स्त्री ॥

सर्वप्रथम स्त्रीलिङ्ग का अधिकार चला रहे है।

[३] ऋकारात्ता मातृ-दुहितृ-स्वमृ-यातृ-ननादृ ॥

मातृ (माता), दुहितृ (पुत्री) स्वमृ (बहन), यातृ (देवर को पत्नी) ननादृ (ननन्द) — ये पाच ऋदन्त प्रकृतिया स्त्रीलिङ्ग होती हैं। इस माना इस दुहिता, इस स्वसा, इस याता, इस ननान्दा। क्तु आदि योगिक शब्दों में या श्रोष्टृ आदि ऋदन्तशब्दों में स्त्रीत्व की विवक्षा में ऋन्तेभ्यो ङीप् (२३२) से ङीप् प्रत्यय हो कर कर्त्वी श्रोष्टो आदि रूप बन जाते हैं वे ऋदन्त नहीं रहते। तिमू और वयमु ऋदन्तप्रकृति त्रों अपितु त्रि और चतुर् शब्दों के स्थान पर हान वाले आदेश है। उन ऋदन्तप्रकृतिरूप उपर्युक्त पाञ्च शब्द ही स्त्रीलिङ्ग हैं। उन में न षट्स्वत्तादिभ्य (२३३) में ङीप् का निषेध कहा गया है।

[४] अन्यप्रत्ययात्तो घातु ॥

घातु से अनिप्रत्यय अथवा ऊपत्यय करने पर निष्पन्न होने वाले शब्द स्त्रीलिङ्ग होते हैं। उणादयो द्युत्पन्नानि प्रातिपदिकानि (उणादयन् भी द्युत्पन्न = यौगिक प्रातिपदिक होते है) इस मत का आश्रयण कर इस सूत्र का निर्माण किया गया है।

अनिप्रत्ययान्न यथा — इयम् जबनि (पृथ्वी), मरणि (माग), धरणि (पृथ्वी), धमनि (नाडी, धोत्रनी) आदि। कृदिकारादकित्त (गण.) में षष्ठी ङीप् हो कर अबनी, मरणी आदि भी बनेंगे।

ऊपत्ययान्न यथा — इय चमू (सेना) तनू (शरीर), वयू, वण्डू (खारिज) खजू (घाज), दद्रू (दाद) आदि।

[५] अशानिभरण्यरण्य पुंसि वा ॥

१ त्रिचतुरो स्त्रिया तिमूचतसु (२२४)।

अनिप्रत्ययान्त अग्नि (तडित्, बिजली), भरणि (नक्षत्र-विशेष), अरणि (काण्डविशेष जिसके मध्य में अग्नि उत्पन्न होती है)—ये शब्द पुलिङ्ग भी होते हैं। पूर्वसूत्र में इन की स्त्रीलिङ्गता प्राप्त होती है। अयम् द्य वा अग्नि । अय भरणि, इयम्भरणि । अयमरणि, इयमरणि । स्त्रीत्वपक्ष में वैकल्पिक डीप् भी होगा—अशनो, भरणी, अरणी ।

[६] मिन्यत् ॥

मिप्रत्ययान्त तथा निप्रत्ययात् शब्द स्त्रीलिङ्ग होते हैं। यथा—भूमि । ग्लानि । हानि । इत्यादि ।

[७] वल्लिवृष्णयग्य पुंसि ॥

यह पूर्वसूत्र का अपवाद है। वल्लि, वृष्णि और अग्नि शब्द निप्रत्ययान्त होते हुए भी पुलिङ्ग होते हैं। अय वल्लि । अय वृष्णि । अयम् अग्नि ।

[८] कितन्त ॥

कित्प्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग होते हैं। यथा—कृति, दृष्टि, भूति, प्रसूति आदि। 'अकितन' कथन के कारण पक्ष में डीप् न होगा।

[९] ईकारान्तश्च ॥

'ई' प्रत्ययान्त शब्द भी स्त्रीलिङ्ग हान हैं। यथा—इयम् अवी (रजस्वला स्त्री) तरो (नौका), स्तरो (धूम), तन्त्री (वीणा), लक्ष्मी । ईप्रत्यय औणादिक है।

[१०] ऊडावन्तश्च ॥

ऊड्प्रत्ययान्त तथा आवन्त (टाप्-डाप्-चाप्—प्रत्ययात्) शब्द भी स्त्रीलिङ्ग होते हैं। ऊडन्त यथा—द्य कुरु, पद्गू, श्वधू, करभोरु, सहिनोत् आदि। आवन्त यथा—इय विद्या, गङ्गा, जरा, त्वरा, सूर्या आदि ।^१

[११] खन्तमेकाक्षरम् ॥

एक अक्षर वाले जो ईकारान्त और उकारान्त शब्द वे स्त्रीलिङ्ग हान हैं। यथा—इय धी, भू, धी ह्री, भी, भ्रू । इत्यादि। एकाक्षरकथन से बहुव्रीहि म नहीं होता—पृथुश्री, प्राप्तभू इत्यादि शब्द विशेष्यानुसार लिङ्ग धारण करते हैं।

[१२] विशत्यादिरानवते ॥

विंशति म ले कर नवनवति तक के शब्द चाह मध्ययवाची हों या सख्यावाची मदा स्त्रीलिङ्ग होते हैं। यथा—इय विंशति, इय त्रिंशत्, इय चत्वारिंशत्, द्य

^१ कई ग्रन्थों में इस सूत्र का पाठ इस प्रकार पाया जाता है—ऊड्ङघावन्तरश्च ।

इस का अर्थ होगा—ऊड्प्रत्ययान्त, डी (डीप्-डीप् डीत्) प्रत्ययान्त तथा आप् (टाप्-डाप्-चाप्) प्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग होते हैं। ऊड्प्रत्ययान्त तथा आप्-प्रत्ययान्तों के उदाहरण ऊपर दे दिये गए हैं। डीप्रत्ययान्तों के उदाहरण हैं—नदी, गौरी, श्रावणी आदि ।

पञ्चाशत्, इय पठि, इय सप्तति, इयमशीति, इयनवति । विशति आदि यदि सख्यापरक हो तो द्विवचन और बहुवचन में भी प्रयुक्त हो सकते हैं परन्तु रहस्ये तब भी स्त्रीलिङ्ग । यथा—छात्राणा द्वे विशतो, बालाना तिस्रो विशतय । चतस्रो नवतयो रप्यकाणाम् ।

[१३] तलन्ते ॥

तन्प्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग होते हैं । यथा—शुक्लस्य भाव शुक्लता । गुध्रता । जडता । मृदुता । ब्राह्मणस्य कर्म भावो वा ब्राह्मणता । जनाना समूहो जनता । ग्रामता । बभ्रुता । देव एव देवता [स्वार्थिका अपि प्रत्यया क्वचित् प्रकृतियो लिङ्गवचना यतिवर्तन्ते इत्युक्त प्रकृतिभिन्नलिङ्गत्वम्] ।

[१४] भूमि-विद्युत्-सरित्-लता-वनिताभिधानानि ॥

भूमि, विद्युत्, सरित् (नदी), लता और वनिता (स्त्री) इन के पर्यायशब्द स्त्रीलिङ्ग में प्रयुक्त हाने हैं ।

भूमि के पर्याय यथा—इय भूमि, अचला, विश्वम्भरा, वसुधा आदि ।

विद्युत्पर्याय यथा—इय विद्युत्, तटित्, मोदामनी, चपता, चञ्चला आदि ।

सरित्पर्याय यथा—इय सरित्, तटिनो, निम्नगा, आपगा, सोनम्बती आदि ।

लतापर्याय यथा—इय लता, व्रतति, बत्नी, बल्लरो आदि ।

वनिता के पर्याय यथा—इय योपिन्, वनिता, अबला, वामा आदि ।

[१५] भास्-स्वक्-स्वप्-विगुण्णगुणानह ॥

भाम (मकारान्त, प्रकाश), स्वक् (चकारान्त, खुवा), स्वप् (जकारान्त, पुष्पमाला), दिग् (दिशा), उष्णह (छन्दो-विशेष) उपानह (जूता)—ये शब्द स्त्रीलिङ्ग होते हैं । इय भा । इय स्वक् । इय स्वप् । इय दिक् । इयम् उष्णह् । इमे उपानहो ।

[१६] प्रावृष्ट-विप्रुष्ट-रुद्र-वित्-त्विष ॥

प्रावृष्ट (बरसान), विप्रुष्ट (वृद्ध), र्प् (क्रोध) विष् (विष्ठा), त्विष् (कान्ति) —ये शब्द स्त्रीलिङ्ग होते हैं । यथा—इय प्रावृष्ट् । एता विप्रुष्ट परिहरेत् । महया र्पाञ्जनाज्यसप । एतया विषा दूषित जलम् । महत्या त्विषा भामतेज्य मुखम् ।

[१७] शङ्कुनि-राजि-वृद्ध-अशनि-वर्ति-भ्रुकुटि-वृद्धि-वलि पङ्क्तय ॥

शङ्कुलि आदि नौ शब्द स्त्रीलिङ्ग होते हैं । यथा—इय शङ्कुलि (कणमाग), ाणि (पङ्क्ति), कुटि (कुटिया) अशनि (विजली), वर्ति (वर्ती), भ्रुकुटि (ना) नुटि (क्षण, लेख, कण आदि), वलि (झुरी), पङ्क्ति (वतार) पङ् में टीप् हो कर शङ्कुनी, राजी आदि भी बनत हैं ।

[१८] अप्-मुमनस्-सम्प-सिक्ता-वर्षाणा बहृत्व च ॥

अर् (जल), मुमनस् (पुष्प), ममा (वप, सबत्तर), सिक्ता (रेत), वर्षा (बरसान)—ये शब्द स्त्रीलिङ्ग हैं, इनका बहुवचन में प्रयोग होना है । यथा—इमा

आप । एता मुमनस । मा नियाद प्रतिष्ठा त्वमगम शाश्वतो समा (रामायणे) । लभेत सिक्तासु तैलमपि यत्नत पीडयन् (भर्तृहर) । वर्षामु वपन्नि मेघा । देवता-वाची मुमनस शब्द पुनिङ्ग है । सिक्ता और समा शब्द कही वही अणुवचान्न भी श्वे जाते हैं । एता सिक्ता तैलदानेऽसमर्था, खार्येष्वसमर्था (महाभाष्य) । (५०१०) ।^१

[इति स्त्रीलिङ्गाधिकारः]

[१६] पुमान् ॥

यह अधिकारसूत्र है । जत्र यहां मे आगे पुनिङ्ग शब्दों का अधिकार चला रहे हैं ।

[२०] घञ्बन्त ॥

घञ्प्रत्ययान्त तथा जञ्प्रत्ययान्त शब्द पुलिङ्ग होत हैं । घञ्प्रत्ययान्त यथा—पाक, त्याग, राग, भाग, पाठ, नाज, दाह आदि । जञ्प्रत्ययान्त यथा—वर, गर, यव, लव, स्तव पव आदि ।

[२१] घाजन्तरच ॥

घप्रत्ययान्त तथा जञ्प्रत्ययान्त शब्द पुनिङ्ग होत हैं । घप्रत्ययान्त यथा—विस्तर । जावर । जालय । दत्तच्छद (ओष्ठ) । गावर । मञ्चर । वह (म्बन्ध) । व्रज (गाष्ठ) । आपण (दुकान) । निगम (वेद) । जञ्प्रत्ययान्त यथा—जय, जय, क्षय आदि^२ ।

[२२] नञन्त ॥

नञ्प्रत्ययान्त पुलिङ्ग होने है । यज-याच यत्-विच्छ-प्रच्छ-रक्षो नञ् (८६०)—यज, यत्न, विश्न, प्रश्न, रक्षण ।

[२३] याचत्रा तु स्त्रियाम् ॥

याचनाशब्द नञ्प्रत्ययान्त होता हुआ भी स्त्रीलिङ्ग होता है । याचत्रा भोषा वरमधिगुणे नाथमे लब्धकामा (मेषद् ६) ।

[२८] क्यन्तो घु ॥

धुमज्जघान्तु मे 'नि' प्रत्यय करने पर निष्पन्न शब्द पुलिङ्ग होत हैं । उपसर्गो घो कि (८६२)—प्रधि, उपधि, जाधि, व्याधि, त्रिधि, तिधि, मधि आदि ।

१ आप मुमनसो वर्षा अप्तर सिक्तामसा ।

एते स्त्रिया बहुत्वे स्युरेकत्वेऽप्युत्तरत्रयम् ॥

२ इस के कई अणुवाक्यमूल भी हैं । यथा—महद नयम् । नयशब्द जञ्प्रत्ययान्त होता हुआ भी नपुंसक होता है । वत्रा भी गया है—नय निङ्ग-नय-नदानि नपुंसके ।

[२५] देवाञ्जुरात्म-स्वर्गं-गिरि-समुद्र-नखकेश-दन्त-स्तन-भुज-कण्ठ-खड्ग-शर-पङ्क-
निधानानि ॥

देव, असुर, आत्मन्, स्वर्गं, गिरि, समुद्र, नख, केश, दन्त, स्तन, भुज, कण्ठ,
खड्ग, शर और पङ्क—इन मन्त्र के पर्याय पुलिङ्ग होते हैं ।

देव के पर्याय—अमर, निर्जर, देव, सुर आदि ।

असुर के पर्याय—असुर, राक्षस, दानव, दनुज आदि ।

आत्मन् के पर्याय—आत्मा, धेनव, पुरुष आदि ।

स्वर्ग के पर्याय—स्वर्ग, नाक, सुरलोक आदि^१ ।

गिरि के पर्याय—गिरि, पर्वत, नग आदि ।

समुद्र के पर्याय—समुद्र, सागर, रत्नाकर, पारावार आदि ।

नख के पर्याय—पुनभव, कररह, नख आदि ।

केश के पर्याय—धिकुर, कुन्तल, बाल, केश आदि ।

दन्त के पर्याय—रद, रदन, दन्त आदि ।

स्तन के पर्याय—स्तन, कुच, वज्रोज आदि ।

भुज के पर्याय—भुज, बाहु आदि ।

कण्ठ के पर्याय—कण्ठ, गल आदि ।

खड्ग के पर्याय—खड्ग, अग्नि, निस्त्रिंश आदि ।

शर के पर्याय—शर, वाण, आघुग आदि ।

पङ्क के पर्याय—पङ्क, कर्म आदि ।

[२६] नान्त ॥

नकारान्त शब्द पुलिङ्ग होते हैं । यथा—राजा, ष्वा, न्धा, वृषा, ऋभुक्षा
वृत्रहा, तनिमा, गरिमा आदि । ब्रह्मन्, चमन् आदि शब्द मन्त्र द्वयत्कोक्तरी (७१)
द्वय लिङ्गानुशासनाय अग्निमसूत्र से नपुंसक होते हैं । सर्वं खल्विदं ब्रह्म । चम ।
वर्म । आदि ।

[२७] ऋतु-पुरुष-कपोल गुल्फ-मेघाभिधानानि ॥

ऋतु (यज्ञ), पुरुष, कपोल (गाल), गुल्फ (गिट्टा) और मेघ—इन पाञ्च के
वाचक शब्द पुलिङ्ग होते हैं ।

ऋतुवाचक—ऋतु । यज्ञ । अध्वर । मघ । आदि ।

पुरुषवाचक—पुरुष । नर । पुमान् । आदि ।

कपोलवाचक—कपोल । गण्ट । आदि ।

१ देवता शब्द निव्यम्नीलिङ्ग है ।

२ स्वावाची 'त्रिविष्टप' शब्द नपुंसक तथा 'द्या' और 'दिव' शब्द स्त्रीलिङ्ग है ।

द्योदिवौ द्वे स्त्रिया वनीत्रे त्रिविष्टपम्—इत्यमर ।

गुल्फवाचक—गुफ । पादग्रन्थि । आदि ।

मेघवाचक—मेघ । जलधर । कारिद । आदि ।

[२८] अन्न नपुसकम् ॥

यह पूर्वसूत्र का अपवाद है । मेघवाचक अन्नशब्द नपुसक लिङ्ग होता है ।
अन्न मेघ ।

[२९] उकारान्त ॥

उकारान्त शब्द पुलिङ्ग होते हैं । यथा—विष्णु । इक्षु । शत्रु । प्रभु ।
आदि । यह उत्सर्गसूत्र है । इस के कई अपवादस्थल हैं । निदर्शनाय एक अपवादम्प्यत्र
यथा—

[३०] धेनु रज्जु कुह-सरयु तनु रेणु प्रियङ्गव स्त्रियाम् ॥

धेनु आदि उकारान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग होते हैं । धेनुरियम् । रज्जुरियम् ।
कुट्ट (अमावस, कौयलघ्वनि) । इत्यादि । अन्य अपवाद आकरग्रन्था में देखें ।

[३१] ह्रस्वत् ॥

र-जन्त वाले तथा तु-अन्त वाले शब्द पुलिङ्ग होते हैं । यथा—मेघ । मनु ।
हेतु आदि ।

[३२] दार कसेर-जनु वस्तु-मस्तूनि नपुसके ॥

यह पूर्वसूत्र का अपवाद है । दार आदि शब्द नपुमकलिङ्ग होते हैं । इद दार
(लखड़ी), कसेर (जलजकद विशेष), जनु (गले के नीचे की दो हड्डियाँ), वस्तु
मन्तु (छाछ, लस्सी) ।

[३३] कौपथ ॥

जिनकी उपधा में ककार हा ऐसे अदन्त शब्द पुलिङ्ग होते हैं । यथा—
स्नबक (गुच्छा) । कोरक (बली) । कल्क (सिल पर पिमा) आदि । इस सूत्र के
कई अपवादस्थल हैं । यथा—चिबुक (ठोड़ी), अशुत्र (महीन वस्त्र), प्रातिपदिक,
जल्मुक (जलती हुई लकड़ी), कष्टक, मस्तक, पुस्तक, मोदक (लड्डू) आदि शब्द
नपुमक में देखे जाते हैं ।

[३४] टौपथ ॥

जिम की उपधा में टकार हो ऐसे अदन्त शब्द पुलिङ्ग होते हैं । यथा—
धट । पट । आदि । इस के कुछ अपवादस्थल भी हैं । यथा—किरीट, लोट्ट, लराट,
मुकुट आदि नपुमक में देखे जाते हैं । इद किरीटम् इत्यादि ।

[३५] णौपथ ॥

जिन की उपधा में णकार हा ऐसे अदन्त शब्द पुलिङ्ग होते हैं । यथा—
पापाण । गुण । गण । पण । आदि । ऋण, लवण, मुवण, तूण, तारण, पण, चूण
आदि कुछ शब्द नपुमक में प्रयुक्त होते हैं ।

[३६] धोपघ ॥

जिन की उपधा में धकार हो ऐसे अदन्त शब्द पुलिङ्ग होते हैं। यथा—
रघ । जर्घ आदि । काष्ठ, पृष्ठ, रिक्थ (दाय भाग) सिक्थ (मोम) उक्थ (सामवेद
वा अवयव) आदि कुछ शब्द नपुंसक में प्रयुक्त होते हैं ।

[३७] नोपघ ॥

नकारोपघ अदन्त शब्द पुलिङ्ग होते हैं। यथा—इन (स्वामी या वैश्य),
फेन (झाग) । कानन, वन, विपिन, तुहिन, जघन, सोपान, रत्न, श्मशान, चिह्न,
अजिन (चमडा) आदि कुछ शब्द नपुंसक में प्रयुक्त होते हैं ।

[३८] षोपघ ॥

षकारोपघ अदन्त शब्द पुलिङ्ग होते हैं। यथा—यूप । सर्प । दीप । मूप ।
कूप आदि । पाप, रूप, पुष्प आदि कुछ शब्द नपुंसक में प्रयुक्त होते हैं ।

[३९] भोपघ ॥

भकारोपघ अदन्त शब्द पुलिङ्ग होते हैं। यथा—स्तम्भ । कुम्भ । शलभ ।
करभ (कंठ, मूँड) आदि । जृम्भ-शब्द तीनों लिङ्गों में प्रयुक्त देखा जाता है—
जृम्भ, जृम्भा, जृम्भम् (जम्भाई) ।

[४०] सोपघ ॥

सकारोपघ अदन्त शब्द पुलिङ्ग होते हैं। यथा—सोम । भीम । स्तोम ।
होम । आदि । स्वम (सुवर्ण), कुटकुम (केसर), इधम (लकड़ी) आदि शब्द नपुंसक
होते हैं ।

[४१] योपघ ॥

यकारोपघ अदन्त शब्द पुलिङ्ग होते हैं। यथा—समय । ह्य । गव्य
आदि । हृद्य, इन्द्रिय, किमलय (पल्लव, पत्ता), उत्तरीय (जोड़ने की चादर) आदि
नपुंसक होते हैं ।

[४२] रोपघ ॥

रकारोपघ अदन्त शब्द पुलिङ्ग होते हैं। यथा—शूर । वीर । जड्जुर । क्षुर
आदि । द्वार, तत्र, तीर, रन्ध्र, पत्र, पात्र, छिद्र, शस्त्र, शाम्त्र, नेत्र, वक्त्र (मुख),
श्रेत्र, मूत्र, केयूर, गह्वर (गुफा) आदि शब्द नपुंसक होते हैं ।

[४३] षोपघ ॥

षकारोपघ अदन्त शब्द पुलिङ्ग होते हैं। यथा—वृक्ष । मेघ । यक्ष आदि ।
पुरीष (विष्ठा), कित्विष (पाप, अपराध) आदि शब्द नपुंसक में प्रयुक्त होते हैं ।

[४४] सोपघ ॥

सकारोपघ अदन्त शब्द पुलिङ्ग होते हैं। यथा—वत्स । वायस । महानस
आदि । वुस (भूमा), मानस, माहस, विम (कमलनाल) आदि शब्द नपुंसक में प्रयुक्त
होते हैं ।

[४५] दाराक्षत-लाजाभूना बहुत्व च ॥

दार (पत्नी, स्त्री), अधत (माबुत चावल), लाज (लाजा), असु (प्राण)—
ये शब्द पुलिङ्ग हैं तथा बहुवचन में प्रयुक्त होते हैं। यथा—टमे दारा अशना,
लाजा, जमत्र । नासावमून् मुञ्चति ।

[४६] रश्मि-दिवसाभिधानानि ॥

रश्मि (किरण) तथा दिवस (दिन) के पर्याय पुलिङ्ग हाने हैं। रश्मि के पर्याय
यथा—रश्मि । मयूख । किरण । आदि । किरणवाची दीधितिशब्द स्त्रीलिङ्ग हाना
है । दिवस के पर्याय यथा—दिवस । वामर । धन । आदि । दिनाहनी नपुसके—
दिनम । ग्रह ।

[४७] ध्वज-गज मुञ्ज-पुञ्जा ॥

ध्वज आदि शब्द पुलिङ्ग होते हैं। ध्वज । गज । मुञ्ज (मूज) । पुञ्ज
(ममूह) ।

[४८] ह्रद-कन्द-कुन्द-बुदबुद् शब्दा ॥

य पुलिङ्ग हैं। ह्रद (अगाधजल जलाशय) । कन्द । कुन्द (चमेनी का
पौधा) । बुदबुद (बुलबुला) । शब्द ।

[४९] सारथ्यतिथि-कुक्षि-वस्ति-पाण्यञ्जलय ॥

मारथि आदि इकारान्त छ शब्द पुलिङ्ग होते हैं। मारथि । जनिथि । कुक्षि ।
वस्ति (मूत्राशय) । पाणि । अञ्जलि (जुड़े हुए दाना हाथ) ।

[इति पुलिङ्गाधिकार]

[५०] नपुसकम् ॥

यह अधिकारमूल है। यहाँ से आगे नपुसकलिङ्ग का अधिकार है।

[५१] भावे ल्युडन्त ॥

भाववाची ल्युट् प्रत्यय जिसके अन्त में हा वह शब्द नपुसक हाना है। यथा—
गमनम्, हमनम् श्रवणम्, भक्षणम् आदि^१ । 'भावे' कहने में 'पचनाग्नि' इत्यादि में
नपुसक नहीं हाना, विशेष्यानुसार लिङ्ग हाना है। यहाँ 'पच्यन्तेऽनेनति पचन' इस
तरह करणाधिकरणयोश्च (३३ ११७) सूत्र में करण में ल्युट् प्रत्यय हुआ है। इसी
तरह 'प्रवृश्चरन्तज्जेनेति प्रवृश्चन, इक्ष्माना प्रवृश्चन इक्ष्मप्रवृश्चन' इत्यादिया में मम
क्षता चाहिये ।

[५२] निष्ठा च ॥

'भावे' का अनुवर्तन हो रहा है। भाव में जा निष्ठा (क्त्^३) तदन शब्द

१ पुण्य अथ में नपुसक होना है—कुन्दम् (चमेनी का फूल) ।

२ नपुसके भावे क्त (८७०), ल्युट् च (८७१) ।

३ निष्ठा से यहाँ केवल 'क्त्' ही अभिप्रेत है, क्तवन्तु नहीं, क्योंकि वह भाव में नहीं
होना कर्त्ता में ही हुआ करना है ।

नपुमक होता है। नपुमके भावें वन (५३०)—हृमिनम्, रडिनम्, ज्वलिनम्, गनम्, स्थिनम्, नृनम् आदि। भावार्थक क्त के प्रयोग में कर्त्ता में शेष की विवक्षा में षष्ठी शेषे (६०१) द्वारा षष्ठी विभक्ति हानी है। यथा—विशुतो विरमिनम् (विजली का चमकना), छात्रस्य हृमिनम् (छात्र का हृमना), शिशो शयितम् (बच्चे का मोना), मङ्गस्य नृनम् (मोंग का नाचना), कोकिलस्य व्याहृतम् (कोयल का कूकना), मन्त्र-जस्य गनम् (हाथी की बाल)। इन स्थाना पर इत्याग म प्राप्त कर्त्ता म षष्ठी का न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्यनानाम् (२३६६) में निषेध हा कर जर्तानहिन कन्ता म नृनीया-विभक्ति प्राप्त हानी थी परन्तु क्तस्य च वर्त्तमाने (२३६७) मूलस्थ भाष्य क प्रामाण्य में ऐसे स्थाना पर केवल शेष की ही विवक्षा मानी जाती है कन्त्व की नहीं (देखें The Students' Guide to Sanskrit by V S Apte, Page 10०)।

[५३] त्व ष्यत्रौ तद्धितौ ॥

भाव में विहित तद्धितमञ्जक ना त्व' जोग 'ष्यत्र प्रत्यय, तदन्त शब्द नपुमक-निर्ग होत है। यथा—शुक्लस्य भाव शुक्लत्व शौक्यम्। जटस्य भावा जटत्व जाट्यम्। मूढस्य भावा मूढत्व मीटत्रम्। इन म त्व जोग ष्यत्र किय गर ह। चतु-रस्य भाव चातुर्यम्। निपुणस्य भावो नैपुण्यम्। मङ्गुरस्य भावा माङ्गुयम्। उचिनस्य भाव जौचित्यम्। इन में ष्यत्र हुआ है। ष्यत्र का पित् किया गया है अत लक्षणानुसार क्वचित् पित्त्वमाम्यस्य म पिद्-गौरादिभ्यश्च (१२५५) द्वारा डीप् हा कर भमञ्जक अकार का तथा तद्धित यकार का शेष करन में चातुरी, नैपुणी, माङ्गुरी, जौचिनी आदि स्त्रीलिङ्ग प्रयाग भी बनत है।

स्त्राय में ष्यत्र जाने पर भी नपुमकलिङ्ग का प्रयोग देखा जाता है'। यथा—सुखमेव सौख्यम्। मन्निधिरव मान्निध्यम्। समीपमेव मामीप्यम् आदि।

[५४] यद् य-ङ्-यग्-अत्र-अण् वुञ्-छाश्च भावकमणि ॥

भाव जथवा कम में होत बाल यत्, य, टक् यक्, जत् अण्, वुञ् जाग छ—ये प्रत्यय जिमके जन्म म हो व शब्द नपुमकनिर्ग होने है। उदाहरण यथा—

यत्प्रत्यय—स्नतस्य भाव कम वा स्नेयम् (चोरी)।^१

यप्रत्यय—मह्युर्भाव कम वा मह्यम् (मित्रता)।^२

टक्प्रत्यय—कपेभाव कम वा कापयम् (चञ्चलता, अनुकरणशीलता)।^३

यक्प्रत्यय—मेतापनेभाव कम वा मैतापयम् (मेतापतिव)।^४

१ चतुर्वर्गादीना स्वार्थे (ष्यत्र) उपमहयानम् (वा०)।

२ स्तेनाद्यन्तलोपश्च (५१३२५)।

३ सद्युयं (५११२६)।

४ कपिता योर्डक् (११६२)।

५ पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक् (११६३)।

पुरोहितस्य भाव कर्म वा पुरोहित्यम् (पुरोहिताई) ।

जन्मप्रत्यय—अश्वस्य भाव कर्म वा जाश्वम् (घोड़े का भाव) ।^१

कुमारस्य भाव कर्म वा कौमारम् (लडकपन) ।

अणुप्रत्यय—यूनो भाव कर्म वा यौवनम् (जवानी) ।^२

वृज्प्रत्यय—रमणीयस्य भावो रामणीयकम् ।^३

छप्रत्यय—अच्छावाकस्य भाव कम वा अच्छावाकीयम् ।^४

[५५] अव्ययीभाव ॥

अव्ययीभावसमाम नपुसकलिङ्ग होता है । नपुमकत्व के कारण उसे ह्रस्वो नपुसके प्रातिपदिकस्य (२४३) द्वारा ह्रस्व आदेश हो जाता है । यथा—मातायाम् इत्यधिमालम् । अधिषट्त्वम् । अधिगोपम् । नद्या नर्मापम् उपनदि (टचोऽभावे) । उपपौर्णमासि । अष्टाध्यायी मे अव्ययीभावश्च (६११) द्वारा प्रतिपादित विषय का यहा पुन म्मरण कराया गया है । इसीप्रकार आगे के कुछ सूत्रो मे समझना चाहिये ।

[५६] द्वन्द्वकत्वम् ॥

समाहारद्वन्द्व द्वारा निष्पन्न शब्द नपुमकलिङ्ग होता है । यथा—पाणी च पाशो च एषा समाहार पाणिपादम् । मादटिकवैणविकम् । रथिवाश्वारोहम् । द्वन्द्वश्च प्राणि तृणसेनाङ्गानाम् (६६१) सूत्रद्वारा यहा एकत्राव समझना चाहिये ।

[५७] परद्धम् ॥

तत्पुरुषसमाम परवलिङ्ग हाना ह् अर्थात् तत्पुरुष समाम मे परपद का जा तिङ्ग हाना ह् वही समस्त पद का हो जाता है । यह सूत्र अष्टाध्यायीस्य परवलिङ्ग द्वन्द्वतत्पुरुषयो (६६२) का स्मारक है । उदाहरण यथा—पिप्पत्या अधम् अज-पिप्पली । इयमप्रपिप्पली ग्राह्या । पूर्वं कायस्य पूर्वकायोऽग्रम् । इन के कई अपवाद-स्थला का समासप्रकरण मे बणन जा चुका है वही देखें ।

[५८] रात्राह्लाहा पुंसि ॥

यह परवलिङ्गता का अपवाद है । रात्र, अह्ण, अह—ये शब्द जिम के अन्त मे हा एसा तत्पुरुषसमाम पुलिङ्ग होता है । पूर्वरात्र । अपररात्र । पूर्वाह्ण । अपराह्ण । द्वयह । अयह ।

यह सूत्र अष्टाध्यायी मे भी पढा गया है । वहा इस सूत्र मे 'द्वन्द्व' की भी

१ प्राणभृग्जातिषयोवचनोद्गात्रादिन्योऽन् (५११२६) ।

२ हायनातयुवादिन्योऽन् (५११३०) । श्वयुवमघोत्रामतद्धिते (२६०) सूत्र मे तद्धितपुंसुदास होने मे मन्मरण नहीं हुआ ।

३ योपधाद् गुरुपोतमाद् वृज् (५११३२) ।

४ होत्रान्परठ (५११३५) । अच्छावाक ऋत्विग्विभोष ।

अनुवृत्ति आती है अतः रात्रान्त द्वन्द्व भी पुलिङ्ग ममनता चाहिये—अहृच्च रात्रिञ्च जहोरात्र ।

[५६] सख्यापूर्वा रात्रि ॥

सख्यावाचक जिम का पूर्वपद तथा रात्रिशब्द जिम का उत्तरपद हो ऐसा तन्पु-रपममाम् नपुमकलिङ्ग होता है ; यथा—द्वयो रात्र्यो समाहार—द्विरात्रम् । निमृणा रात्रीणा समाहार—त्रिरात्रम् । चतसृणा रात्रीणा समाहार—चतुरात्रम् । सख्या-वाचक पूर्वपद न हो तो परबल्लिङ्गना का वाच्य कर रात्राह्लाहा पुंसि (६५७) सूत्र में पुस्त्व हो जायेगा—सर्वरात्र । मख्यातरात्र । पुण्यरात्र । इन सब उदाहरणों की सिद्धि इस व्याख्या के ममामप्रकरण में देखें ।

[६०] द्विगु स्त्रिया च ॥

द्विगुसमाम् स्त्रीलिङ्ग में जोर कही कही नपुमकलिङ्ग म भी होता है^१ । स्त्रीलिङ्ग में यत्रा—त्रयाणा लोकाणा समाहार—त्रिलोकी । नपुमकलिङ्ग म यथा—त्रयाणा भुवनाना समाहार—त्रिभुवनम् । पञ्चपात्रम् ।

[६१] इमुसन्त ॥

इम् या उम् जिम के अन्त में हो वह शब्द नपुमकलिङ्ग होता है । यथा—हवि, मपि, धनु, वपु, चक्षु आदि ।

[६२] अचि स्त्रिया च ॥

पग्न्तु अचिम् (अग्निज्वाला) शब्द स्त्रीलिङ्ग में भी प्रयुक्त होता है । इय-मचि । अचिरिदम् ।

[६३] छदि स्त्रियामेव ॥

छदिन् (पटल, छत) स्त्रीलिङ्ग में ही प्रयुक्त होता है । जीर्णा छदिवर्षामि प्रश्च्योति । अमरकोष में पटल छदि ऐसा पाठ है । यहाँ पटलम् इस नपुसक के साह-चर्य में छदिम् को भी व्याख्याकारों ने नपुमक माना है परन्तु यह पाणिनिमूलक के विरुद्ध समझना चाहिये ।

[६४] मुख नयन-लोह-वन-मास रुधिर-कान्मुक-दिवर-जल-हल-धनाज्जानिधानानि ॥

मुख आदियों के वाचक शब्द नपुमकलिङ्ग होते हैं ।

१ अस्य व्यवस्था सूत्रवातिक्रपाठयोरित्य प्रदर्शिता—स नपुसकम् (२४१७)—स समाहारद्विगुर्नपुमकलिङ्ग स्यात् । परबल्लिङ्गताऽपवाद । पञ्चगवम् । अका-रान्तोत्तरपदो द्विगु स्त्रियामिष्ट (वा०)—पञ्चमूली । त्रिलोकी । आवन्तो वा (वा०)—आवन्तो द्विगु स्त्रिया क्लोवे च स्यात् । पञ्चखटवी, पञ्चडट्वम् । अनो नलोपश्च, वा च द्विगु स्त्रियाम् (वा०)—अन्तन्म्य द्विगोनलोप, स्त्रीत्व वा च, पक्षे कर्त्तव्यत्वं । पञ्चनक्षा, पञ्चनक्षम् । पात्राद्यत्स्य न (वा०)—स्त्रीत्व न, अपि तु म नपुमकम् इति क्लीबत्वमेव, अदन्तत्वेन स्त्रीत्वे प्राप्ते नश्-पवादार्थं वातिकम् । पञ्चपात्रम्, त्रिभुवनम् ।

- मुखवाचक—मुखम्, वदनम्, वक्त्रम्, आननम् आदि ।
 नयनवाचक—नत्रम्, नयनम्, जक्षि, लोचनम् आदि ।^१
 लोट्वाचक—लोट्, जय, कालायमम् आदि ।
 वनवाचक—वनम्, अरण्यम्, विपिनम् कान्तारम् आदि ।^२
 मामवाचक—मामम्, आमिपम्, पिशितम् आदि ।
 रघिरवाचक—रघिरम्, रक्तम्, शोणितम्, जसम् आदि ।
 कार्मुक (धनुष) वाचक—धनु, कार्मुकम्, शरामनम् आदि ।
 विवर (छिद्र) वाचक—विवरम्, छिद्रम्, धिलम् रन्ध्रम् आदि ।
 जलवाचक—जलम्, पथ, मलिनम्, वारि, तोयम् आदि ।
 हलवाचक—हनम्, लाङ्गलम् आदि ।
 धनवाचक—धनम् वित्तम्, द्रविणम् वसु आदि ।^३
 अन्नवाचक—अन्नम्, अशनम्, अन्ध आदि ।
 इम मूत्र के अन्व अपवाद कापयथा भ पाय जाते ह ।

[६५] सीरायौदना पुमि ॥

सीर (हल), अर्थ (जन) और आदन शब्द पुलिङ्ग म पाय जाते ह । यह पूर्व-मूत्र का अपवाद है । सीर । अर्था पादरजोपमा गिरिनदीवेणोपम यौवनम् (हितोप० १ १५५) । आदन ।

[६६] लोपथ ॥

जदन्न लकारापथ शब्द नपुमकलिङ्ग होत ह । यथा—कुलम् । कुलम् (किनारा) । स्थलम् । जादि । इम के कई अपवादस्थल है । यथा—तूल, उपत (पथर) ताल, कुसूल (धान्यमग्रहस्यात), कम्बन, वृषल जादि कई शब्द पुनिङ्ग मे प्रयुक्त हाते ह ।

[६७] शतादि सख्या ॥

सख्या या मध्यय अथ म वत्तमान शत आदि मध्याए नपुमकलिङ्ग म प्रयुक्त हाती हैं । यथा—शत जना । जनाना शतम् । सहस्र जना । जनाना सहस्रम् । इत्यादि ।

[६८] शताज्युत प्रयुता पुसि च ॥

शत, अयुत (दस हजार), प्रयुत (दस लाख)—ये सख्याए पुलिङ्ग मे भी प्रयुक्त होनी हैं । पूर्वमूत्रानुसार नपुमकत्व के प्राप्त होने पर पुलिङ्ग का भी विधान किया गया है । शतोऽयम्, इदं शतम् । अयुतोऽयम्, इदम् अयुतम् । प्रयुतोऽयम्, इदम्प्रयुतम् ।

१ दग् और दृष्टि शब्द स्त्रीलिङ्ग होते हैं ।

२ अटवी और अरण्यानी शब्द स्त्रीलिङ्ग होते हैं ।

३ धनवाची रै शब्द पुलिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग दोनों मे प्रयुक्त होता है ।

[६६] लभा कोटि लिङ्याम् ॥

लभा (लाव) और कोटि (कगोट) शब्द स्त्रीलिङ्गा में प्रयुक्त होने हैं। यह सूत्र शतादि सख्या सूत्र का अपवाद है। इन का एक सुभाषित में प्रयोग यथा—

कियती पञ्चसहस्री कियती लक्षायि कोटिरपि कियती ।

औदायोल्लतमनसा रत्नवती वनूमती कियती ॥

(सुभाषितरत्न० पृष्ठ ७०)

जमरकोपादिभ्यो में लभाशब्द को नपुमक भी माना गया है।

[७०] शङ्कु पुंसि ॥

शङ्कु (मी खरब) शब्द पुलिङ्गा में प्रयुक्त प्रयोग है। यह भी शतादि सख्या सूत्र का अपवाद है। शङ्कुरयम् ।

[७१] मन्वयत्कोऽर्त्तेरि ॥

दो अचो वाला मनुप्रत्ययान्त शब्द जो कतू वाची न हो वह नपुमकलिङ्गा में प्रयुक्त होता है। यथा—इदं वर्मं । इदं चर्मं । 'द्वयच्छ' इतिवत् कहा है कि दा में अधिक अचो वाले शब्दों में इस की प्रवृत्ति न हो। यथा—अपोभाव—जगिमा तपोभाव—लधिमा महतो भाव—महिमा । ये सब पूर्वोक्त नाम्न् (लिङ्गा० २६) सूत्र में पुलिङ्ग हैं। प्रयोग यथा—एतावानन्य महिमाज्जो ज्ञापारच पूर्य (ऋग्वेद १० ६० ३) । अर्त्तेरि' इतिवत् कहा है कि—ददातीति दासा (मत्स्यपुराण) इत्यादिभ्यो में नपुमकत्व न हो।

[७२] ब्रह्मन् पुंसि च ॥

ब्रह्मन्शब्द नपुमक के अतिरिक्त पुलिङ्गा में भी दंडा जाता है। उदाहरण स्वनविभाषा समस्तनी चाहिये। चतुर्गण (ब्रह्माजी) के अर्थ में यह पुलिङ्ग बना जन्म परमान्मा आदि अर्थों में इसे नपुमक समझना चाहिये। ब्रह्मा विधाना चतुर्गण । सर्वं सत्त्विदं ब्रह्म ।

[७३] असन्तो द्वयच्छ ॥

दो अचो वाला अन्-अन्त शब्द नपुमक होता है। यथा—यत् । नप । पत् । मत् । जादि । 'द्वयच्छ' कथन के कारण 'चत्रमा' आदि में नहीं होता। वह पुलिङ्ग है। 'वेद्यन्' शब्द पूर्वोक्त देवामुर० (लिङ्गा० २५) सूत्र में पुलिङ्ग समझना चाहिये। कुछ तो इस सूत्र में भी 'अर्त्तेरि' पद का अनुवर्तन कर दिददातीति ब्रह्म इस तरह परिहार करते हैं।

[७४] अप्परा म्त्रियाम् ॥

अप्परम् शब्द स्त्रीलिङ्ग में प्रयुक्त होता है। यह शब्द प्रयोग में प्रायः बहुवचनान् देखा जाता है। इमा अप्परा । कही कही एववचनान् भी प्रयुक्त होता है—उर्वशी नामाप्परा ।

[७५] व्रान्त ॥

‘त्र’ शब्द जिम के अन्त में हो वह नपुसकलिङ्ग होता है। यथा—छत्रम्, पत्रम्, पान्त्रम्, दानम्, नेत्रम् जादि।

[७६] यात्रा-मात्रा-भस्त्रा दष्ट्रा वरत्रा स्त्रियामेव ॥

यात्रा, मात्रा, भस्त्रा (धौकनी), दष्ट्रा (दाढ), वरत्रा (चमड़े की पेट्टी जो घोटे आदि की छाती के नीचे बान्धी जाती हैं)—ये पाञ्च शब्द स्त्रीलिङ्ग में ही प्रयुक्त होते हैं। पूर्वोक्त प्रात (७५) सूत्र का यह अपवाद है। इय यात्रा। इय मात्रा। भस्त्रेयम्। दष्ट्रेयम्^१। वरत्रेयम्।

[७७] भूत्राऽमित्रच्छात्र-पुत्र-यन्त्र वृत्र-मेढ्रोष्ट्रा पुंसि ॥

भूत्र (?), मित्र (शत्रु), छात्र, पुत्र, यत्र वृत्र (मेघ आदि), मेढ्र (मूत्रेन्द्रिय) और उष्ट्र (ऊँट)—ये शब्द पुलिङ्ग होते हैं। यह भी प्रात (७५) सूत्र का अपवाद है। अयम्भूत्र। न मित्रम्—अमित्र (शत्रु)। तत्पुत्र-ममास में परस्मैनिङ्गना का प्रवृत्तमूत्र से बाध हो जाता है। तस्य मित्राण्यमित्रास्ते (माघ २ १०१)। छात्रोऽयम्। यन्त्रोऽयम्। को वृत्र ? मेघ इति नष्टता। मेढ्रोऽयम्। उष्ट्रायम्। भूत्र और पुलिङ्ग यन्त्र शब्द के प्रयोग अवेषणीय है।

[७८] बल-कुमुम शुल्ब-पत्तन-रणानिधानानि ॥

बल आदि के वाचक शब्द नपुसकलिङ्ग में प्रयुक्त होते हैं।

बलवाची यथा—बलम् मह (सहम्) वीर्यम् आदि।^२

पुष्पवाची यथा—पुष्पम्, कुमुमम्, प्रसूनम् आदि।

ताम्रवाची यथा—ताम्रम्, शुल्बम्, म्लेच्छमुखम् आदि।

नगरवाची यथा—पत्तनम्, नगरम्, पुरम् आदि।^३

रणवाची यथा—रणम्, युद्धम्, जन्यम्, मूधम् आदि।^४

[७९] फलजाति ॥

फलजातिवाचक शब्द नपुसक होने हैं। यथा—आमनकम्। आम्रम्। कुष्ठेव

१ दष्ट्राशब्द दाम्नीशस० (८४४) सूत्रद्वारा ष्ट्रप्रत्ययान्त सिद्ध होता है। परन्तु पिन्वान् पितृगौरादिभ्यश्च (१२५५) द्वारा ष्ट्रीप् के प्राप्त होने पर अजादिगण में पाठ के कारण उम का बाध हो कर टाप् हा जाता है। उपर्युक्त सूत्र में दष्ट्रा का पाठ भी टाप् करने में ज्ञापक हो सकता है।

२ उम के कई अपवादस्थल भी हैं। यथा—पराक्रम (पु०), शक्ति (स्त्री०)।

३ नगरवाची पुर और नगरी शब्द स्त्रीलिङ्ग होने हैं। नगरविशेषवाची यथाश्रुत-निङ्ग को धारण करने हैं। यथा—वान्यकुब्ज, मयुरा, वाशी, पाटलिपुत्रम् आदि।

४ युद्धवाची कई शब्द पुलिङ्ग होने हैं। यथा—मग्राम, आहव आदि। कुष्ठ स्त्रीलिङ्ग भी होने हैं। यथा—आजि, सयत्, युत् (युध्) आदि।

शब्द जन्य लिट्गो मे भी प्रयुक्त देने जाते हैं । यथा—हरीतकी । जाम्बवम् ।

[८०] वृक्षजाति स्त्रियामेव ॥

वृक्षजातिवाचक शब्द (क्वचित्) स्त्रीलिट्ग मे ही प्रयुक्त हान हैं । यथा—हरीतकी (हरड का पेड़), आमलकी (आमले का पेड़) ।

[८१] विपज्जगन्-शकृत्-शकन्-पृपद् यकृदुदशिवत् ॥

वियन् (आकाश), जगन्, शकृत् (विष्ठा), शकन् (?), पृपत् (विन्दु), यकृत् (जिगर) और उदशिवन् (छाछ, मठा)—य सान शब्द नपुमक हान हैं । तारविन विपत् । उत्पादि ।

[८२] नवनीताऽवतानाऽनृता-मृत निमित्त चित्त-चित्त-व्रत-रजत-वृत्त-पलितानि ॥

नवनीत (माखन) अवतान (चंदोजा), अनृत (झूठ) अमृत, निमित्त, वित्त (धन), चित्त, व्रत, रजत (चान्दी) वृत्त (वृत्तान्त) और पलित (वृद्धत्वजय श्वेनना) । य शब्द नपुमकलिट्ग मे प्रयुक्त होत है । नीत यदि नवनीत नीत नीत च कि तेन । आतपतापितभूमौ माधव मा धाव मा धाव ॥ इत्यादि ।

[इति नपुसकलिङ्गाधिकार]

[८३] स्त्रीपुसयो ॥

यह अधिकारमूत्र है । अब यहा मे आगे जा शब्द कृत्त वे स्त्रीलिट्ग और पुलिट्ग अर्थात् दोनो लिट्गा मे प्रयुक्त हागे ।

[८४] गो मणि-मष्टि मुष्टि-पाटलि-वस्ति-शाल्मलि-द्रुष्टि-मसि-मरोचय ॥

गा जादि दस शब्द स्त्रीलिट्ग और पुलिट्ग दोनो मे प्रयुक्त हात है । गोसन्द वल्ल ज्य मे पुलिट्ग तथा गाय अर्य मे स्त्रीलिट्ग है । अय गो । गोम्यम् । इय मणि । अय मणि । यष्टि (छडी) शब्द स्त्रीलिट्ग मे तो उपलब्ध है परन्तु इम के पुलिट्ग मे प्रयोग मुख्य हैं । अय मुष्टि, इय मुष्टि (मुट्ठी) । पाटलि (श्वेतवर्ण पुष्पविशेष) शब्द का कोषकारा न स्त्रीलिट्ग ही माना है । पुलिट्ग मे प्रयोग जन्वेपणाय है । इय वस्ति, अय वस्ति (मूत्रागय) । शाल्मलिरयम्, शाल्मलि शब्द पुलिट्ग मे ही दखा जाता है । द्रुष्टि (लव, लेश कण जादि) शब्द स्त्रीलिट्ग मे ही प्रयुक्त मिलता है । मसि (स्याही) शब्द दोनो लिट्गा मे उपलब्ध हाता है । मरीचि (किरण) शब्द उभयलिट्ग है, बहुधा बहुवचनान्त देखा जाता है ।

[८५] मृत्यु-शीघ्र कर्कशु-कण्डु-रेणु ॥

मृत्यु (मौत), शीघ्र (मद्य), कर्कशु (बैर), कण्डु (घाग्नि) और रेणु (धूलि)—ये शब्द स्त्रीलिट्ग और पुलिट्ग दोनो मे प्रयुक्त होत हैं । इय मृत्यु, अय मृत्यु । इय शीघ्र । अय शीघ्र । इय कर्कशु, अय कर्कशु । इय कण्डु, अय कण्डु । इय रेणु, अय रेणु । कर्कशु और कण्डु से स्वीत्वपक्ष मे अप्राणिजातेरचाऽरज्ज्वादीनामिति वक्तव्यम् (वा०) वातिक स ऊर् प्रथय हा कर—कर्कशु, कण्डु भी बनगा ।

[८६] गुणवचनभुकारान्त नपुंसके च ॥

उकारान्त गुणवाची शब्द स्त्रीलिङ्ग, पुलिङ्ग तथा नपुंसकलिङ्ग अर्थात् तीनों लिङ्गा म प्रयुक्त होत ह । यथा—पटुर्य छात्र, पट्वीय बन्धा, पटविद कुलम् ।

[८७] जपत्यार्थतद्धिते ॥

जपत्याम मे विहित जो तद्धितप्रत्यय तदन्त शब्द पुत्रिङ्ग जोर स्त्रीलिङ्ग दोनों मे प्रयुक्त होते ह । यथा—उपगोरपत्यम् (पुमान्) जोषगव । उपगारपत्य (स्त्री) जोषगवी । गाय, गार्गी । इत्यादि ।

[इति स्त्रीपुसाधिकार]

[८८] पुन्नपुसक्यो ॥

यह अधिकारमूल है । यहा मे आगे जो शब्द कहगे ने पुत्रिङ्ग जोर नपुंसक दोनों लिङ्गा म प्रयुक्त हान हैं ।

[८९] घृत-मूत मुस्त-श्वेतितैरावत-पुस्तक-वृस्त-लोहिता ॥

घृत, मूत जादि शब्द पुलिङ्ग और नपुंसक दोनों लिङ्गो म प्रयुक्त होत ह ।

घृतशब्द अप्रर्वादिगण म भी पटा गया है । जोक मे यह शब्द नपुंसकलिङ्ग म ही देखा जाना ह । आषुर्वे घृतम् । पुलिङ्ग म इस के प्रयोग वद म ही उपलब्ध हान है । जैसा कि जमरकोप मे कहा है—अधर्वादी घृतादीना पुस्ताद्य बदिक् प्रुचम ।

मूतशब्द पारस जथ मे पुनपुंसक है । मारगि जथ म पुलिङ्ग है ।

मुस्त (नागरमाथा) शब्द पुापुंसक के साथ साथ स्त्रीलिङ्ग म भी देखा जाता है । मुस्त, मुस्तम, मुस्ता ।

श्वेतित या श्वटित शब्द सिंहजन एक मशामघोष ज्यों म पुन्नपुंसक है ।

तैरावतशब्द द्रव्य के हाथी के अथ म पुलिङ्ग प्रसिद्ध ह ।

पुस्तकशब्द प्रायेण नपुंसकलिङ्ग है परन्तु क्वचित् पुत्रिङ्ग म भी प्रयुक्त हाना ह ।

वृस्त, वृस्तम् । फलादि के ऊपर के छिनक वा वृस्त कहते हैं ।

वाहितशब्द गंधिर अथ म नपुंसक तथा मटगतद्रव्य के अर्थ म पुत्रिङ्ग है ।

[९०] क्वन्धोपधाऽप्युघाता ॥

क्वन्ध (मिर्कटा चेष्टामुस्त देह)^१, औपघ जायुघ (शम्भ) और अत (मोन)

—य शब्द पुनपुंसक हैं । क्वन्ध, क्वन्धम् । औपघात् नपुंसक म ही उपलब्ध हाना है—जोषधम् । जायुधम् । आयुधशब्द के पुत्रिङ्ग मे प्रयोग मूढ हैं—आयुध तु प्रहरण शस्त्रमस्त्रम् इत्यमर । अत अतम्—अयाऽतिप्रयामत् इत्यमर ।

१ अस्ति कस्मिन्निचन्नगरे सागरवत्तो नाम वणिक । तत्सूनुना रूपकशतेन विप्रोप-
माण पुस्तकी गृहीत । (पञ्चनन्दे, द्वितीयतम्य)

२ क्वन्धोऽत्रो चेष्टामुस्तमपमूर्धकलेवरम् इत्यमर ।

[६१] दण्ड मण्डभ्रष्ट शब्द-संज्ञक-पारर्वाकाश-कुश-काशाऽङ्कुश-कुलिगा ॥

दण्ड आदि शब्द शब्द पुनपुमक होते हैं । दण्ड दाण्डम् । मण्ड, मण्डम् ।
खाण्ड, गण्डम् । शब्द शब्दम् (कुणप शब्दमस्त्रियाम्—द्वयम्) । संज्ञक-पारर्वाकाश-कुश-काशाऽङ्कुश-कुलिगा
अर्थ में पुलिङ्ग तथा नकाश अत्र न पुनपुमक है । पाण्ड पाण्डवम्—धातुमूले उभौ
कश्चौ पार्श्वमस्त्री तयोरथ दण्डम् । जाकाश जाकानम्—सम्माडा एतन्मादासत
जाकाश सम्भूत (नै० उप० २१) शब्दगुणकमाकाशम् (नकमग्रह) । कुण कुणम् ।
काग कागम् । अङ्कुग, जङ्कुगम्—अङ्कुशोस्त्री मुनि स्त्रियाम्—द्वयम् ।
कुलिगा कुलिगम् (इन्द्र का वज्र) ।

[६२] गृह-मेह-वेह पट्ट-पट्टाऽष्टापदाऽम्बुद-क्कुदाश्च ॥

गृह जादि जाठ शब्द पुनपुमक होत हैं । गृहगन्द का पुलिङ्ग म प्रजा
जवेपणीय ह, नाक म नयमक-प्रमाण उपनक्ष हान ह—न गृह गृहमियाहूणु ह्णिणौ
गृहमुच्यते (पञ्चतन्त्रे) । मट्ट (मूत्र) शब्द के पुलिङ्ग म ही प्रमाण मिलत हैं । मट्ट
दहम् । ननाटपट्ट, ननाटपट्टम् । पट्ट पुलिङ्ग उपनक्ष होता है । ष्टापद
अष्टापदम् (मुक्ता) । अम्बुद (मत्र) तन्त्र पुलिङ्ग म ही दम्बा जाता है । ककुद
ककुदम् (वैत का कुहान, पवनगद्ग) । दम् का षष्ठ अर्थ म भी प्रमाण देता कल्या
है—इन्वाकुवश ककुद नृपाणाम् (रनु० ६३१) ।

[इति पुनपुमकाधिकार]

[६३] अविशिष्टतिङ्गम् ॥

जब त्रिलिङ्ग शब्द का अधिकार चला रह है । यहाँ म आने जा ता षष्ठ
कह्य के तौनो लिङ्ग म प्रयुक्त हान हैं ।

[६४] अव्यय-इति-युष्मदन्मद ॥

अव्ययगण, इतिप्रत्ययान्तगद् तथा युष्मद् जीर ऋम्द् शब्द त्रिलिङ्गी
होते हैं ।

अव्यय यथा—उच्चैर्मनन् नना मन्दिर वा ।

इतिप्रत्ययान्त यथा—कनि पुरया स्त्रियो मित्राणि वा ।

युष्मद् यथा—त्व पुमान् । त्व स्त्री । त्व मित्रम् ।

ऋम्द् यथा—अहमुमान् । जह स्त्री । जह मित्रम् ।

[६५] ध्यान्ता सत्या ॥

पकारान्त एव नकारान्त मख्यावाची शब्द त्रिलिङ्गी होते हैं ।

पकारान्त यथा—पद् पुरया । पद् त्रिव्रज । पद् मित्राणि ।

नकारान्त यथा—पञ्च पुरया । पञ्च त्रिव्रज । पञ्च मित्राणि ।

३ कई लोग इस सूत्र में 'अम्बुद' के स्थान पर 'अर्बुद' (दन् कराड) शब्द का पाठ
मानते हैं । अर्बुद, अर्बुदम् ।

[६६] शिष्टा सख्या परवत् ॥

पकारान्त और नकारान्त मख्या मे भिन्न मख्यावाची शब्द विशेष्य के लिङ्ग को धारण करते हैं । यथा—एको बाल । एका कन्या । एक मित्रम् । द्वौ बालौ । द्वे कन्ये । द्वे मित्रे । त्रयो बान्ता । तिस्र कन्या । त्रीणि मित्राणि । चत्वारो बाला । चतस्र कन्या । चत्वारि मित्राणि । विंशति आदि मख्याआ के विषय में पहले बह चुके हैं ।

[६७] गुणवचन च ॥

गुणवाचकशब्द जब गुणिपरक होने हैं तो वे त्रिलिङ्ग अर्थात् विशेष्यनिघ्न होते हैं । यथा—शुक्ल पट । शुक्ला शाटिका । शुक्ल वस्त्रम् । मृदु पुष्प । मृदु (मृद्वी) माला । मृदु पुष्पम् । यदि गुणपरक हा तो पुत्रिङ्ग में ही प्रयोग होना है । यथा—शुक्ल । अमरकोष में कहा है—गुणे शुक्लादय पुंसि, गुणिलिङ्गास्तु तद्धति ।

[६८] कृत्याश्च ॥

कृत्यप्रत्ययान्तशब्द विशेष्यनिघ्न अर्थात् विशेष्य के अनुसार लिङ्ग को धारण करते हैं । यथा—पठितव्यो ग्रन्थ । पठितव्या स्तुति । पठितव्य पुस्तकम् ।

[६९] करणाधिकरणयोर्ल्युट् ॥

करण तथा अधिकरण में हुआ जो ल्युट् प्रत्यय, तदन्त शब्द विशेष्यानुसार लिङ्ग को धारण करत हैं ।

करणे ल्युट्—पलाशशातन कुठार । पलाशशातनी कुठारिका । पलाशशातन कुठारमण्डलम् ।

अधिकरणे ल्युट्—मक्तुधानो घट । मक्तुधानी घटी । मक्तुधान पात्रम् ।

[१००] सर्वादीनि सवनामानि ॥

मव आदि सर्वनाममज्ञक शब्द विशेष्य के अनुसार तीनों लिङ्गों को धारण कर लेते हैं । यथा—

अय पुमान् । इय स्त्री । इद मित्रम् । म नर । मा नारी । तद् मित्रम् । इत्यादि ।

पाणिनीये महातन्त्रे लिङ्गशास्त्रानुशासने ।

भैमोव्याख्यासमायुक्त सूत्राणां शतक गतम् ॥

भूत-वेद-ख-प-त्रेन्द्रे वैश्वमे शुभदन्तरे ।

गविवारे नवम्याञ्च पीपमामार्जने दने ॥१॥

लघु-निदान्त-कौमुद्या भैमीव्याख्यममवित ।

भाग षष्ठ ममायान पूर्तिमीशानुवम्पदा ॥२॥

शुन भूया मुरभारतीममुपासकानाम



भैमी-साहित्य

[देश-विदेश के सैकड़ों विद्वानों द्वारा प्रशंसित मन्वृत्तव्याकरण के मूख्य
विद्वान् श्री वैद्य भीमसेन शास्त्री एम्० ए० पी०एच्० जी० द्वारा
लिखित उच्चकोटि के अनमोल मरहणीय व्याकरणव्या की मुर्ची]

(१९८६-६०)

- १ लघु-सिद्धान्त-कौमुदी—भैमीव्याख्या (तद्वि-यद्वल्लिङ्ग-अन्वय) प्रथमभा
- २ लघु-सिद्धान्त-कौमुदी—भैमीव्याख्या (१० गण—११ प्रक्रिया) द्वितीयभाग
- ३ लघु-सिद्धान्त-कौमुदी—भैमीव्याख्या (कृदन्त-कारक) तृतीयभाग
- ४ लघु-सिद्धान्त-कौमुदी—भैमीव्याख्या (समास) चतुर्थभाग
- ५ लघु-सिद्धान्त-कौमुदी—भैमीव्याख्या (तद्धित) पञ्चमभाग (प्रेम म)
- ६ लघु-सिद्धान्त-कौमुदी—भैमीव्याख्या (भ्रीप्रत्यय) षष्ठभाग
- ७ वैयाकरण-भूषण-सार—भैमीव्याख्या (धात्वर्थप्रकरण, प्रेम म)
- ८ बालमनोरमा-ध्वान्ति-दिग्दर्शन
- ९ प्रत्याहारसूत्रों का निर्माता कौन ?
- १० अव्यय-प्रकरणम् (भैमीव्याख्या)
- ११ न्यास-पर्यालोचन (काशिका की व्याख्या न्यास पर शास्त्रप्रबन्ध)

भैमी-प्रकाशन

५३७, लाजपतराय मार्केट,

दिल्ली-११०००६

BHAIMI PRAKASHAN

537 LAJPAT RAI MARKET, DELHI-110006

लघु-सिद्धान्त-कौमुदी—भंमोव्याख्या

[बंध भूमतेन शास्त्रो, एम्० ए०, पी-एब्० डी० इत विस्तरेपात्मक भंमोनामक
विस्तृत हिन्दी व्याख्या सहित] प्रथम भाग सन्धि-वङ्गित्क-अध्ययप्रकरण ।

यह ग्रन्थ लेखक के दीर्घकालिक व्याकरणाध्यापन का निचोड़ है। कौमुदी पर इस प्रकार की विस्तृत वैज्ञानिक विश्लेषणात्मक हिन्दी व्याख्या आज तक नहीं निकली। इस व्याख्या में प्रत्येक सूत्र का पदच्छेद, विभक्तिवचन, मसाम-विग्रह, अनुवृत्ति अधि-कार, सूत्रगत तथा अनुवर्तित प्रत्येक पद का अर्थ परिभाषाजन्य विशेषता अर्थ को निष्पत्ति, उदाहरण प्रत्युदाहरण तथा विस्तृत सिद्धि देते हुए छात्रों और अध्यापकों के मध्य आने वाली प्रत्येक शब्दा का पूर्ण विस्तृत समाधान प्रस्तुत किया गया है। इस हिन्दी व्याख्या की देश विदेश के डेढ़ सौ से अधिक विद्वानों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की है। स्थान-स्थान पर परिनिष्ठ विषय के आलोचन के लिये बड़े दल में पर्याप्त विस्तृत अभ्यास मङ्गूहीन जिसे गये हैं। इस व्याख्या की रूपमालाओं में अनुवादीपयोगी लग-भग दो हजार शब्दों का जघनहित बृहन्मण्डल प्रस्तुत करते हुए पञ्चप्रक्रियोरपुक्त प्रत्येक शब्द को चिह्नित किया गया है। जाब तक लघुकौमुदी की किसी भी व्याख्या में ऐसी विशेषता दृष्टिगोचर नहीं जाती। व्याख्या की मूल में बड़ी विशेषता अध्ययप्रकरण है। प्रत्येक अध्यय के अर्थ का विस्तृत विवेचन करके उम के लिये विज्ञान मस्तृतवाङ्मय में किसी न किसी सूक्ति वा प्रसिद्धवचन को मङ्गूहीन करन का प्रयत्न किया गया है। अकेला अध्ययप्रकरण ही लगभग सौ पृष्ठों में समाप्त हुआ है। एक विद्वान् समा-लोचक ने ग्रन्थ की समालोचना करत हुए कहा कि—यदि संस्कृत में अपने जीवन में अन्य कोई प्रयत्न न कर केवल अध्यय-प्रकरण ही लिखा होना तो केवल यह प्रकरण ही उसे अमर करने में सर्वथा समर्थ था। सन्धिप्रकरण में लगभग एक हजार अमृतपूर्व नये उदाहरण विद्यापियों के अभ्यास के लिए सवलिप्त किये गये हैं—यथा अकेले इसी घणञि सूत्र पर ५० नये उदाहरण दिये गये हैं। इस व्याख्या में ग्रन्थगत किसी भी शब्द की रूपमाला को लक्ष्य नहीं लिखा गया प्रत्युत प्रत्येक शब्द एक धातु की पूरी-पूरी माध रूपमाला दी गई है। स्थान-स्थान पर मसामने के लिये नाना प्रकार के काष्ठका और चक्रों में यह ग्रन्थ ओत-प्रोत है। इस प्रकार का दान व्याकरण के किसी भी ग्रन्थ पर अक्षयावत नहीं किया गया। यह व्याख्या छात्रों के लिये ही नहीं अपितु अध्यापकों तथा अनुसन्धान-प्रेमियों के लिए भी अतीव उपयोगी है। अन्त में अनुसन्धानायोगी कई परिनिष्ठ दिये गये हैं। यह ग्रन्थ भारतम्बरकार द्वारा सम्मानित हो चका है। बृहदाकार (२३ × ३६) — १६ माइज के लगभग ६१० पृष्ठों में इस व्याख्या का केवल पूर्वार्ध भाग समाप्त हुआ है। मसामिधन एक परिनिष्ठ द्वितीय सम्करण का मूल्य केवल एक सौ रूपया। सुन्दर बहिर्ग स्त्री-निर्दिष्ट जिन्द तथा पक्की मितार्ड ने ग्रन्थ का बहूत जाकर्यक बना दिया है।

पाण्डोबरोम्पिन जगदिन्दपागाश्रम का प्रमुख प्रेमामिक पत्र 'अदिनि' इस व्याख्या के विषय में लिखता है —

“जहा तक हमे ज्ञान है यह आधुनिक शैली से विश्लेषणपूर्वक विषय का मर्म समझाने वाली अपने ढंग की पहली व्याख्या है। व्याख्याकार ने भाष्यशैली में आधुनिक व्याख्याशैली का पुट देकर सर्वाङ्गसुंदर व्याख्या प्रस्तुत की है। इस में मूल ग्रन्थ के एक-एक शब्द वा विचार को पूरा-पूरा खोल कर पाठकों के हृदय पर अंकित कर देने का सुंदर यत्न किया गया है। विद्वान् व्याख्याकार ने लघुसिद्धान्त-कौमुदी की भैमीनामक सर्वाङ्गपूर्ण व्याख्या प्रकाशित कर के राष्ट्रभाषा की महान् सेवा की है। व्याकरण में प्रवेश के इच्छुक छात्र, ध्युत्पन्न विद्यार्थी, जिज्ञासु, व्याकरणप्रेमी, अध्यापक और अन्वेषक सभी के लिये यह ग्रन्थ एक रत्न-सा उपयोगी मिट्ट होगा।”

हिन्दी के प्रमुख मामिक पत्र 'सरस्वती' की सम्मति—

“लघुकौमुदी पर जब तक हिंदी में कोई विश्लेषणात्मक व्याख्या नहीं निकली है। प्रस्तुत व्याख्या की लेखनशैली, विषय-स्थली का विस्तृत उद्घाटन तथा सूत्रों की प्राञ्जल व्याख्या प्रत्येक मस्कृतप्रेमी पाठक पर अपना प्रभाव डाले बिना नहीं रह सकेगी। पुस्तक न केवल विद्यार्थियों वरन् मस्कृत का अध्ययन करने वाले सभी लोगों के लिये सग्रहणीय है।”

उत्तरभारत का प्रमुख पत्र 'नवभारत टाइम्स' लिखता है—

“लेखक महोदय ने कई वर्षों के कठोर परिश्रम के पश्चात् यह ग्रन्थ तैयार किया है जो उपयोगी है। ग्रन्थकर्ता स्वयं विद्याव्यसनी हैं और विद्याप्रसार ही उन के जीवन की लगन है। हमे पूरी-पूरी आशा है कि आबाल-वृद्ध मस्कृत-प्रेमी इस ग्रन्थ पर लक्ष्य को अपनाकर परिश्रमी लेखक से इस प्रकार के अथ भी अपूर्व ग्रन्थ प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त करेंगे।”

दिन्नी का प्रमुख दैनिक 'हिन्दुस्तान' लिखता है—

“वैसे तो कौमुदी की अनेक हिन्दी टीकाएँ निकल चुकी हैं, मगर इस व्याख्या की अपनी विशेषताएँ हैं। इस में व्याकरणशास्त्र के अध्ययन-अध्यापन के आधुनिक तरीकों का महाराज लिया गया है। सूत्रार्थ और अभ्यास इसी के उदाहरण हैं। लघु कौमुदी में आये प्रत्येक सूत्र की अर्थविधि को जानने के बाद विद्यार्थी को बृत्ति घोटने की आवश्यकता न रहेगी। वह सूत्रार्थ समझ कर स्वयमेव उसकी बृत्ति तैयार करने योग्य हो सकेगा। लघुकौमुदी में आये प्रत्येक शब्द के रूप देकर टीकाकार ने शब्द-रूपावली का पृथक् रखना व्यर्थ कर दिया है। इसी सिलसिले में करीब दो हजार शब्दों की अर्थसहित सूची देकर टीकाकार ने इस विशेषता को चार चाद लगा दिया है। अव्ययप्रकरण इस पुस्तक की पाचवीं बड़ी विशेषता है। यह हिन्दी टीका विद्यार्थियों के लिये उपयोगी है। एक बार अध्यापक से पढ़ने के बाद वे इस टीका के सहारे बड़े आराम से पुनरावृत्ति कर सकते हैं। उन्हें ट्यूटर रखने की आवश्यकता न रहेगी। यह टीका उन के लिये ट्यूटर का काम करेगी। आशा है कि मस्कृतव्याकरण का अध्यापन करने वाली मस्याएँ इस ग्रन्थ का हृदय में स्वागत करेंगी।”

राष्ट्रपति द्वारा पुरस्कृत, पदवाक्यप्रमाणज्ञ, स्व० श्री प० ब्रह्मदत्तजी जिज्ञासु, आचार्य पाणिनिमहाविद्यालय काशी की सम्मति—

“मैंने लघुसिद्धान्तकौमुदी पर श्रीभीमसेनशास्त्रिहृत भैमीव्याख्या सूक्ष्मरीत्या देखी है। वाश ! कि शास्त्रीजी ने ऐसी व्याख्या अष्टाध्यायी पर लिखी होती। परन्तु इतना मैं निःसन्देह कह सकता हूँ कि इस प्रकार की विशद स्पष्ट और सर्वांगीण व्याख्या लघुकौमुदी पर पहले बार देखने को मिली है। इस व्याख्या में अष्टाध्यायी पद्धति का जो पदे-पदे मण्डन किया गया है उसे देख कर मुझे अपार हर्ष होता है।”

अनुसन्धानविद्यानिष्णात डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल जी की सम्मति—

“मैंने लघुसिद्धान्तकौमुदी पर श्रीभीमसेनशास्त्री जी की विशद भैमीव्याख्या का अवलोकन किया। यह व्याख्या मुझे बहुत पसन्द आई। ऐसा स्तुत्य परिश्रम हिन्दी भाषा के माध्यम द्वारा ही सर्वप्रथम प्रकट हुआ है। यह व्याख्या कठिन से कठिन विषय को भी अत्यन्त सरलशैली से हृदयगम कराने में सफल हो सकी है। प्रश्न-उत्तर, शका-समाधान, सूत्रार्थ का स्फोरण करते समय स्थान-स्थान पर परिभाषाओं का उपयोग, अविकल रूपावलिया, सार्थ शब्दसंग्रह तथा परिश्रम से जुटाये गये अभ्यास आदि इस व्याख्या की अपनी विशेषता हैं। अव्ययप्रकरण का निलार प्रथम बार इस में देखने को मिला है। व्याकरण के ग्रन्थों पर इस प्रकार की व्याख्याएँ निःसन्देह प्रशंसनीय हैं। यदि शास्त्री जी इस प्रकार की व्याख्या सिद्धान्तकौमुदी पर भी लिखें तो छात्रों और अध्यापकों का बहुत उपकार होगा। मैं हृदय से इस ग्रन्थ के प्रचार एवं प्रसार की कामना करता हूँ।”

लघु-सिद्धान्त-कौमुदी-भैमीव्याख्या

(द्वितीय भाग - तिङन्तप्रकरण)

लघु-सिद्धान्त-कौमुदी के इस भाग में दस गण आर एकादश प्राक्प्रयाया की विशद व्याख्या प्रस्तुत की गई है। तिङन्तप्रकरण व्याकरण की पृष्ठाम्बि (Backbone) समझा जाता है। क्योंकि धातुआ में ही विविध शब्दों की मूर्ति हुया करनी है। उन इस भाग की व्याख्या में विशेष श्रम किया गया है। लगभग दो सौ शब्दों के जालान में इस भाग की निष्पत्ति हुई है। प्रत्येक सूत्र के पदच्छेद विभक्तिवचन गमामविग्रह अनुवृत्ति अधिकार, प्रत्येक पद का अर्थ, परिभाषाजय वैशिष्ट्य, अर्थनिष्पत्ति, उदाहरण-प्रत्युदाहरण और मारमशेष के अतिरिक्त प्रत्येक धातु के दसो लकारों की रूप-माला मिद्धिमहित दिखाई गई है। वैयाकरणविक्रम में मँवडो तपों में चली आ रही अनेक धारितियों का समुक्तिव निराकरण किया गया है। भाषा विज्ञान के क्षेत्र में विद्यार्थियों के प्रवेश के लिये यत्र-तत्र अनेक भाषावैज्ञानिक नोट्स भी दिए हैं। चार सौ से अधिक सार्थ उपमर्गयोग तथा उनके लिये विज्ञान मस्त्रनसाहित्य में चुने हुए एक सत्र में अधिक उदाहरणों का अपूर्व मश्र प्रस्तुत किया गया है। लगभग छः हजार रूपों की मसूच मिद्धि और एक सौ के परीर पात्राथ और शब्दा-नमाथा

इस में दिये गये हैं। अनुवादादि के मौक्य के लिये छात्रोपयोगी णिजन्त, सनन्त, यङन्त, भावकर्म आदि प्रक्रियाओं के अनेक शतक और सग्रह भी अर्धसहित दिये गये हैं। जैसे नानाविध लौकिक उदाहरणों द्वारा प्रक्रियाओं को इस में समझाया गया है जैसे अन्यत्र मिलना दुर्लभ है। इस से प्रक्रियाओं का रहस्य विद्यार्थियों को हस्तामलकवत् स्पष्ट प्रतीत होने लगता है। अन्त में अनुसन्धानोपयोगी छ प्रकार के परिशिष्ट दिये गये हैं। ग्रन्थ का मुद्रण आधुनिक बडिया मैप्लीयो कागज पर अत्यन्त शुद्ध एवं सुन्दर ढंग में पाच प्रकार के टाइपों में किया गया है। सुन्दर, बडिया, जिल्द तथा पक्की मिलाई ने ग्रन्थ को और अधिक चमकृत कर दिया है। यह ग्रन्थ भी भारत सरकार में सम्मानित हो चुका है। यह भाग (२३ × ३६) — १६ आकार के ७५० पृष्ठों में समाप्त हुआ है। मूल्य केवल एक सौ चालीस रुपये। (Rs 140/-)।

इस भाग के विषय में श्री प० चारुदेव जी शास्त्री पाणिनीय निखत है—

‘इतनी विस्तृत व्याख्या आज तक कभी नहीं हुई। यह अद्वितीय ग्रन्थ है।

यह व्याख्या न केवल बालकों अपितु अध्यापकों के लिये भी उपयोगी है। शब्दसिद्धि सर्वत्र स्फटिकवत् स्फुट और हस्तामलकवत् प्रत्यक्ष, परिपूर्ण और असन्दिग्ध है कि इस के ग्रहण के लिये अध्यापक की अपेक्षा नहीं रहती। कौमुदीस्थ प्रत्येक धातु की अवि-कलरूपेण सूत्राद्युपयासपूर्वक सविस्तर सिद्धि दी गई है। व्याख्या में भी यह कृति अत्यन्त उपकारक है। स्थान-स्थान पर धात्व्यप्रदर्शन के लिये साहित्य से उद्धरण दिये गये हैं। धातूपमर्गयोग को भी बहुत सुन्दर काव्यनाटकों से उद्धृत उदाहरणों से स्पष्ट किया गया है। यह इस कृति की अपूर्वता है। इस व्याख्या के प्रणयन में शास्त्री जी ने जयाह प्रयत्न किया है। महाभाष्य, न्यास, पदमञ्जरी आदि का वर्षों तक अवगाहन करके उन्होंने यह व्याख्या लिखी है।”

इस भाग के विषय में दिल्ली का नवभारतटाइम्स लिखता है—

“संस्कृतव्याकरण के अध्ययन में कौमुदी ग्रन्थों का अपना स्थान है। प्रायः लघुकौमुदी से ही व्याकरण का आरम्भ किया जाता है। परन्तु इस ग्रन्थ का समझना आसान नहीं है। छात्रों के लिये यह ग्रन्थ वज्र के समान कठोर है। प्रस्तुत ग्रन्थ में श्रीभोमसेनशास्त्री ने इसकी हिन्दी व्याख्या की है। व्याख्याकार राजधानी के सुप्रसिद्ध वैद्याकरण हैं। इस व्याकरण को देखकर हम वादे के साथ कह सकते हैं कि ऐसी व्याख्या लघु तो क्या, सिद्धान्तकौमुदी की भी नहीं प्रकाशित हुई। इस व्याकरण का प्रथमभाग आज से बीस वर्ष पूर्व प्रकाशित हुआ था तब इस का भारी स्वागत हुआ था। जनता को इस के उत्तरार्द्ध भाग की व्याख्या की तभी से उत्कट लालसा रही है। लेखक ने अब इसे प्रकाशित कर जहाँ छात्रों का उपकार किया है, वहाँ शिक्षकों, प्राध्यापकों की भी उपकृत किया है। इस में लेखक का गहन अध्ययन, कठोर परिश्रम तथा विद्वत्ता स्थान-स्थान पर प्रकट होते हैं। परन्तु छात्रोपयोगी किसी भी विषय का विवेचन छोड़ा नहीं गया। यह इस की बड़ी भारी विशेषता है। इस भाग में तिङन्तप्रकरण (दशमण तथा एकादश प्रक्रियाओं) का अत्यन्त विशद विवेचन प्रस्तुत किया गया है। यह प्रक-

रण धातुसम्बन्धी होने से व्याकरण का प्राण है। इस में प्रत्येक धातु के दस लकारों की समूह प्रक्रिया साध कर उन की सारी रूपमाता भी दी गई है। इससे विद्यार्थियों को धातुरूपावलियों की आवश्यकता नहीं रहती। छ सौ के करीब टिप्पणिया तथा साठे चार सौ से अधिक उपसर्गयोग इस ग्रन्थ की अपनी अपूर्व विशेषता है। इन के लिये व्याख्याकार ने महान् श्रम कर विपुल संस्कृत-साहित्य से जो डेढ़ हजार के करीब अत्यन्त सुन्दर संस्कृत की सूक्तियों का चयन किया है वह स्तुत्य है। संकटों उपयोगी शब्दा समाधान तथा णिजन्त, सन्नन्त, यङन्त, भावकर्म आदि प्रक्रियाओं के अर्थमहित कई शतक विद्यार्थियों के लिये निश्चय ही उपयोगी सिद्ध होंगे। इस ग्रन्थ की उत्कृष्टता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि अकेली भूधातु पर ही विद्वान् व्याख्याकार ने ६० पृष्ठों में अपनी व्याख्या पूर्ण की है।

संक्षेप में इस व्याख्या को लघुकौमुदी का महानाट्य कह सकते हैं। यह ग्रन्थ न केवल छात्रों, परीक्षार्थियों तथा उपाध्यायों, अध्यापकों के लिए उपयोगी सिद्ध होगा बल्कि अनुसंधान में रुचि रखने वालों के लिए भी परमोपयोगी एवं सहायक सिद्ध होगा। इसे पढ़ने से जहां व्याकरण जैसे शुष्क विषय में सरसता पैदा होती है वहां अनुसंधान कार्य को भी बढ़ावा मिलता है। हिन्दी में ऐसे ग्रन्थ स्वागत-योग्य हैं।”

लघु-सिद्धान्त-कौमुदी-भंसीव्याख्या

(तृतीय भाग—कृदन्त एवं कारकप्रकरण)

भंसीव्याख्या के इस तृतीय भाग में कृदन्त और कारक प्रकरणा का विस्तृत वैज्ञानिक विवेचन प्रस्तुत किया गया है। सुप्रसिद्ध कृतप्रत्ययों के लिये कई विशाल शब्दसूचिया अथ तथा मसूरटिप्पणों के साथ वह यत्न से गुम्फित की गई है, जिन में अट्ठाई हजार से अधिक शब्दों का अपूर्व संग्रह है। प्रायः प्रत्येक प्रत्यय पर संस्कृत-साहित्य में से अनेक सुन्दर मुभाषितों या सूक्तियों का संकलन किया गया है। कारकप्रकरण लघुकौमुदी में केवल सालह सूत्रों तक ही सीमित है जो स्पष्टतः बहुत अपर्याप्त है। भंसीव्याख्या में इन मोलह सूत्रों की विस्तृत व्याख्या करत हुए अन्त में अत्यन्त-पयागी लगभग पचास अथ सूत्र-वार्तिकों की भी मोढ़ाहरण सरल व्याख्या प्रस्तुत की गई है। इन प्रकार कुल मिलाकर कारकप्रकरण ५६ पृष्ठों में समाप्त हुआ है। जब प्रकार के उपयोगी परिशिष्टों सहित यह भाग लगभग चार सौ पृष्ठों में समाहित हुआ है। पूर्ववत् पक्की सिलाई मशीनप्रिंटिड आकषक जिल्द। मूल्य केवल अस्मि २० (Rs 80/-)।

लघु-सिद्धान्त-कौमुदी-भंसीव्याख्या

(चतुर्थ भाग—समासप्रकरण)

भंसीव्याख्या के अभिनव प्रकाशित इस चतुर्थ भाग में लघु-सिद्धान्त-कौमुदी के समासप्रकरण का अत्यन्त विस्तार के साथ लगभग तीन सौ पृष्ठों में विवेचन प्रस्तुत

किया गया है। ग्रन्थगत प्रत्येक प्रयोग के लौकिक और अलौकिक दानों प्रकार के विग्रह निर्दिष्ट कर उम की सूत्रों द्वारा अविकल साधनप्रक्रिया दर्शाई गई है। मूलोक्त उदाहरणों के अतिरिक्त सैंकड़ों अन्य नवीन उदाहरणों को विंगल मसूतमाहित्य में चयन कर इस व्याख्या में गुम्फित किया गया है। इस प्रकार इस व्याख्या में बारह सौ से अधिक समासोदाहरण संगृहीत किये गये हैं। माहित्यिक उदाहरणों के स्थाननिर्देश भी यथामुम्भव दे दिये गये हैं। प्रबुद्ध विद्यार्थियों के मन में स्थान स्थान पर उठने वाली दो सौ से अधिक शब्दाओं का भी इस में यथास्थान समाधान किया गया है। स्थान स्थान पर उपयोगी पादटिप्पण (फुटनोट्स) दिये गये हैं। मूलगत सूत्रवार्तिक आदियों के अतिरिक्त छात्रोपयोगी कई अन्य सूत्रवार्तिक आदियाँ का भी इस में सोदाहरण व्याख्यान किया गया है। लघुकौमुदी के अगुद्ध या भ्रष्ट पाठों पर भी अनेक टिप्पण दिये गये हैं। व्याख्याकार की सूत्रनेधिका स्वाध्याय-निपुणता तथा कठिन से कठिन विषय को भी नप-तुने शब्दों में समझा देने की क्षमता इस व्याख्या में पदे पदे परिलक्षित होनी है। समासप्रकरण पर इतनी विस्तृत व्याख्या आज तक लिखी ही नहीं गई। इस में विद्यार्थियों और अध्यापकवृन्द दोनों जहाँ लाभान्वित होंगे वहाँ अनुसन्धानप्रेमियों को भी प्रचुर अनुसन्धानमामग्री प्राप्त होगी। विद्वान् लेखक न सततोत्पायी हो कर दो वर्षों के कठोर परिश्रम से सैंकड़ों ग्रन्थों का मन्थन कर इस भाग को तैयार किया है। अन्त में विविध परिशिष्टों में इस ग्रन्थ को विभूषित किया गया है। व्याख्यागत बारह सौ उदाहरणों की समासनाम-निर्देशसहित बनी वर्णानुक्रमणी इस ग्रन्थ की प्रमुख विशेषताओं में एक समझी जायेगी। इस के सहारे सम्पूर्ण समासप्रकरण की आवृत्ति करने में विद्यार्थियों को सहनी सुविधा रहेगी। ग्रन्थ में यथाम्यात अनेक अभ्यास दिये गये हैं। समीपको का कहना है कि यदि इन अभ्यासों को सुचारु रूप में हल कर लिया जाये तो विद्यार्थियों को निदान-कौमुदी या काशिका में समासप्रकरण को समझने का स्वयं सामर्थ्य प्राप्त हो सकता है। (२३ × ३६) — १६ साइज के लगभग तीन सौ पृष्ठों में यह ग्रन्थ समाप्त हुआ है। साफ सुथरी शुद्ध छपाई, पक्की सिलाई तथा सुन्दर स्क्रीन प्रिंटिड जिन्द से यह ग्रन्थ और भी अधिक आकर्षक बन गया है। मूल्य एक सौ रुपये मात्र (Rs 100/-)।

लघु-सिद्धान्त-कौमुदी-भैमीव्याख्या

(पञ्चम भाग—तद्धितप्रकरण)

इस भाग का मुद्रण शीघ्र ही चालू होने वाला है। नव ८६ के अन्त तक इस के प्रकाशित होने की पूरी सम्भावना है। इस भाग में लघुसिद्धान्तकौमुदी के तद्धितप्रकरण की अनीव सरल ढंग से मविस्तर व्याख्या प्रस्तुत की गई है। प्रत्येक सूत्र की व्याख्या के बाद हर एक उदाहरण का विग्रह, अर्थ तथा विंगद मिडि इस में दर्शाई गई है। मूलगत उदाहरणों के अतिरिक्त साहित्यगत विविध उदाहरणों में भी

यह ग्रन्थ विभूषित है। पठन-पाठन में उठने वाली प्रत्येक शब्दा का इस में समाधान किया गया है। मूलोक्त सूत्रों के अतिरिक्त भी छात्रोपयोगी अनेक सूत्रों को इस में व्याख्या दर्शाई गई है। यत्र-तत्र यत्न से अभ्यास निबद्ध किये गये हैं जिन की सहायता से मारा प्रकरण दोहराया जा सकता है। अन्त में अनेक परिशिष्टों के अतिरिक्त उदाहरणसूची वाला परिशिष्ट इस ग्रन्थ का विशेष आकर्षण है। मूल्य छपने पर।

लघु-सिद्धान्त-कौमुदी-भंमोव्याख्या

(पठ भाग—स्त्रीप्रत्ययप्रकरण)

यह भाग अब प्रकाशित होकर पाठकों के हाथों में आ चुका है। इसमें लघुकौमुदी के स्त्रीप्रत्ययप्रकरण की विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत की गई है। प्रत्येक सूत्र की विशद व्याख्या के अनन्तर तद्गत प्रत्येक प्रयोग की विस्तृत मिद्धि तथा अनेकविध उदाहरण-प्रत्युदाहरणों एवं शब्दासमाधानों से यह भाग विभूषित है। मूलोक्त सूत्रों के अतिरिक्त छात्रोपयोगी अन्य भी अनेक सूत्र और वार्तिक इस में सोदाहरण व्याख्यात किये गये हैं। जगह जगह माहित्यिक उदाहरण ढूढ़ ढूढ़ कर संकलित किये गये हैं। 'स्वाङ्ग' और 'जानि' सरीखे पारिभाषिक शब्दों तथा अन्य कठिन स्थलों की सरलभाषा में विस्तार के साथ विवेचना की गई है। दूसरे शब्दों में ग्रन्थ का कोई भी व्याख्येयाशयिना व्याख्या के अछूता छोड़ा नहीं गया। पठितविषय की आवृत्ति के लिये यत्र-तत्र जनक अभ्यास दिय गये हैं। नानाविध सूचीपरिशिष्टों विशेषतः प्रत्ययनिर्देशसहित दी गई उदाहरणसूची में इस ग्रन्थ का महत्त्व बहुत बढ़ गया है। अन्त में स्त्रीप्रत्यय-सम्बन्धी एक सौ से अधिक पद्यबद्ध अशुद्धियों का सहेतुक शोधन दर्शा कर लक्ष्यों के प्रति विद्यार्थियों की जागरूकता को प्रबुद्ध करने का विशेष प्रयत्न किया गया है। अनुसन्धानप्रेमी जनों के लिये भी दजनों महत्त्वपूर्ण टिप्पण जहाँ तहाँ दिये गये हैं। कई स्थानों पर पाणिनीतरव्याकरण का आश्रय ले कर भी विषय को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है। वस्तुतः इतनी विशद सर्वाङ्गीण व्याख्या स्त्रीप्रत्ययप्रकरण पर पहला बार प्रकाशित हुई है। (२३ X ३६) — १६ साइज के डेढ़ सौ से अधिक पृष्ठों में यह ग्रन्थ समाप्त हुआ है। सुन्दर शुद्ध छपाई, बढिया स्कोर्नाप्रिंटिड जिल्द तथा पक्की मिलाई में यह ग्रन्थ और भी चमत्कृत हो उठा है। मूल्य साठ रुपये मात्र (Rs 60/-)।

वैयाकरण-भूषण-सार-भंमोव्याख्येय

(धात्वर्थनिर्णयात्)

वैयाकरण-भूषणसार वैयाकरणनिकाय में लघुप्रतिष्ठ ग्रन्थ है। व्याकरण के दार्शनिक सिद्धान्तों के ज्ञान के लिये इस का अपना महत्त्वपूर्ण स्थान है। अतः एव एम्. ए., आचार्य, शास्त्री आदि व्याकरण की उच्च परीक्षाओं में इसे पाठ्यग्रन्थ के रूप में स्वीकृत किया गया है। परन्तु इस ग्रन्थ पर हिन्दी भाषा में कोई भी सरल

व्याख्या आज तक नहीं निकली—हिन्दी तो क्या अन्य भी किन्नी प्राणीय वा विदेशी भाषा में इस का अनुवाद तक उपलब्ध नहीं। विश्वविद्यालयों के छात्र तथा उच्च कक्षाओं में व्याकरण विषय को लेने वाले विद्यार्थी प्रायः सब इस ग्रन्थ में त्रस्त थे। परन्तु अब इस के विस्तृत जालोचनात्मक सरल हिन्दीभाष्य के प्रकाशित हो जाने में उन का भय जाता रहा। छात्रों वा अध्यापकों के लिये यह ग्रन्थ ममानरूपेण उपयोगी है। इस ग्रन्थ के गूढ़ आशयों को जगह-जगह वक्तव्यों वा फुटनोटों में भाष्यकार ने भली भाँति व्यक्त किया है। भौमीभाष्यकार व्याकरणक्षेत्र में लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् है तथा वर्षों से व्याकरण के पठनपाठन का अनुभव रखते हैं। अतः छात्रों वा अध्यापकों के मध्य आने वाली प्रत्येक छोटी-से-छोटी समस्या को भी उन्होंने खोलकर रखने में कोई कसर नहीं छोड़ी। जगह-जगह वैयाकरण और मीमांसकों के सिद्धान्त का खोलकर तुलनात्मकरीत्या प्रतिपादित किया गया है। इस भाष्य की महत्ता इसी में व्यक्त है कि अकेली दूमरी कारिका पर ही विद्वान् भाष्यकार न लगभग साठ पृष्ठा में अपना भाष्य समाप्त किया है। विषय को समझाने के लिये अनेक चाट दिये गये हैं। जैसे—वैयाकरणों और नैयायिकों का बोधविषयक चाट, धातु की साध्यावस्था और सिद्धावस्था का चाट, प्रसज्य और पर्युदास प्रतिषेध का चाट आदि। पूर्वपीठिका में भाष्यकार ने व्याकरण के दशानशास्त्र का विस्तृत क्रमबद्ध इतिहास देकर माना मुवण म मुगन्ध का काम किया है। ग्रन्थ के अन्त में अनुसन्धानप्रेमी छात्रों के लिये सात परिशिष्ट तथा आदि में विस्तृत विषयानुक्रमणिका दी गई है जो अनुसन्धान-क्षेत्र में अत्यन्त काम की वस्तु है। वस्तुतः व्याकरण में एक अभाव की पूर्ति भाष्यकार ने की है। इस भाष्य की प्रशंसा में देश-विदेश के विद्वानों के प्रशंसा-पत्र घडाघट जा रहे हैं। भारत सरकार द्वारा यह ग्रन्थ सम्मानित हो चुका है। ग्रन्थ का मुद्रण बडिया मैप्रीया कागज पर अत्यन्त शुद्ध वा सुन्दर ढंग में छ प्रकार के टाइपो में किया गया है। सुन्दर बडिया सम्पूर्ण कपडे की जिल्द तथा पक्की सिलाई ने ग्रन्थ को और अधिक चमत्कृत कर दिया है। मूल्य साठ रुपये केवल (Rs 60/-)। (द्वितीय संस्करण प्रेम म)।

'नवभारत टाइम्स' इस ग्रन्थ की आलोचना करता हुआ लिखता है—

"ग्रन्थ के भावों और गूढ़ आशयों को व्यक्त करने वाले पदे-पदे वक्तव्यों और पादटिप्पणों से लेखक का गम्भीर अध्ययन वा श्रम स्पष्ट झलकता है। पञ्चमी और त्रयोदशी कारिकाओं पर अकर्मक और सकर्मक धातुओं के लक्षण का आशय जैसा इस भाष्य में स्पष्ट किया गया है अन्यत्र बेजाने को नहीं मिलता। इस तरह के अन्य भी शतश स्याल उदाहरण रूप में प्रस्तुत किये जा सकते हैं। शास्त्रीजी की शैली अध्येताओं वा पाठकों के मन में उत्पन्न होने वाली सम्भावित शङ्काओं को बटोर-बटोर कर ध्वस्त करने की क्षमता रखती है। द्वितीयकारिका की व्याख्या का लगभग सत्तर पृष्ठों में समाप्त होना इस का ज्वलन्त प्रमाण है। हिन्दी में इस प्रकार के यत्न स्तुत्य हैं।"

बम्बई विश्वविद्यालय के संस्कृतविभाग के अध्यक्ष डाक्टर शम्भूक गोविन्द भाईशर्कर लिखते हैं—

'Students of Grammar will always remain indebted to Bhim Sen Shastriji for his very valuable help available in his commentary I wish Bhim Sen Shastriji writes similar commentaries on other works in the field of Grammar and renders service both to the subject of his love and to the world of students and scholars I once again congratulate him'

अर्थात् श्रीभीमसेन शास्त्री के इस बहुमूल्य व्याख्यान को पाकर व्याकरण के विद्यार्थी उन के सदा ऋणी रहेंगे। मैं चाहता हूँ कि शास्त्रीजी इस प्रकार की व्याख्यायें व्याकरण के अन्य ग्रन्थों पर भी प्रकाशित करते हुए विद्यार्थियों तथा अनुसन्धानप्रेमियों का उपकार करेंगे। मैं शास्त्रीजी को उन के इस कार्य के लिये पुन बधाई देता हूँ।

डा० सत्यव्रत जी शास्त्री व्याकरणाचार्य, प्रोफेसर एव सस्कृतविभागाध्यक्ष, दिल्ली विश्वविद्यालय लिखते हैं—

"वैयाकरणभूषणसार ग्रन्थ के क्लिष्ट शब्दावली में लिखा होने के कारण विद्यार्थियों को इसे समझने में बहुत कठिनाई हो रही थी। इसी कठिनाई को दूर करने की सदिच्छा में प्रेरित हो सुप्रसिद्ध वैयाकरण प० भीमसेन शास्त्री ने हिन्दी में इस को सरल और सुबोध व्याख्या लिखी है। शास्त्री जी का व्याकरणशास्त्र का अध्ययन अति गहन है। विषय स्पष्टातिस्पष्ट हो, इस विषय में सतत उद्योगशील रहते हैं। इस का यह परिणाम है कि उन की व्याख्या में गहराई भी है और विशदता भी। यह व्याख्या विद्वानों के लिए एव विद्यार्थियों के लिए एक समान उपयोगी है।"

श्री पण्डित कृबेरदत्तजी शास्त्री व्याकरणाचार्य प्रिंसिपल श्रीराधाकृष्णसस्कृत-महाविद्यालय, धुर्जा लिखते हैं—

"वैयाकरणभूषणसार पर विशद भूमिभाष्य को पाकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। ऐसा परिश्रम हिन्दी में प्रथम बार हुआ है। यह भाष्य न केवल विद्यार्थियों वा परोक्षार्थियों के लिये अपितु अध्यापकों के लिए भी अत्यन्त उपयोगी है। व्याख्यान की शैली नितान्त हृदयहारिणी तथा स्तुत्य है। व्याकरण के अन्य दार्शनिक ग्रन्थों की भी इसी शैली में उन्हें व्याख्या करनी चाहिये। मैं शास्त्री जी को उन की सरल वृत्ति पर बधाई देता हूँ।"

डा० रामचन्द्रजी द्विवेदी प्रोफेसर एव सस्कृतविभागाध्यक्ष, राजस्थान यूनि-वर्सिटी जयपुर अपने एक पत्र में लिखते हैं—

"I gratefully acknowledge receipt of a copy of the Vैया-
karana Bhusana Sara Your knowledge of the grammar is profound
and subtle and the world of scholars expect many such good works
from your pen"

गुरुकुल झज्जर के आचार्य तपोमूर्ति श्रीभगवान्देवमी आर्य लिखते हैं—

“आप का परिश्रम स्तुत्य है। छात्रों के लिए इस ग्रन्थ का आर्यभाषानुवाद कर के आप ने महान् उपकार किया है। आप को अनेकश' बधाइया।’

बालमनोरमा-भ्रान्ति-दिग्दर्शन

[लेखक—वैद्य भीमसेन शास्त्री, एम्० ए०, पी०एच० डी०, साहित्यरत्न]

श्री भट्टोजिदीक्षित की सिद्धान्तकौमुदी पर श्रीवासुदेवदीक्षित की बनाई हुई बालमनोरमा टीका सुप्रसिद्ध छात्रोपयोगी ग्रन्थ है। पिछली अद्यशताब्दी में इस के कई मस्करण मद्रास, लाहौर, बनारस और दिल्ली आदि महानगरों में अनेक दिग्गज विद्वानों के तत्त्वावधान में प्रकाशित हो चुके हैं। परन्तु शोक में कहना पड़ता है कि इन स्वनामधेय विद्वान् सम्पादकों ने इस ग्रन्थ के साथ जरा भी न्याय नहीं किया। इस पढ़ने तक का भी कष्ट नहीं किया। यही कारण है कि इस में अनेक हास्यास्पद और घिनौनी अशुद्धियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। इस में पठन-पाठन में बहुत विघ्न उत्पन्न होता है। इस शोधपूर्ण लघुनिबन्ध में बालमनोरमाकार की कुछ सुप्रसिद्ध भ्रान्तियों की सम्यक् समीक्षा प्रस्तुत की गई है। आप इस शोधपत्र को पढ़ कर मनोरञ्जन के साथ-साथ प्रक्रियामात्र में अन्धानुकरण न करने तथा सदैव सजग रहने की भी प्रेरणा प्राप्त कर सकते हैं। इस में स्थान-स्थान पर विद्वानों की प्रमादपूर्ण सम्पादनकला पर भी अनेक चुभनी चुटकियाँ ली गई हैं। यह निबन्ध प्रकाशकों, सम्पादकों, अध्यापकों एवं विद्यार्थियों सब की जाँचा को खोलने वाला एक समान उपयोगी है। हिन्दी में इस प्रकार का प्रयत्न पहली बार किया गया है। अनेक टाइपो में मँफ़ीचो कागज पर छपे सुन्दर शोधपत्र का मूल्य—पाच रुपये केवल।

प्रत्याहारसूत्रों का निर्माता कौन ?

[लेखक—वैद्य भीमसेन शास्त्री, एम्० ए०, पी०एच० डी०, साहित्यरत्न]

शोधपूर्ण इस निबन्ध में ‘अइउण्’ आदि प्रत्याहारसूत्रों के निर्माता के विषय में खूब ऊहापोहपूर्वक विस्तृत विचार व्यक्त किये गये हैं। ये सूत्र पाणिनि की स्वोपज्ञ रचना हैं या किसी अन्य मनीषी की ? इस विषय पर महाभाष्य काशिकावृत्ति, भर्तृहरिचूटन महाभाष्यदीपिका, कैयटचूटन प्रदीप आदि प्रामाणिक ग्रन्थों के दृष्टिकोणों के आलोक में पहली बार नवीनतम विचार प्रस्तुत किये गये हैं। इन के शिवसूत्र या माहेश्वरसूत्र कहलाने का भी क्रमिक इतिहास पूर्णतया दे दिया गया है। ग्रन्थ के परिशिष्ट भाग में कातग्र, चान्द्र, जैनेन्द्र शाकटायन, सरस्वतीकण्ठाभरण, हेमचन्द्रशब्दानुशासन, मलयगिरिशब्दानुशासन, मारस्वत, मुग्धबोध, सक्षिप्तसार तथा हरिनामामृत—इन ग्यारह पाणिनीतरव्याकरणों के प्रत्याहारसूत्रों को उद्धृत कर उन का पाणिनीयप्रत्याहारसूत्रों के परिप्रेक्ष्य में सक्षिप्त तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इस में प्रत्याहारसूत्रों के विषय में गत अढ़ाई हजार वर्षों के मध्य भारतीय व्याकरणविदों के विचारों में आये क्रमिक परिवर्तनों पर प्रकाश पड़ता है। इस के अन्त

में बहुचर्चित नन्दिकेश्वरकाशिका ग्रन्थ भी अविक्ल द दिया गया है, जिस स पाठको को इस विषय का पूरा-पूरा विवरण मिल सके। पक्की सिलाई तथा आकर्षक जिल्द म यह ग्रन्थ चमत्कृत है। मूल्य—पच्चीस रुपये केवल।

अध्ययप्रकरणम्

[लेखक—वैद्य भीमसेन शास्त्री, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, साहित्यरत्न]

लघुसिद्धान्तकौमुदी का अध्ययप्रकरण सुविस्तृत भैमीव्याख्यासहित पृथक् छपवाया गया है। इस में विशाल सस्कृतसाहित्यगत लगभग सदा पाच सौ अध्ययों का सोदाहरण साङ्गोपाङ्ग विवेचन प्रस्तुत किया गया है। प्रत्येक अध्यय पर वैदिक वा लौकिक मस्कृतमाहित्य में जनक सुन्दर सुभाषितों वा सूक्तियों का सकलन किया गया है। कठिन सूक्तियों के अर्थ भी साथ-साथ दे दिये गये हैं। प्रत्येक उद्धृत वचन का यथासम्भव उद्धरणस्थल भी निदिष्ट किया गया है। सैकड़ों टिप्पणियां तथा फुटनोटों में यह ग्रन्थ ओत-प्रोत है। इस के निर्माण में सैकड़ों ग्रन्थों में सहायता ली गई है। आज तक इतना शोधपूर्ण परिश्रम इस प्रकरण पर पहली बार देखने में आया है। साहित्यप्रेमी विद्यार्थियों तथा शोध में लगे जिज्ञासुओं के लिये यह ग्रन्थ विशेष उपादेय है। ग्रन्थ के अन्त में ग्रन्थगत सब अध्ययों की अकारादिक्रम में अनुक्रमणी भी दे दी गई है। ताकि अध्ययों को ढूढने में असुविधा न हो। इस ग्रन्थ में अध्ययों के अयज्ञान के साथ-साथ सुभाषितों वा सूक्तियों का व्यवहारोपयोगी एक बृहत्समूह भी अनायास प्राप्त हो जाता है। सुन्दर पक्की सिलाई आकर्षक जिल्द। मूल्य—पच्चीस रुपये।

न्यास-पर्यालोचन

यह ग्रन्थ काशिका की प्राचीन सबप्रथम व्याख्या काशिकाविवरणपञ्चिका अपरनाम न्यास पर लिखा गया बृहत्काय शोधग्रन्थ है जिसे दिल्ली विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच्०डी० की उपाधि के लिये स्वीकृत किया गया है। यह शोधग्रन्थ वैद्य भीमसेन शास्त्री द्वारा कई वर्षों के निरन्तर अध्ययन स्वरूप बड़े परिश्रम से लिखा गया है इसमें कई प्रचलित धारणाओं का खुल कर विरोध किया गया है। जैसा न्यासकार को जब तक बोध समझा जाता है परन्तु इस में उसे पूणतया वैदिकधर्मों सिद्ध किया गया है। यह शोधग्रन्थ छ अध्यायों में विभक्त है। प्रथम अध्याय में न्यास और न्यासकार का सामान्य परिचय देते हुए न्यासकार का काल, निवास स्थान, न्यास का वैशिष्ट्य, न्यास की प्रसन्नपदा प्रवाहपूर्णा शैली तथा न्यास और पदमञ्जरी का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। द्वितीय अध्याय में 'न्यास के ऋणी उत्तरवर्ती वैयाकरण' नामक अत्यन्त शोधपूर्ण नवीन विषय प्रस्तुत किया गया है। इस में केवल पाणिनीय वैयाकरणों को ही नहीं लिया गया अपितु पाणिनीतर चाद्र, जैनेन्द्र, कातन्त्र, शाकटायन, भोजकृत सरस्वतीकण्ठाभरण, हैमशब्दानुशासन, मलय-गिरिशब्दानुशासन, सक्षिप्तभार, मुग्धबोध तथा सारस्वत इन दस प्रमुख व्याकरणों को

भी सम्मिलित किया गया है। तृतीयाध्याय में 'उत्तरवर्ती वैयाकरणो द्वारा न्यास का खण्डन' नामक अपूर्व विषय प्रतिपादित है। इस में उत्तरवर्ती वैयाकरणो द्वारा की गई न्यासकार की आलोचनाओं पर कारणनिर्देशपूर्वक युक्तयुक्तरीत्या खुल कर विचार उपस्थित किये गये हैं। चतुर्थ अध्याय में न्यास की महायता में काशिका का पाठमशोधन' नामक महत्वपूर्ण विषय का वर्णन है। इसमें काशिका ग्रन्थ की अद्यत्वे मान्य सम्पादको (?) द्वारा हो रही दुदशा का विशद प्रतिपादन करते हुए उन के अनेक अणुद्ध पाठो का न्यास के आलोक में महत्तुक शुद्धीकरण पस्तुत किया गया है। पञ्चम अध्याय में न्यासकार की ध्रान्तियो तथा न्यास के एक-सौ ध्रष्ट पाठो का विस्तृत लेखा-जोखा उपस्थित किया गया है। छठा अध्याय अनेक नवीन शान्ते में उपवृ हित उपमहागतरमक है। न्याकरण का यह ग्रन्थ पाणिनीय वा पाणिनीतर व्याकरण के क्षेत्र में अपने ढग का सबप्रथम किया गया अनूठा ज्ञानवधक प्रयास है। यह ग्रन्थ प्रत्येक पुस्तकालय के लिये संप्राप्त्य है तथा व्याकरणशास्त्र में शोधकाय करन वाले शोधच्छात्रो के लिये नितान्त उपयोगी है। सुन्दर मैप्लीथो कागज पक्की मिलाई म्क्रोनप्रिंटिड आवर्षक मजबूत त्रिल्द में सुशोभित ग्रन्थ का मूल्य—केवल एक सौ रुपये।

—विशेष सूचना—

संस्कृत के प्रचार एक प्रसार के लिये भैमीप्रकाशन द्वारा एक विशेष योजना आरम्भ की गई है जिसे के अन्तगत संस्कृत के प्राध्यापको एक विद्या धिया की सूचापत्र में उल्लिखित ये पुस्तके बहुत अधिक रियायती मूल्य पर दी जाती है। इस सूचिया में नाम उठाने के लिये निम्न पत्र पर जवाबी शब्द सहित पत्र लिखें।

प्राप्तिस्थान—

प्रबन्धक

भैमी प्रकाशन

५३७, लाजपतराय मार्केट,

दिल्ली-११०००६

BHAIMI PRAKASHAN

(1) LAGHU-SIDDHANT-KAUMUDI

BHAIMI VYAKHYA—PART-1

(Revised and Enlarged Edition)

Bhaimi Vyakhya of Dr Bhim Sen Shastri is unique and first of its kind published in Hindi, in its detailed and scientific exposition of the Laghu Siddhant Kaumudi. The fact that part-1 (पूर्वाय) runs into more than 600 pages, speaks for the painstaking nature, depth of learning and experience of the author. He has left no stone unturned to make the subject as simple and easy to grasp as possible for the students and to achieve this aim, he has combined the traditional method with the modern and scientific method of teaching and analysis.

The author has taken great pains to bring home to students the meaning of the Sutras without the help of Vrittis. At the end of each section have been appended exercises prepared with great care and caution to remove the doubts of students. Declensions of all the words mentioned in the L S K. have been given in the Bhaimi Vyakhya. This does away with the need to have a separate Roopmala. The author has also given a list of about 2000 words with meanings. These include many rare and uncommon words. This is a real help in translation. The unique feature of the publication is the section on Avyaya (अव्यय), which has been acclaimed by eminent scholars and erudite pandits as an original contribution to the subject. The several indexes at the end are very useful.

The language of the work is very simple and lucid. The difficult and knotty points have been handled deftly. On controversial subjects, the views of all the well known authorities have been quoted. The author is not a blind follower of tradition in matter of interpretation and meaning of Sutras. Wherever he differs, he gives convincing arguments in support of his own view, which gives a stamp of his deep study, research and vast teaching experience. Bhaimi Vyakhya, in short is a self tutor and is of immense help to teachers and research scholars. Price Rs 100/ only.

**(2) LAGHU-SIDDHANT KAUMUDI
BHAIMI-VYAKHYA—PART-II**

Part-II of Bhaimi Vyakhya on Laghu Siddhant Kaumudi deals with the तिङन्त section, which is known as the backbone of Sanskrit grammar. The work is an original commentary in the traditional style, which combines the modern scientific technique of exposition and comparative analysis. The work is unique in the प्रक्रिया portion. The author has given detailed प्रक्रिया of about 1500 verbal forms besides conjugations of more than 300 verbs in all the ten tenses and moods. The use and meaning of different उपसर्ग's in combination with verbs has been illustrated in about 1000 quotations taken from the famous Sanskrit works. For the benefit of students, exercises have been given at the end of each sub-section. The causal desiderative, intensive and denominative verbal forms have been ably explained. One hundred illustrations of each of these forms have been given with meaning. The inclusion of well known controversies with the view point of each side and author's own, is a special feature of the work. In many places, the author has offered new solutions to difficult problems left unattended even by Varadaraja himself. At the end of the publication have been appended six indexes of which special mention may be made of no 5.

This voluminous work running into 750 pages has been priced Rs. 140/- only.

**(3) LAGHU-SIDDHANT-KAUMUDI
BHAIMI-VYAKHYA—PART III**

Like the first two parts, this part of Laghu Siddhanta-Kaumudi Bhaimi Vyakhya too deals in great details with वृद्धन्त and कर्कस sections only. The section on Karkas has been elaborated by inceptions of a sufficient number of new Sutras, not found in the original L. S. K. of Vardraja. As in the first two parts exercises have been added at the end of each sub-section. Thus it contains excellent material for research scholars. Price, Rs. 80/ only.

**(4) LAGHU SIDDHANT KAUMUDI
BHAIMI-VYAKHYA—PART IV**

The recently published fourth part of the Bhaimi-vyakhya of the L. S. K. by Dr. Bham Sen Shastri treats of the Samasa-section.

(समासप्रकरण) in great detail running to about 300 pages. The author first furnishes both the popular (लौकिक) as well as the technical (अलौकिक) analysis (विग्रह) of each example given in the text and then explains its complete formation with the help of relevant Sutras. Besides the examples given in the text, hundreds of new examples of Samasas selected from the vast Sanskrit literature have been woven in this exposition. The total number of illustrations thus collected exceeds 1200. Wherever possible, necessary references to the literary illustrations have also been given. More than 200 objections or doubts likely to be raised by talented students at different places have been satisfactorily answered. Useful footnotes have been added at places. In addition to the Sutras, Varttikas etc., in the original text, some other Sutras, Varttikas etc., have also been elucidated with illustrations in the treatise. Notes have been appended on the incorrect and false readings of the text of L. S. K. The author's penetrating observation, his scholastic dexterity and capability to elucidate even the most difficult topic in measured words are discernible at every step. Such an elaborate and detailed commentary on Samasas has not as yet been attempted by any one. On the one hand it will benefit students and teachers and on the other the votaries of research will also find here ample investigative material. The learned author has produced this part after a continuous effort and hard labour of two years and a thorough scanning of hundreds of works and treatises. A number of appendices at the end adds to the value and importance of the publication. The alphabetical index of 1200 illustrations of different Samasas indicating their names should be considered as one of the chief distinguishing features of this treatise. With its help the whole of the section on Samasas can be revised with great convenience. The work includes many exercises at appropriate places. Critics opine that if these exercises are properly solved, the students will be automatically enabled to grasp the Samas section in सिद्धान्त-कौमुदी or वाग्विज्ञान. This treatise runs into about 300 pages of size (23 X 36) — 16. Elegant printing, durable stitching and beautiful screen printed binding is very attractive. Price Rs 100/- only.

(5) LAGHU-SIDDHANT-KAUMUDI
BHAIMI-VYAKHYA - PART V

The printing of this part of Bhaimi Vyakhya of L. S. K. will be taken up soon. It is most likely to be published by end of 89. In this part the Taddhita section of L. S. K. has been commented upon in depth in a very lucid style. The elucidation of each Sutra is

followed by an analysis (विग्रह) of each example, its meaning and complete formation (रूपसिद्धि) with the help of relevant Sutas. In addition to the illustrations given in the text, a number of examples taken from Sanskrit literature have also been included in the treatise. Doubts or objections arising at the time of study or teaching have each been fully clarified. Besides the Sutas in the text, many other Sutas likely to be of benefit to the students have also been explained. After each sub-section carefully prepared exercises have been added, with the help of which the whole sub-section can be easily revised. In addition to many appendices at the end, the one showing the list of illustrations is a special attraction of this publication. Price to be announced.

(6) LAGHU SIDDHANT-KAUMUDI
BHAIMI-VYAKHYA—PART-VI

This part has been published & is available now for sale. This presents an extensive commentary on the Stri-Pratyaya (स्त्रीप्रत्यय) section of L S K. It contains an exhaustive commentary on each Suta, followed by complete formation of each of the examples given thereunder, numerous illustrations and counter-illustrations and clarifications to objections and doubts. Apart from the Sutas in the text, many other Sutas and Varttikas, useful for the students, have also been elucidated with illustrations. At many places literary illustrations have been collected after great explorative effort. Technical words like 'स्वाङ्ग' and 'जति' and other difficult points have been elaborately elucidated in simple language. In fact, no portion of the text which needed to be clarified, explained or elucidated has been left untouched without an appropriate commentary. For revising the learnt material many exercises have been appended at different places. Many indexes particularly, the index of illustrations showing प्रत्ययस्य have enhanced the value of this publication manifold. Towards the end the author presents more than a hundred verses of his own containing errors relating to feminine affixes together with the rectification giving reasons for the same, with a view to arousing students' alertness. For research lovers too dozens of important notes have been added at different places. At many places

attempt has been made to make the point clear by referring to non-Paninian grammars as well. In fact, such an exhaustive and comprehensive commentary on the स्त्रीप्रत्ययः has been published for the first time. The book contains more than 150 pages of size (23 × 36)—16 Elegant printing, screen printed binding and durable stitching make the publication very attractive. Price Rs. 60/- only.

(7) VAIYAKARAN-BHUSHAN SARA

Vaiyakaran Bhushan Sara of Kaundbhatt is an important treatise of Sanskrit grammar and occupies a special position for its exposition of the principles of philosophy of grammar. This has been prescribed as a text book for M A, Acharya, Shastri, etc degrees. The work is quite a difficult one and at places incomprehensible for even the brilliant students. This is evident from the fact that till recently no translation of V B S. in English, Hindi or any other language of the country (except Sanskrit) was available. The Bhāṣya of Dr Bhim Sen Shastri has filled this long felt need. Dr Bhim Sen Shastri is an eminent Sanskrit scholar and grammar is dear to his heart. He has been teaching Sanskrit grammar for more than 4 decades and through his researches has carved out a place for himself in the field. This is borne out by the commentary on the घात्वर्थ-निर्णय of V B S. This commentary has won him laurels from within and outside the country and has been given recognition by the Government of India too. The explanations of the knotty points in simple and flowing language are remarkable. His style of raising the doubt and putting forth its solution is commendable. Particularly praiseworthy are elucidations of Karikas 2, 5 and 13. At the end of the book, the author has given indexes which are very useful for teachers, students and research scholars. Dr Satya Vrat Shastri, Professor and head of Sanskrit Department, Delhi University has contributed a scholarly introduction.

The book has been printed very nicely on maplitho paper and is clothbound. This makes it very useful, particularly for libraries. It is priced only Rs. 60/- which is considered on the low side keeping in view the prices of research work of comparative merit.

(8) A STUDY OF NYASA

Recently, the famous research work of Shastriji under the caption 'Nyasa Paryalochana' (in Hindi) has been published. This is an original contribution towards the study of 'Kashika-Vivarana-Panjika' also known as 'Nyasa', the earliest known commentary on 'Kashika' and it has been accepted for the award of Ph D degree by the University of Delhi. Infact, it is the result of Shastriji's many years' continuous study and loving labour. Several current notions have been boldly contradicted. For example, Nyasakara is still believed to be a Buddhist, but in this thesis several evidences have been put forward to show that he was a follower of Vedic religion.

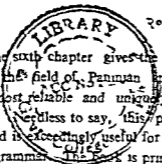
The thesis is divided into six chapters. The first chapter while giving general introduction to the Nyasa and its author, deals with the latter's time and place, the salient features of Nyasa, its elegant and fluent style and a comparative study of Nyasa and Har-datta's Padamanjari.

The second chapter deals with entirely a new research subject 'Later Grammarians' indebtedness to Nyasa'. This discusses not only Paninian grammars but also includes the ten main non-Paninian grammars viz Chandra, Jainendra, Katantra, Shakatayana, Saras-watikanthabharan, Hemchandra's Shabdanushasana, Malayagirishabd-anushasana, Sankshiptasara, Mugdhabodha & Sarsavata.

The third chapter entitled 'Refutation of Nyasa by Later Grammarians' discusses another topic not touched upon earlier by anyone. Here the author examines the later grammarians' criticisms of Nyasakara by presenting in elaborate details the reasons for their soundness or otherwise.

The fourth chapter deals with an important issue 'Correction of Kasika-texts in the context of Nyasa'. The author has pointed out at length the grave mistakes committed by the modern eminent scholars in editing Kasika and has offered rectification of several of its incorrect texts with justifications in the context of Nyasa.

The fifth chapter gives a detailed account of the misconcep-tions of Nyasakara and one hundred incorrect readings.



The sixth chapter gives the conclusion adding several new facts in the field of Paninian and non-Paninian grammars this work is most reliable and uniquely informative first attempt of its own kind. Needless to say, this publication is a must for every library and is exceedingly useful for research scholars in the field of Sanskrit grammar. The book is printed on fine maplitho paper and is clothbound costing Rs. 100/- only (PP 20 + 432)

(9) BALMANORAMA-BHRANTI-DIGDARSHAN

This research paper in Hindi by Dr Bham Sen Shastri points out the glaring mistakes and contradictions which are eyesores to both students and teachers, in the various editions of Balmanorama edited by eminent scholars from different centres in the country. The author through convincing arguments has established that these learned scholars have not only not taken any pains to edit the work carefully but have blindly followed each other, not noticing even the self-evident errors. The paper is priced Rs. 5/- only

(10) PRATYAHAR SUTRON KA NIRMATA KAUN "

(Who is the author of Pratyahar Aphorisms ?)

It is for the first time that the problem of the authorship of the Pratyahar Sutras has been analysed in such depth. The learned author has furnished many convincing arguments and produced numerous documentary evidence in support of his thesis. The essay is an eye-opener to those who are easily led astray by blind faith. The paper is priced Rs. 25/- only

(11) AVYAYA-PRAKARANAM

The unique feature of Laghu Siddhanta Kaumudi Bhami Vyakhya is the section on अव्यय, which has been acclaimed by eminent scholars and erudite Pandits as an original contribution to the subject. The author has given about 500 Avyayas with their meanings and usages from the vast Sanskrit Literature. At the end of this book an alphabetical list of अव्यय has been added. For the convenience of the readers, this chapter has been published separately. Price Rs. 25/- only

These books can be had of

102341

BHAIMI PRAKASHAN

537 LAJPAT RAI MARKET, DELHI-110006